॥ श्रीः ॥

देवादिदेवमहादेवजीप्रणीत

योगिनीतन्त्र ।

मुरादाबादनिवासी पण्डित कन्हैयालालमिश्र-
कृतभाषानुवादसहित ।

इसको

गंगाविष्णु श्रीकृष्णदासने

अपने "लक्ष्मीवेंकटेश्वर" छापेखानेमें

छापकर प्रसिद्ध किया ।

संवत् १९८२, शके १८४७

कल्याण-मुंबई.

भूमिका।

प्रिय पाठकगण! आजतक आपने हमारे द्वारा अनुवादित और प्रकाशितग्रंथोंका जैसे गौरवके साथमें आदर कर उनके गुणको ग्रहण कियाहै. आपकी उस अमोघ कृपाके लिये सच मुचही हम आजन्म ऋणी बने रहेंगे क्योंकि जैसे जैसे आप गुण ग्रहण करते गये उसी क्रमसे हमारे उत्साहकीभी वृद्धि होतीगई। अपने कर्त्तव्यका पालन करतेहुए आज हम एक अनूठे और परमोपयोगीग्रंथकी भेट लेकर आपने समक्ष उपस्थित होते हैं और आशावान् हैं कि आप कृपापीयूषपरिपूरित दृष्टिसे अवलोकन कर अवश्यमेव गुणग्राहकताका परिचय देंगे।

आजकी नई भेंट 'योगिनीतंत्र' है। इस तंत्रमें भगवतीकी उपासना—उसका मंत्र—पुरश्चरण और अनुष्ठानविधिका सविस्तर वर्णन करके महामायाओंके उन गूढ रहस्योंका उद्घाटन—किया गया है जिनका अन्यत्र प्राप्त होना असंभव है।

यद्यपि मंत्रशास्त्रके अनेक उत्तमोत्तम ग्रंथ मुद्रित हुए उपलब्ध होते हैं. परन्तु उनकी अनुष्ठानपद्धति ऐसी टेढी है कि उसका साधन करना अतीव कठिन है. किन्तु योगिराज महादेवजीने इस तंत्रको अतिशय सरल तथा सुखसाध्य रीतिसे वर्णन किया कि जिससे मनुष्यमात्र इसके द्वारा लाभ उठासकते हैं।

इस योगिनीतंत्रका वर्णन करते करते इसमें प्राचीन तीर्थोंका माहात्म्य और वर्णन एवं मंत्रशास्त्रके अन्यान्य उपकरणोंका विधान कर्मकाण्डकी आवश्यक विधि आदि अटूटविषय सन्निविष्ट कियेगये हैं। मंत्र तंत्र अथवा कर्मकांडसंबंधी जो विषय ऐसे थे की—जिनका प्राप्त होना अन्यान्य ग्रंथोंमें कठिन था. उन सबका इस ग्रंथमें भलीप्रकार संग्रह हुआहै। इसी कारण यह पुस्तक जैसी तंत्रशास्त्रियोंको प्राणाधिक प्रिय है. वैसीही अन्य मंत्रशास्त्रियोंको भी प्रिय है। मंत्र तंत्रके ज्ञाता जैसा इससे लाभ उठा सकते हैं. उतनाही लाभ इससे सामान्य व्यक्ति भी उठा सकेंगे। इसीसे यह तंत्र नरसमुदायमात्रके हृदयका हार है।

यों तो और बहुतसे ऐसे तंत्रशास्त्र हैं कि जिनके द्वारा प्राणी अपने अभीष्टकी सिद्धिका लाभ कर सकते हैं. परन्तु—उनमें नतो इतने अधिक विषयोंका ही संग्रह है कि जिससे वे शास्त्र मनुष्यमात्रके उपयोगी—

कहे जा सकें ! और बहुतसे ऐसे भी हैं, जिनकी विधि अधूरी सापेक्ष अथवा क्लिष्ट है, जब कि उनसे फलसिद्धिभी अधिक विलम्बमें होती है । परन्तु इस ग्रंथके द्वारा साधना करनेवाले व्यक्ति अवश्यही हमारे स्वरमें स्वर मिलाकर मुक्तकंठसे यह कहेंगे कि सरल विधान रहते हुएभी उक्त तंत्रके प्रयोग अचिरादेव पूर्ण सिद्धि प्रदान करनेवाले हैं।

यह बात आबाल वृद्ध किसीसेभी छिपी नहीं है कि–बेंगालमें मंत्रशास्त्रका कैसा प्रचार है उस प्रान्तके मंत्रशास्त्री सिद्धहस्त और बडे बडे विद्वान् होते हैं· बरन यहांतक भी कहेजानेमें अत्युक्तिका भय नहीं है कि यावन्मात्र मंत्र तंत्र यंत्रोंका अधिकार आजकल केवल बेंगालनिवासी मंत्रवेत्ताओंकेही वांटेमें रह गया है । उन्हीं महात्माओंसे हमने इस सर्वोपयोगी अनर्घ रत्नस्वरूप तन्त्रोत्तम 'योगिनीतंत्र' को हस्ताधिगत करके प्रकाशित किया । यह ग्रंथ देवगिरामें होनेसे सार्वजनिक नहीं होसकता था यही विचार कर हमने इसका शुद्ध और सरल विस्तृत हिन्दी भाषानुवाद किया ।

यद्यपि अनुवाद बनाते समय सब ओर दृष्टि रखकर इसको सर्वाङ्ग सुंदर और सरल बनानेकी यथासाध्य पूर्णचेष्टा कीगई है, तथापि यदि नरधर्मानुसार इसमें कहीं किसी प्रकारकी त्रुटि अवशिष्ट रहगई हो, उसकेलिये हम अपने गुणज्ञ पाठकोंसे क्षमा प्रार्थनापूर्वक निवेदन करते हैं कि यदि आप उसकी सूचना देदेंगे, तो आगामी आवृत्तिमें उस दोषको दूर कर दिया जायगा ।

उपसंहारमें निवेदन है कि–इस ग्रंथको छापकर प्रकाशित करने और समूल्य वितरण करनेसे संपूर्ण अधिकार परमोदारवर गुणग्राहक विश्वविख्यात श्रीमान् सेठ खेमराज श्रीकृष्णदासजीको दिये गये हैं, उन्होंने अपनी अमोघ कृपासे इसको निज "श्रीवेंकटेश्वर" यंत्रालय बंबई में छापकर विविध प्रकारके दानमानसे हमें उपकृत किया है अतएव हमभी भगवान् श्रीमहादेवजीसे उक्त सेठजीकी आयुः, यश और लक्ष्मीकी वृद्धिके लिये प्रार्थना करते हैं ॥

सज्जनोंका अनुगृहीत–

पं० कन्हैयालाल मिश्र, मोहल्ला दीनदारपुरा, मुरादाबाद.

तंत्ररहस्य ।

तंत्रशास्त्रके प्रधान प्रधान तीन भेद हैं आगम यामल और तंत्र. वाराहीतंत्रके मतानुसार–

"सृष्टिश्च प्रलयश्चैव देवतानां तथार्चनम् ।
साधनं चैव सर्वेषां पुरश्चरणमेव च ॥
षट्कर्मसाधनं चैव ध्यानयोगश्चतुर्विधः ।
सप्तभिर्लक्षणैर्युक्तमागमं तद्विदुर्बुधाः ॥"

सृष्टि प्रलय देवताओंकी पूजा सबका साधन पुरश्चरण षट्कर्मसाधन और चार प्रकारका ध्यानयोग जिसमें यह सात प्रकारके लक्षण हों उसको आगम कहाजाता है.

"सर्गश्च प्रतिसर्गश्च मंत्रनिर्णय एव च ।
देवतानां च संस्थानं तीर्थानां चैव वर्णनम् ॥
तथैवाश्रमधर्मश्च विप्रसंस्थानमेव च ।
संस्थानं चैव भूतानां यंत्राणां चैव निर्णयः ॥
उत्पत्तिर्विबुधानां च तरूणां कल्पसंज्ञितम् ।
संस्थानं ज्योतिषां चैव पुराणाख्यानमेव च ॥
कोषस्य कथनं चैव व्रतानां परिभाषणम् ।
शौचाशौचस्य चाख्यानं नरकाणां च वर्णनम् ॥
हरचक्रस्य चाख्यानं स्त्रीपुंसोश्चैव लक्षणम् ।
राजधर्मो दानधर्मो युगधर्मस्तथैव च ॥
व्यवहारः कथ्यते च तथा चाध्यात्मवर्णनम् ।
इत्यादिलक्षणैर्युक्तं तंत्रमित्यभिधीयते ॥"

सृष्टि, लय, मंत्रनिर्णय, देवताओंका संस्थान, तीर्थवर्णन, आश्रम धर्म; विप्रसंस्थान, भूतादिका संस्थान, यंत्रनिर्णय, देवताओंकी उत्पत्ति, वृक्षोत्पत्ति, कल्पवर्णन, ज्योतिषसंस्थान, पुराणाख्यान, कोषकथन, व्रतकथन, शौचाशौचवर्णन, स्त्रीपुरुषके लक्षण, राजधर्म, दानधर्म, युग धर्म, व्यवहार और आध्यात्मिक विषयका वर्णन इत्यादि लक्षणोंका जिसमें समावेश हो उसको तंत्र कहाजाताहै.

"सृष्टिश्च ज्योतिषाख्यानं नित्यकृत्यप्रदीपनम् ।
क्रमसूत्रं वर्णभेदो जातिभेदस्तथैव च ॥
युगधर्मश्च संख्यातो यामलस्याष्टलक्षणम् ।"

सृष्टितत्त्व, ज्योतिषका वर्णन, नित्यकर्म, क्रमसूत्र, वर्णभेद. जातिभेद और युगधर्म यह आठ यामलके लक्षण हैं ।

वाराहीतंत्रके मतानुसार तंत्रके श्लोक सब मिलकर देवलोक ब्रह्म-लोक और पातालमें (९) नौ लाख हैं और इस भारतवर्षमें एक लाख ही हैं, इससे–

"आगमं त्रिविधं प्रोक्तं चतुर्थं चैश्वरं स्मृतम् ॥
कल्पश्चतुर्विधः प्रोक्तो ह्यागमो डामरस्तथा ।
यामलश्च तथा तंत्रं तेषां भेदाः पृथक्पृथक् ॥

आगम तीन प्रकारके हैं, चौथा ऐश्वर है । कल्पके भी चार प्रकार हैं, यथा आगम डामर यामल और तंत्र यह प्रकार भेद देखा जाताहै, महाविश्वसारतंत्रमें लिखा है–

चतुष्षष्टिश्च तंत्राणि यामलादीनि पार्वति ।
सफलानीह वाराहे विष्णुक्रान्तासु भूमिषु ॥
कल्पभेदेन तंत्राणि कथितानि च यानि च ।
पाखण्डमोहनायैव विफलानीह सुन्दरि ॥

यामलादिको लेकर चौसठ तंत्र विष्णुक्रान्ता भूमिमें फलदायक हैं कल्पभेदमें जो सब तंत्र कहे गये हैं, वह पाखण्डियोंको मोहनेके लिये हैं उनसे कोई फल नहीं होता ।

श्रेष्ठता–महानिर्वाण तंत्रमें महादेवजीने कहा है–

"कलिकल्मषदीनानां द्विजातीनां सुरेश्वरि ।
मेध्यामेध्यविचाराणां न शुद्धिः श्रौतकर्मणा ॥
न संहिताद्यैः स्मृतिभिरिष्टसिद्धिर्नृणां भवेत् ।
सत्यं सत्यं पुनः सत्यं सत्यं सत्यं मयोच्यते ॥
विना ह्यागममार्गेण कलौ नास्ति गतिः प्रिये ।
श्रुतिस्मृतिपुराणादौ मयैवोक्तं पुरा शिवे ।
आगमोक्तविधानेन कलौ देवान्यजेत्सुधीः ।"

कलिदोषसे दीन हुए ब्राह्मण क्षत्रियादिकोंको पवित्र अपवित्रका विचार नहीं रहेगा फिर वेदमें कहेहुए कर्म करके वह किस प्रकार सिद्धिको प्राप्त करसकेंगे ? इस अवस्थामें स्मृति संहितादिकोंसे भी मनुष्योंकी इष्टसिद्धि न होगी–हे प्रिये ! मैं सत्य सत्य ही कहताहूं कि, कलियुगमें आगम मार्गके अतिरिक्त दूसरी गति नहीं है । हे शिवे ! वेद स्मृतिपुराणादिके बीचमें मैं कह चुकाहूं कि, कलियुगमें साधक तंत्रोक्तविधानद्वारा देवताओंकी पूजा करेंगे ।

कलावागममुल्लङ्घ्य योऽन्यमार्गे प्रवर्त्तते ।
न तस्य गतिरस्तीति सत्यं सत्यं न संशयः ॥

कलिकालमें जो आगमको लंघन करके अन्यमार्गमें गमन करता है निश्चयही उसकी सद्गति नहीं होती–यह मैं सत्यही सत्य कहताहूं ।

निर्वीर्याः श्रौतजातीया विषहीनोरगा इव ।
सत्यादौ सफला आसन्कलौ ते मृतका इव ॥

पांचालिका यथा भित्तौ सर्वेन्द्रियसमन्विताः ।
अमूरशक्ताः कार्येषु तथान्ये मन्त्रराशयः ॥
अन्यमन्त्रैः कृतं कर्म वन्ध्यास्त्रीसंगमो यथा ।
न तत्र फलसिद्धिः स्याच्छ्रम एव हि केवलम् ॥
कलावन्योदितैर्मार्गैः सिद्धिमिच्छति यो नरः ।
तृषितो जाह्नवीतीरे कूपं खनति दुर्मतिः ॥
कलौ तंत्रोदिता मंत्राः सिद्धास्तूर्णं फलप्रदाः ।
शस्ताः कर्मसु सर्वेषु जपयज्ञक्रियादिषु ॥

विषहीन सर्पकी समान इस समय वैदिक मंत्र वीर्यहीन होगये हैं सत्य त्रेता और द्वापर युगमें यह समस्त मंत्र सफल होते थे इस समय मृततुल्य होगये हैं भीतपर लिखी हुई पुत्तलियें जिस प्रकार समस्त इन्द्रियोंसे युक्त होकरभी अपने कार्यको साधन करनेमें असमर्थ रहती हैं कालियुगमें अन्यान्य सब मंत्रभी प्रायः वैसेही हैं वंध्या स्त्रीके संगसे जिस प्रकार कोई फल नहीं होता वैसेही और मंत्रके द्वारा कार्य करनेसे फलसिद्धि नहीं होती केवल श्रमही होता है । कलिकालमें अन्यशास्त्रोक्तविधिद्वारा जो मनुष्य सिद्धि प्राप्त करनेकी इच्छा करता है वह निर्बोध प्यासा होकर गंगाजीके किनारे कुआ खोदताहै तंत्रमें कहेहुए मंत्र कलियुगमें शीघ्र फल देनेवाले हैं जपयज्ञादि समस्त कर्ममें तंत्रोक्त मंत्रही श्रेष्ठ हैं ।

इसही कारणसे रघुनंदनादि स्मार्तगणोंने तंत्रग्रंथोंको प्रामाणिक माना है ।

गुप्तशास्त्र-हिन्दू और बौद्ध इन दोनों जातियोंमें तंत्रको माना है यथार्थ दीक्षित और अभिषिक्तके सिवाय और किसीको शास्त्रका प्रकाशित करना उचित नहीं है कुलार्णवतंत्रमें लिखाहुआ है कि धन दे. स्त्री

है और अपने प्राणतक देदे परन्तु इस गुप्त शास्त्रको कभी किसी दूसरे (अनधिकारी) के सामने प्रकाशित न करे । ÷

आगमतत्त्वविलासमें निम्नोक्त तंत्रोंके नाम लिखे हैं—यथा-१ स्वतंत्रतंत्र २ फेत्कारिणीतंत्र ३ उत्तरतंत्र ४ नीलतंत्र ५ वीरतंत्र ६ कुमारीतंत्र ७ कालीतंत्र ८ नारायणीतंत्र ९ तारिणीतंत्र १० वालातंत्र ११ समयाचार तंत्र १२ भैरवतंत्र १३ भैरवीतंत्र १४ त्रिपुरातंत्र १५ वामकेश्वर तंत्र १६ कुटकुटेश्वरतंत्र १७ मातृकातंत्र १८ सनत्कुमारतंत्र १९ विशुद्धेश्वरतंत्र २० संमोहनतंत्र २१ गौतमीयतंत्र २२ बृहद्गौतमीयतंत्र २३ भूतभैरवतंत्र २४ चामुण्डातन्त्र २५ पिंगलातंत्र २६ वाराहीतंत्र २७ मुण्डमालातंत्र २८ योगिनीतंत्र २९ मालीनीविजयतंत्र ३० स्वच्छन्दभैरवतंत्र ३१ महातंत्र ३२ शक्तितंत्र ३३ चिन्तामणितंत्र ३४ उन्मत्तभैरवतंत्र ३५ त्रैलोक्यसारतंत्र ३६ विश्वसारतंत्र ३७ तंत्रामृत ३८ महाफेत्कारिणीतंत्र ३९ वारवीयतंत्र ४० तोडलतंत्र ४१ मालिनीतंत्र ४२ ललितातंत्र ४३ त्रिशक्तितंत्र ४४ राजराजेश्वरीतंत्र ४५ महामाहेश्वरोत्तरतंत्र ४६ गवाक्षतंत्र ४७ गांधर्वतंत्र ४८ त्रैलोक्यमोहनतंत्र ४९ हंसपारमेश्वरतंत्र ५० हंसमाहेश्वरतंत्र ५१ कामधेनुतंत्र ५२ वर्णविलासतंत्र ५३ मायातंत्र ५४ मंत्रराज ५५ कुब्जिकातंत्र ५६ विज्ञानलतिका ५७ लिंगागम ५८ कालोत्तर ५९ ब्रह्मयामल ६० आदियामल ६१ रुद्रयामल ६२ बृहद्यामल ६३ सिद्धयामल ६४ कल्पसूत्र इन ग्रंथोंके अतिरिक्त तंत्रके और भी ग्रंथ पायेजातेहैं । यथा १ मत्स्यसूक्त २ कुलसूक्त ३ कामराज ४ शिवागम ५ उड्डीश ६ कुलोड्डीश ७ वीरभद्रोड्डीश ८ भूतडामर ९ डामर १० यक्षडामर ११ कुलसर्वस्व १२ कालिकाकुलसर्वस्व १३ कुलचूडामणि १४ दिव्य १५ कुलसार १६ कुलार्णव १७ कुलामृत १८ कुलावली १९ कालीकुलार्णव २० कुलप्रकाश २१ वासिष्ठ २२ सिद्धसारस्वत २३ योगिनीहृदय २४ कालीहृदय २५ मातृकार्णव २६ योगिनीजालकुरक २७ लक्ष्मीकुलार्णव २८ तारार्णव २९ चंद्रपीठ ३० मेरुतंत्र ३१ चतुःशती ३२ तत्त्वबोध ३३

÷ कुलाचारपूजामें इसका प्रमाण देखना चाहिये ।

महोग्र ३४ स्वच्छन्दसारसंग्रह ३५ ताराप्रदीप ३६ संकेतचंद्रोदय ३७ षट्त्रिंशत्तत्त्वक ३८ लक्ष्यानिर्णय ३९ त्रिपुरार्णव ४० विष्णुधर्मोत्तर ४१ मंत्रदर्पण ४२ वैष्णवामृत ४३ मानसोल्लास ४४ पूजाप्रदीप ४५ भक्ति मंजरी ४६ भुवनेश्वरी ४७ पारिजात ४८ प्रयोगसार ४९ कामरत्न ५० क्रियासार ५१ आगमदीपिका ५२ भावचूडामणि ५३ तंत्रचूडामणि ५४ बृहत् श्रीक्रम ५५ श्रीक्रम ५६ सिद्धान्तशेखर ५७ गणेशविमर्शिनी ५८ मंत्रमुक्तावली ५९ तत्त्वकौमुदी ६० तंत्रकौमुदी ६१ मंत्रतंत्रप्रकाश ६२ रामार्चनचंद्रिका ६३ शारदातिलक ६४ ज्ञानार्णव ६५ सारसमुच्चय ६६ कल्पद्रुम ६७ ज्ञानमाला ६८ पुरश्चरणचंद्रिका ६९ आगमोत्तर ७० तत्त्वसार ७१ सारसंग्रह ७२ देवप्रकाशिनी ७३ तंत्रार्णव ७४ क्रमदीपिका ७५ ताराहस्य ७६ श्यामारहस्य ७७ तंत्ररत्न ७८ तंत्रप्रदीप ७९ ताराविलास ८० विश्वमातृका ८१ प्रपंचसार ८२ तंत्रसार ८३ रत्नावली इनके अतिरिक्त महासिद्धिसारस्वतमें सिद्धीश्वर नित्यतंत्र देव्यागम निबंधतंत्र राधातंत्र कामाख्यातंत्र महाकालतंत्र यंत्राचिन्तामणि कालीविलास और महाचीनतंत्रका वर्णन भी पायाजाताहै ।

उपरोक्ततन्त्रोंके सिवाय तन्त्रके ग्रंथ कुछ और भी पायेजाते हैं यथा—आचारसार प्रकरण—आचारसारतन्त्र-आगमचंद्रिका—आगमसार—अन्नदाकल्प—ब्रह्मज्ञानमहातंत्र—ब्रह्मज्ञानतंत्र—ब्रह्माण्डतंत्र—चिंतामणितंत्र—दक्षिणाकल्प—गौरीकांचलिकातंत्र—गायत्रीतंत्र—ब्राह्मणोल्लास—गृहयामकतंत्र—ईशानसंहिता—जपरहस्य— ज्ञानानंदतरंगिणी—ज्ञानतंत्र कैवल्यतंत्र—ज्ञानसंकलिनीतंत्र—कौलीकार्चनदीपिका—क्रमचंद्रिका—कुमारीकवचोल्लास—लिंगार्चनतंत्र —निर्वाणतंत्र—महानिर्वाणतंत्र-बृहन्निर्वाणतंत्र—वरदातंत्र—मातृकाभेदतंत्र-निगमकल्पद्रुम —निगमतत्त्वसार—निरुत्तरतंत्र—पीठनिर्णय—पीठमालातंत्र —पुरश्चरणविवेक—पुरश्चरणरसोल्लास—शक्तिसंगमतंत्र सरस्वतीतंत्र—शिवसंहिता—श्रीतत्त्वबोधिनी—स्वरोदय—श्यामाकल्पलता—श्यामार्चनचंद्रिका—श्यामाप्रदीप—ताराप्रदीप—शाक्तानंदतरंगिणी—तत्त्वानंदतरंगिणी—त्रिपुरासारसमुच्चय—वर्णभैरव—वर्णोद्धारतंत्र—बीजचिंतामणितंत्र-योगिनीहृदय-दीपिका यामल इत्यादि।

वाराहीतंत्रमें तंत्रोंके नाम और ग्रंथसंख्याभी लिखीहै.. यथा-

तंत्रका नाम॰	श्लोकोंकी संख्या॰	तंत्रका नाम॰	श्लोकोंकी संख्या॰
मुक्तक	.... ६०५०	दक्षिणामूर्ति	.... ५५५०
शारदा	.... १६०२५	कालिका	.... ११०१३
प्रपंच (१)	.... १२३००	कामेश्वरीतंत्र	.... ३०००
प्रपंच (२)	.... ८०२७०	तंत्रराज	.... ९०९०
प्रपंच (३)	.... ५३१०	हरगौरीतंत्र (१)	.... २२०२०
कपिल	.... ६०८०	हरगौरीतंत्र (२)	.... १२०००
योग	.... ५३३११	तंत्रनिर्णय	.... २८
कल्प	.... ५०९०	कुब्जिकातंत्र (१)	.... १०००७
कपिल	.... २८०१२०	कुब्जिकातंत्र (२)	.... ६०००
अमृतशुद्धि	.... ५००५	कुब्जिकातंत्र (३)	.... ३०००
वीरागम	... ६६०६	कात्यायनीतंत्र	.... २४२००
सिद्धसंवरण	.... ५००६	प्रत्यंगिरातंत्र	.... ८८००
योगडामर	.... २३५३३	महालक्ष्मीतंत्र	.... ५५०५
शिवडामर	.... ११००७	देवीतंत्र	.... १२०००
दुर्गाडामर	.... ११५०३	त्रिपुरार्णव	.... ८८०६
सारस्वत	.... ९९०५	सरस्वतीतंत्र	.... २२०५
ब्रह्मडामर	.... ७१०८२	आद्यातंत्र	.... २२९१५
गंधर्वडामर	.... ६००६०	योगिनीतंत्र(१)	.... २२५३२
आदियामल	.... ३५२००	योगिनीतंत्र (२)	.... ६३०३
ब्रह्मयामल	.... २२१००	वाराहीतंत्र	.... ६३०३
विष्णुयामल	.... २४०२०	गवाक्षतंत्र	.... ६५२५
रुद्रयामल	.... ६४६५	नारायण	.... ५०२०३
गणेशयामल	.... १०३२३	मृडानीतंत्र (१)	.... ४४८०
आदित्ययामल	.... १२०००	मृडानीतंत्र (२)	.... ३०००
नीलपताका	.... ५०००	मृडानीतंत्र (३)	.... [illegible]
योगार्णव	.... ८३०१	वामकेश्वरतंत्र	.... २५
मायातंत्र	.... ११०००	मृत्युञ्जयतंत्र	.... १३२२०

वारहीतंत्रमें लिखाहुआहै कि इनके अतिरिक्त बौद्ध और कपिलोक्त उपतंत्र भी अनेक हैं । जैमिनि–वसिष्ठ–कपिल–नारद–गर्ग–पुलस्त्य–भार्गव–सिद्धि–याज्ञवल्क्य–भृगु–शुक्र–बृहस्पति इत्यादि मुनियोंने भी बहुतसे उपतंत्र बनाये हैं, उनकी गिनती नहीं की जा सकती ।

हिन्दु लोगोंके तंत्र जिसप्रकार श्रीमहादेवजीके बनायेहुए हैं वैसेही बौद्धलोगोंके तंत्रोंको वज्रसत्वशुद्धने बनाया है यह तंत्रभी संस्कृत भाषामें बने हैं इनकी संख्या बहुत है । प्रधान प्रधान बौद्ध तंत्रोंके नाम यहां लिखे जाते हैं–यथा–१ प्रमोद महायुग २ परमार्थसेवा ३ पिंडीक्रम ४ सम्पुटोद्भव ५ हे वज्र ६ बुद्धकपाल ७ सम्बर तंत्र वा संवरोदय ८ वाराही तंत्र वा वाराहीकल्प ९ योगम्बर १० डाकिनीजाल ११ शुक्लयमारि १२ कृष्णयमारि १३ पीतयमारि १४ रक्तयमारि व १५ श्यामयमारि १६ क्रियासंग्रह १७ क्रियाकंद १८ क्रियासागर १९ क्रियाकल्पद्रुम २० क्रियार्णव २१ अभिधानोत्तर २२ क्रियासमुच्चय २३ साधनमाला २४ साधनसमुच्चय २५ साधनसंग्रह २६ साधनरत्न २७ साधनपरीक्षा २८ साधनकल्पलता २९ तत्त्वज्ञानसिद्धि ३० ज्ञानसिद्धि ३१ गुह्यसिद्धि ३२ उद्यान ३३ नागार्जुन ३४ योगपीठ ३५ पीठावतार ३६ कालवीरतन्त्र वा चण्डरोषण ३७ वज्रवीर ३८ वज्रसत्व ३९ मरीचि ४० तारा ४१ वज्रधातु ४२ विमलप्रभा ४३ मणिककर्णिका ४४ त्रैलोक्यविजय ४५ सम्पुट ४६ मर्मकालिका ४७ कुरुकुल ४८ भूतडामर ४९ कालचक्र ५० योगिनी ५१ योगिनीसंचार ५२ योगिनीजाल ५३ योगाम्बरपीठ ५४ उड्डामर ५५ वसुधरासाधन ५६ नैरात्म ५७ डाकार्णव ५८ क्रियासार ५९ यमान्तक ६० मंजुश्री ६१ तन्त्रसमुच्चय ६२ क्रियावसंत ६३ हयग्रीव ६४ संकीर्ण ६५ नामसंगीति ६६ अमृतकर्णिकानामसंगीति ६७ गूढोत्पादनामसंगीति ६८ मायाजाल ६९ ज्ञानोदय ७० वसन्ततिलक ७१ निष्पन्नयोगाम्बर ७२ महा-

कालतन्त्र—इनके अतिरिक्त हमारे तांत्रिक कवचोंकी समान नैपाली बौद्धोंकी भी असंख्य धारणी संग्रह हैं। बौद्धलोगोंके बहुतसे तन्त्र चीनी और तिब्बती भाषामें अनुवादित हो चुके हैं तिब्बतमें तन्त्रको ऋग्युद् कहते हैं। इस ऋग्युद्के ८७ भागहैं—इनमें विशेषकरके बौद्धलोगोंके गुप्त क्रियाकांड, उपदेश स्तोत्र कवच मन्त्र और पूजाविधिका वर्णन है। शिवोक्त तंत्रभी तीन प्रकारके हैं शाक्त शैव और वैष्णव तांत्रिकगण अपनी संप्रदायके तंत्रोंको माना करते और उसकेही अनुसार क्रिया करते हैं।

समयके परिवर्तनके साथ साथ ऐसा जमाना आया कि आगम या तत्रके ग्रंथ लोपसे होगये, जिन महाशयोंके पास दो चार पोथियां रहीं वे उनको हवाभी नहीं लगने देते थे इस कारण यह ग्रंथलोप होताचला दश बारह वर्षका समय हुआ कि हमारे पूज्यपाद बडे भ्राता बलदेवप्रसादजी मिश्र महोदयने तंत्रशास्त्रके अनेक ग्रंथ प्राप्त करके स्वयं भी छपाये और अन्य अन्य प्रकाशकोंसे भी प्रकाशित कराये। तब और भी कईएक महाशयोंने तंत्रशास्त्रके उद्धार करनेका विचार किया परन्तु बहुतसे धूर्तोंने इधर उधरका कूडा कर्कट एकत्र करके जालीतंत्र भी प्रकाशित किये। यही कारण है—जो आज दिन अनेक जालीतंत्र प्रचलित दिखाई देते हैं, ग्राहकगणको उचित है कि देखभालकर तंत्रकी पुस्तकोंको मोल लियाकरें।

प्रस्तुत योगिनीतंत्र तंत्रशास्त्रका विख्यात और माननीय ग्रंथ है। इसमें षट्कर्मके अतिरिक्त उन समस्त पीठस्थानोंका विस्तृत वर्णन है जहांपर तंत्रोंका साधन करनेसे शीघ्रही प्रयोगकी सिद्धि होती है और साधक अपनी मनोकामनाको प्राप्त होजाता है। आजतक योगिनीतंत्रका, भाषामें अनुवाद नहीं था—केवल मूलमात्रही ३) रु० को विकताथा परन्तु तांत्रिकजनोंके उपकारार्थ "श्रीवेंकटेश्वर" प्रेस बंबईके स्वामी श्रीमान् सेठ खेमराज श्रीकृष्णदासजीने इसको भाषाटीकासहित छापा और मूल्य भी केवल २) दोही रुपये नियत किया है, अतएव उक्त श्रीमान्को वारंवार धन्यवाद है कि वह लोकोपकारके लिये ऐसे ऐसे कार्य किया करते हैं। पं० कन्हैयालाल मिश्र.

श्रीः ।

योगिनीतंत्रकी अनुक्रमणिका ।

पटल.	विषय.	पृष्ठ.
१	उपोद्घात—योगिनीतंत्र विषयक देवीका प्रश्न भगवान्का उत्तर गुरुमहिमा गुरुविषयक देवीका प्रश्न गुरुका वर्णन है ।	१
२	महाविद्या और चामुंडा काली रहस्य विषयक देवीका प्रश्न भगवान्का तद्विषयक यथोचित उत्तर, जपके गोप्य विषयसंबंधी देवीका प्रश्न भगवान् द्वारा मालाओंका वर्णन फिर विशेषजिज्ञासाका प्रश्न और भगवान्का उत्तर तथा मास आदिका वर्णन है ।	१३
३	युद्ध अथवा ज्वरादि रोगनिवृत्तिविषयक देवीका प्रश्न ईश्वर द्वारा वारण कवचका वर्णन, जगद्वश्यकर प्रयोगका प्रश्न और उत्तर, त्रैलोक्यमोहन कवचका वर्णन अनेक प्रकारके लाभार्थ देवीका प्रश्न और भगवान्का अमोघ उत्तर वर्णित है....	२७
४	षट्कर्म साधनका वर्णन है	३९
५	शय्या साधनआदि विविध साधनोंका वर्णन	५३
६	दिव्य भाव और वीर भाव नामक दो योगोंका वर्णन है....	६७
७	स्वप्नावती मृतसंजीवनी मधुमती और पद्मावती विद्याका वर्णन तथा वशीकरण विषयक प्रश्नोत्तर वर्णित हैं	८०
८	योगिनियोंकी उत्पत्ति विषयक प्रश्नोत्तर घोर दैत्य विषयक भगवती और भगवान्का कथोपकथन है	९२
९	भगवान्के आश्चर्यका वर्णन भगवतीके चरणाधोभागमें भगवान्के निपतित होनेका वर्णन है	१०५
१०	भगवान्के द्वारा देवीकी स्तुतिका वर्णन और कारणार्णवका वर्णन है	११८

पटल.	विषय.	पृष्ठ.
११	स्थानभेदसे मंत्रादिके साधनका फलवर्णन कियागया है	....१२९
१२	मन्त्रसिद्धिप्रतिबन्धक प्रश्नके उत्तरमें नरकासुरकी कथा, वसिष्ठजी और कामाख्याका आख्यान है	....१४१
१३	योगिनी स्त्रीका वर्णन और ब्रह्मकर्मसाधनका वर्णनहै	१५५
१४	म्लेच्छगणकी उत्पत्तिका वर्णन और कामपालकोंके आख्यानका वर्णनहै	१६६
१५	कामाख्याका वर्णन है	१८२
१६	कालीका वर्णन है	....१९४
१७	कोलानिपातका वर्णन और कुमारी शिलाका वर्णन किया है	....२०५
१८	कहोल चरित्रका वर्णन और गंगामाहात्म्य तथा मंत्रका वर्णन है	....२१५
१९	कालभैरवकी सिद्धिका वर्णन महाकालभैरवका स्तोत्र और भगवतीका आशास्यवाद वर्णित है.	२२५

योगिनीतन्त्रके पूर्वखण्डकी अनुक्रमणिका समाप्त।

योगिनीतंत्रके उत्तर खंडकी अनुक्रमणिका।

पटल.	विषय.	पृष्ठ.
१	कामरूपके विषयमें कालीका प्रश्न। इसका उत्तर देते समय भगवान् द्वारा पीठोंके नाम और उनकी दिशाओंका निर्णय करना पीठोंके आकार और उनके चिह्नादिका वर्णन किया गया है	२३९
२	यात्राविधान—द्वादश लग्नोंमें दिशाओंमें गमनका विधिनिषेकध योगिनीविचार योगविवेचन नक्षत्रविचार यात्राकालमें शुभाशुभ शकुननिर्णय मुहूर्त्तज्ञान श्राद्धकर्त्तव्य और उसके आधारसे अन्य कर्त्तव्य कर्मोंका विधान किया है	२४९
३	कामरूपके वर्णनमें कूटस्थोंकी पूजाविधि और अनेक तीर्थोंका वर्णन किया गया है	२६१

पटल	विषय	पृष्ठ.
४	देवीका भगवान् विषयक प्रश्न भगवान्का प्रत्येक तीर्थस्थानमें अपने पृथक् पृथक् नामोंका वर्णन करना ऋण मोचन माहात्म्य सहस्र जन्मार्जित पापनाश विषयक देवीका प्रश्न—इसका उत्तर देते समय भगवान्के द्वारा अश्वक्रान्त तीर्थके माहात्म्यका वर्णन है	२७५
५	अनेक शैल—सरोवर—नदी और नदोंका वर्णन गयाकूपके माहात्म्यका वर्णन और तर्पणआदिका फल—फिर मातृगयाका वर्णन श्राद्धविधि और माहात्म्य वर्णित है	२९९
६	श्राद्धके द्वितीयदिनका कर्त्तव्यवर्णन करतेकरते अनेक कुण्डोंका वर्णन किया है	३६२
७	मंत्रोद्धारका वर्णन लेख पद्धतिमहास्नानकी विधि और माहात्म्यका वर्णन है	३९६
८	सरस्वती और उसके पार्श्ववर्ती तीर्थोंका वर्णन घोरपापनिवृत्तिके लिये भगवतीका प्रश्न फिर महादेवका उत्तर पापफलभोगके अनन्तर मोक्ष लाभका वर्णन है	४४१
९	हरिक्षेत्रका वर्णन षोडशोपचार पूजन विधि । मणिकूटमें विष्णूकी स्थितिसंबंधी देवीका प्रश्न उसका उत्तर ग्रंथ माहात्म्य सह वर्णित है	४६५

योगिनीतंत्रके उत्तर खंडकी अनुक्रमणिका समाप्ता ।

॥ श्रीः ॥

योगिनीतन्त्रम् ।

भाषाटीकासमेतम् ।

मङ्गलाचरणम् ।

श्रीमन्नीलघनद्युतिः शुभकरी चन्द्रार्धचूणामणि-
र्भक्तार्तिप्रशमैकवृत्तिरनिशं विज्ञानसम्पत्करी ।
शम्भोर्वक्षसि संस्थिता सुरधुनीकालिन्दिनीसङ्गमा-
ल्लोके कौतुकमादधान्यातितरां पायान्मृडानी हि नः॥१॥
यद्योगिनीतन्त्रमिदं कन्हैयालालेन मिश्रान्वयसम्भवेन ।
अनूदितं स्वार्यवचोभिरथ्यैस्तदस्तु प्रीत्यै प्रथमाम्बिका-
याः ॥ २ ॥

ॐ कैलासशिखरारूढं शङ्करं परमेश्वरम् ।
पप्रच्छ गिरिजाकान्तं पार्वती वृषभध्वजम् ॥ १ ॥

मनोहर कैलास–शिखरमें वृषभध्वज परमेश्वर शंकर विराजमान हैं; उसीसमय भगवती पार्वतीने अपने पति महादेवजीसे पूछा ॥ १ ॥

श्रीदेव्युवाच ।

भगवन्सर्वधर्मज्ञ सर्वज्ञानमय प्रभो ।
सूचितं योगिनीतन्त्रं तन्मे वद जगद्गुरो ॥ २ ॥
माहात्म्यं कीर्त्तितं तस्य पुरा श्रीशैलमन्दरे ।
वाराणस्यां कामरूपे नेपाले मन्दराचले ॥ ३ ॥

श्री पार्वती बोलीं–हे भगवन् ! हे सर्वधर्मज्ञ ! हे सर्वज्ञानमय ! हे प्रभो ! आपने पहिले श्रीशैल, मन्दर, वाराणसी, (काशी) कामरूप

नेपाल और मन्दर पर्वतमें जिसका माहात्म्य कीर्त्तन करके सूचना मात्र की थी, वह " योगिनीतंत्र " मुझसे कहिये । हे जगद्गुरो ! उसके सुनने की मेरी इच्छा बलवती हुई है ॥ २ ॥ ३ ॥

ईश्वर उवाच ।

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि योगिनीतन्त्रमुत्तमम् ।
पावनं परमं धन्यं मोक्षैकफलदायकम् ॥ ४ ॥

ईश्वर बोले—हे देवि ! मोक्षफलदायक परमधन्य परमपवित्र और परमोत्तम योगिनीतंत्रको मैं तुमसे कहाता हूं, सुनो ॥ ४ ॥

गोपितव्यं प्रयत्नेन मम त्वं प्राणवल्लभे ।
यथान्यो लभते नैव तथा कुरु प्रियंवदे ॥ ५ ॥

हे प्रियंवदे ! हे प्राणवल्लभे ! परमयत्नपूर्वक मुझे और तुम्हें इस तंत्रको गुप्त रखना चाहिये तथा ऐसा यत्न करना चाहिये कि, जिससे इसको कोई दूसरा (अनधिकारी) प्राप्त न करसकै ॥ ५ ॥

एतत्तन्त्रं वरारोहे सुरासुरसुदुर्लभम् ।
कांक्षन्ति देवताः सर्वाः श्रोतुं तन्त्रमनुत्तमम् ॥ ६ ॥
यक्षाद्याः परमेशानि न तेभ्यः कथितं मया ।
कथयामि तव स्नेहाद्बद्धोऽहं परमं त्वया ॥ ७ ॥

हे वरारोहे ! सुरासुर दुर्लभ इस सर्वोत्तम तंत्रके सुननेकी सभी देवता और यक्षादिक इच्छा करते हैं, परन्तु हे परमेशानि ! मैंने इसको उनसे भी नहीं कहा, मैं तुम्हारे परम स्नेहपाशमें बँधा हूँ, इस कारण तुमसे कहता हूं ॥ ६ ॥ ७ ॥

विद्युत्कान्तिसमानांभदन्तपंक्तिबलाकिनीम् ।
नमामि तां विश्वमातां कालमेघसमद्युतिम् ॥
मुण्डमालावलीरम्यां मुक्तकेशीं दिगम्बराम् ॥ ८ ॥

जो विश्वमाता और कालमेघकी समान कान्तियुक्त हैं, उन काली देवीको नमस्कार करता हूं, बकपंक्तिके तुल्य बिजलीकी कान्तिकी समान दन्तपंक्ति जिनके मुखमण्डलमें शोभायमान हैं। जो मुण्डमालासे शोभायमान हैं जो दिगम्बरा (नग्न) खुले केशवाली हैं ॥ ८ ॥

ललज्जिह्वां घोररावामारक्तान्तत्रिलोचनाम् ।
कोटिकोटिकलानाथविलसन्मुखमण्डलाम् ॥ ९ ॥

और चलायमान जिनकी जीभ लहलहाती है—जिनके तीनों नेत्र रक्तवर्ण हैं और जिनका घोर (विकराल) शब्द है, जिनके मुखमण्डलसे अनन्त चन्द्रमा निकलते हैं ॥ ९ ॥

अमाकलासमुल्लासोज्ज्वलत्कोटीरमण्डलाम् ।
शवद्वयाभूषकर्णां नानामणिविभूषिताम् ॥ १० ॥

जिनके शिरमें उज्वल किरीट मण्डल अमावसकी कलाके समान उल्लासित होकर शोभाविस्तार करता है, दोनों कानोंमें दो शव विभूषित होरहे हैं, जिनके सब अंग अनेक प्रकारकी मणियोंसे विभूषित हैं॥ १० ॥

सूर्यकान्तेन्दुकान्तौघप्रोल्लसत्कर्णभूषणाम् ।
मृतहस्तसहस्रैस्तु कृतकाञ्चीं हसन्मुखीम् ॥ ११ ॥

सूर्यकान्त और चन्द्रकान्त मणिसमूहसे जिनका सुन्दर कर्णभूषण अलंकृत है, जिनकी कमर मृतकोंके सहस्रों हाथोंकी बनी कोंधनीसे वेष्टित है, जिनके मुखमण्डलमें अट्टहास्य शोभा पाता है ॥ ११ ॥

सृक्कद्वयगलद्रक्तधाराविस्फारिताननाम् ।
खड्गमुण्डवराभीतिसंशोभितचतुर्भुजाम् ॥ १२ ॥

जिनके दोनों होठोंसे शोणितकी धारा निकलनेके कारण मुखमण्डल शोभित होरहाहै, जिनकी चारों भुजा खड्ग, मुण्ड, वर और अभयदानसे शोभायमान है ॥ १२ ॥

दन्तुरां परमां नित्यां रक्तमण्डितविग्रहाम् ।
शिवप्रेतसमारूढां महाकालोपरि स्थिताम् ॥ १३ ॥

जिनका देह शोणितकी छटासे मण्डित है, दंतपंक्ति उच्च और विकट हैं, उन परमा और नित्या सनातनी देवीको नमस्कार करता हूं जो शिवप्रेतपर चढीं और महाकालके ऊपर स्थित हैं ॥ १३ ॥

वामपादं शवहृदि दक्षिणे लोकलाञ्छिताम् ॥
कोटिसूर्यप्रतीकाशां समस्तभुवनोज्ज्वलाम् ॥ १४ ॥

जिनका वाम चरण शवके हृदयपर स्थित है और जिनके दहिने पैरसे समस्त लोक अलंकृत है (उन शिवरूपिणी देवीको नमस्कार है) जिनका करोडसूर्यतुल्य प्रकाश है और जो समस्त भुवनको समुज्ज्वल कर रही हैं ॥ १४ ॥

विद्युत्पुञ्जसमानाभज्वलज्जटाविराजिताम् ।
रजताद्रिनिभां देवीं स्फटिकाचलविग्रहाम् ॥ १५ ॥

विद्युत्पुंजकी समान उज्ज्वल, जटाजालसे विराजित, रजतगिरिकी समान शोभायमान और स्फटिकाचलके तुल्य शुक्लवर्ण शरीरको धारण करती हुई ॥ १५ ॥

दिगम्बरां महाघोरां चन्द्रार्कपरिमण्डिताम् ।
नानालङ्कारभूषाढ्यां भास्वत्स्वर्णतनूरुहाम् ॥ १६ ॥

जो दिगम्बर महाघोरदर्शन, चन्द्रसूर्यसे भूषित, अनेक प्रकारके आभूषणोंसे शोभित भास्वर (शुद्ध) सुवर्णसदृश रोमराजिसे विराजित ॥ १६ ॥

योगनिद्राधरां सुभ्रूं स्मेराननसरोरुहाम् ।
विपरीतरतासक्तां महाकालेन सन्ततम ॥ १७ ॥
अशेषब्रह्माण्डभाण्डप्रकाशितमहाबलाम् ।
शिवाभिर्घोररावाभिर्वेष्टितां प्रलयोदिताम् ॥ १८ ॥

जिन योगनिद्रानिरत महादेवका हँसता हुआ मुखकमल समस्त ब्रह्माण्डको प्रकाशित करता है, महाकाल शंकरके विपरीत रतमें जो आसक्त हैं, जो घोर शब्दवाली गीदड़ियोंसे घिरी हैं, जो प्रलयकालके समान भयानक मूर्त्ति धारण करनेवाली हैं ॥ १७ ॥ १८ ॥

कोटिकोटिशरच्चन्द्रन्यक्कृतोन्नखमण्डलाम् ।
सुधापूर्णशिरोहस्तयोगिनीभिर्विराजिताम् ॥ १९ ॥
आरक्तमुखभीमाभिर्मदमत्ताभिरन्विताम् ।
घोररूपैर्महानादैश्चण्डतापैश्च भैरवैः ॥ २० ॥
गृहीतशवकङ्कालजयशब्दपरायणैः ।
नृत्यद्भिर्वादनपरैरनिशञ्च दिगम्बरैः ॥ २१ ॥
श्मशानालयमध्यस्थां ब्रह्माद्युपानिषेविताम् ॥ २२ ॥

जो अपने नखमण्डलकी प्रभासे अनन्त शरदतुके चन्द्रमाकी शोभाका तिरस्कार करती हैं, जिनके मस्तकमण्डल और हाथोंमें सुधा विराजमान है जो रक्तमुखवाली मदमत्त योगिनीगणोंमें विराजित हैं एवं महानाद घोररूप, प्रचण्डप्रताप, दिगम्बरवेष सदा नृत्यवाद्यमें निरत शवकंकाल ग्राही (मृतकका खांखड लिये) और जयशब्द-परायण भैरवगणोंसे वेष्टित श्मशानालयके मध्यस्थित और ब्रह्मादि देवताओंसे सेवित हैं (उन महाकाली देवीको मैं नमस्कार करता हूं) ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥

अधुना शृणु देवेशि तन्त्रराजं सुदुर्लभम् ।
कथयामि तव स्नेहान्न प्रकाश्यं कथञ्चन ।
अतीव स्नेहसंबद्धभक्त्या दासोऽस्मि ते प्रिये ॥२३॥

हे देवेश्वरी ! अब दुर्लभ तन्त्रराज "योगिनीतंत्र" सुनो ! हे प्रिये ! तुम्हारी अतिशय भक्ति और स्नेहके कारण मैं तुम्हारा दास

हूं, अतएव तुम्हारे प्रति प्रीतिके वश होकर यह तंत्र तुमसे वर्णन करता हूं किन्तु कभी इसको प्रकाश न करना ॥ २३ ॥

गुरुमूलमिदं शास्त्रं गुरुमूलमिदं जगत् ।
गुरुरेव परं ब्रह्म गुरुरेव शिवः स्वयम् ।
गुरुर्यस्य वशीभूतो देवास्तं प्रणमन्ति च ॥ २४ ॥

हे देवि ! यह शास्त्र और जगत् गुरुमूलक है गुरु ही परब्रह्म और गुरु ही साक्षात् शिवस्वरूप हैं, गुरु जिसके वशीभूत होते हैं, देवता उसको प्रणाम करते हैं ॥ २४ ॥

कुष्ठव्याधिगलत्पादप्रक्षालनजलं यदि ।
पिबेदमृतभावेन यः स देवीपुरं व्रजेत् ॥ २५ ॥

महाव्याधियुक्त होनेपर भी यदि उन गुरुका चरणामृत पिये, तो वह मनुष्य देवीपुरमें जाता है ॥ २५ ॥

सुरां यद्यप्यसंस्कारां गुर्वनुज्ञाबलात्पिबेत् ।
प्रायश्चित्तं न तत्रास्ति वेदेऽपि स्थित एष हि ॥२६ ॥

गुरुकी आज्ञाविधिके वशवर्त्ती होकर असंस्कृत सुरापान करनेपर भी उसमें प्रायश्चित्त नहीं है और उसमें वेदविधिकी अमर्यादाभी नहीं होगी ॥ २६ ॥

अपि तन्त्रविरुद्धं वा गुरुणा कथ्यते यदि ।
स्वमतं सदृशं वेदैर्म्महारुद्रवचो यथा ॥
सर्व्वं गुर्वाज्ञया कार्यं तत्त्वस्यागमनं विना ॥ २७ ॥

गुरु अपना मत जो प्रकाश करैं, तंत्रविरुद्ध होनेपरभी उसको वेदतुल्य और महारुद्रदेवके वचनकी समान जाने, तत्त्वागमके विना भी गुरुकी आज्ञा सब कार्योंमें ही लेनी चाहिये ॥ २७ ॥

अद्वैतं देवतैश्वर्य्यं न द्वैतं गुरुणा सह ।
नाद्वैतं प्रवते कार्यं न समोऽस्तीह भूतले ॥ २८ ॥

देवताओंका ऐश्वर्य अद्वैत है, गुरुके संग उसका अद्वैतभाव (अनुपमेयत्व) नहीं है अद्वैत गुरुको और गुरुके कार्यको अतिक्रम नहीं करसकता इस भूतलमें गुरुके समान कोई नहीं है ॥ २८ ॥

गुरुर्गतिर्गुरुर्देवो गुरुर्देवी तथा प्रिये ।
स्वर्गलोके मर्त्यलोके नागलोके च वर्त्तते ॥ २९ ॥

हे प्रिये! स्वर्गलोक, मर्त्यलोक और नागलोकमें गुरु ही गति, गुरु ही देव और गुरु ही देवी हैं ॥ २९ ॥

अल्पज्ञोऽनल्पविज्ञो वा गुरुरेव सदा गतिः ॥
गुरुवद्गुरुपुत्रेषु गुरुवत्तत्सुतादिषु ॥ ३० ॥

गुरु अल्पज्ञानसम्पन्न हों वा बहुज्ञानसम्पन्न हों, परन्तु गुरु ही सदा गति हैं. हे प्रिये! समस्त गुरुपुत्र और गुरुपुत्रके पुत्रसे भी गुरुकी समान व्यवहार करै ॥ ३० ॥

गुरुपत्नी महेशानि गुरुरेव न संशयः ।
गुरोरुच्छिष्टवद्देवि तत्सुतोच्छिष्टमेव च ।
भोजनीयं न संदेहोऽस्त्यन्यथा चेदधोगतिः ॥ ३१ ॥

गुरुपत्नी भी गुरु है, इसमें कुछ सन्देह नहीं. हे महेशानि! गुरुकी उच्छिष्टके समान गुरुपुत्रकी उच्छिष्ट भी भोजन करनी चाहिये, इसमें संशय न करै, इसमें विकार उत्पन्न होनेपर अधोगति होती है ॥ ३१ ॥

गुरूच्छिष्टं महादेवि ब्रह्मादीनां सुदुर्लभम् ।
गुरूच्छिष्टं तथा प्रोक्तं महापूतं परात्परम् ॥ ३२ ॥

हे महादेवी! गुरुका उच्छिष्ट ब्रह्मादिकोंको भी दुर्लभ है, गुरुका उछिष्ट महापवित्र और परात्पर (अति दुर्लभ) वस्तु है ॥ ३२ ॥

गुरुणा गुरुपत्न्या वा गुरुपुत्रेण वा प्रिये ।
भुक्त्वान्नं मुष्टिमात्रं वा प्रोवसेद्वर्षविंशतिम् ।
चिरंजीवी जरारोगविमुक्तोऽथ शिवो भवेत् ॥ ३३ ॥

गुर्व्वन्तिके यदि वसेत्पञ्चाशद्वर्षमुत्तमे ।
भैरवाचारसम्पन्नस्तत्पादपरिचारकः ॥ ३४ ॥
इह भुक्त्वा वरान्भोगानन्ते देविगणे भवेत् ।
रूपयौवनसम्पन्नै रुद्रकन्यागणैः सह ।
असौ वीरो विहरति यावच्चन्द्रार्कतारकम् ॥ ३५ ॥

हे प्रिये ! गुरु गुरुपत्नी वा गुरुपुत्रका दिया मुष्टिमात्र भुक्तावशिष्ट अर्थात् भोजन बचाहुआ अन्न भी जो मनुष्य वीस वर्ष भोजन करता है, वह जरा और रोगसे छूटकर चिरजीवी होता है और अन्तकालमें शिव हो जाता ॥ ३३ ॥ हे सत्तमे ! जो मनुष्य भैरवाचारसम्पन्न और गुरुके चरणकमलोंका सेवक होकर गुरुके निकट पचास वर्ष वास करता है, वह इस लोकमें उत्तम भोग भोगकर अन्तको देवताओंमें गिनाजाता है वह वीर जबतक चन्द्र सूर्य और तारे विद्यमान रहते हैं, तबतक रूपयौवनसम्पन्न रुद्रकन्याओंके संग विहार करता है ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

प्रातरुत्थाय यो मर्त्यो गुरवे प्रणतिश्चरेत् ।
तत्सुतं तनयां वापि प्रणमेद्विधिपूर्वकम् ॥
स सिध्यति वरारोहे नात्र कार्या विचारणा ॥ ३६ ॥

हे वरारोहे ! जो मनुष्य प्रातः कालमें उठकर गुरुको गुरुके पुत्रको वा गुरुकी कन्याको विधिपूर्वक प्रणाम करता है वह अवश्य सिद्ध होता है, इसमें सन्देह नहीं ॥ ३६ ॥

यत्राशायां गुरोः स्थानं नित्यं प्रातश्च तन्मुखः ।
गुरुं तद्दयितां पुत्रान्पुत्रीरुद्दिश्य मानवः ।
प्रणमेद्भक्तिसंयुक्तः स सिद्धो नात्र संशयः ॥ ३७ ॥

जिस ओर गुरुका स्थान है, प्रतिदिन प्रातःकालमें उसी ओरको मुख करके गुरुको गुरुकी पत्नीको वा उनके पुत्रको अथवा उनकी कन्याको

उद्देश्य करके जो मनुष्य भक्तियुक्त चित्तसे प्रणाम करता है, वह इस लोकमें सिद्ध होता है, इसमें सन्देह नहीं ॥ ३७ ॥

गुरोः स्थानं हि कैलासं तत्र चिन्तामणेर्गृहम् ।
वृक्षालिः कल्पवृक्षालिः लता कल्पलता स्मृता ।
जलखातं स्वर्गगङ्गा सर्वं पुण्यमयं शिवे ॥ ३८ ॥
गुरुगेहे स्थिता दास्यो भैरव्यः परिकीर्त्तिताः ।
भृत्यान्भैरवरूपांश्च भावयेन्मतिमान्सदा ॥ ३९ ॥
प्रदक्षिणं कृतं येन गुरोः स्थानं महेश्वरि ।
प्रदक्षिणीकृता तेन सप्तद्वीपा वसुन्धरा ॥ ४० ॥

गुरुका स्थानही कैलास है, गुरुका गृहही चिन्तामणिका गृह है, गुरुकी वृक्षावलीही कल्पवृक्षाली है अर्थात् वहांके वृक्ष कल्पवृक्ष हैं और गुरुजीके घरकी लता कल्पलता हैं. गुरुजीके घरका जल स्वर्गीय गंगा है. अतएव हे शिवे ! गुरुका समस्तही पुण्यमय है. हे महेश्वरि ! मतिमान् मनुष्य विचारते हैं कि, गुरुके घरमें स्थित दासी भैरवीतुल्य और सेवक भैरवरूप हैं । जो गुरुके स्थानकी प्रदक्षिणा करताहै वह मनुष्य सप्तद्वीपा पृथ्वीको प्रदक्षिणा करके उसके फलको पाताहै ॥४०॥

श्रीदेव्युवाच ।

गुरुः को वा महेशान वद मे करुणामय ।
तत्त्वादधिक एवायं यस्त्वया परिकीर्त्तितः ॥४१॥

श्रीदेवीजीने कहा-हे महेशान ! हे करुणामय ! गुरु कौन हैं ? उसका स्वरूप मुझसे कहो, आपने तत्त्वज्ञानसेभी गुरुको अधिक कहा है अतएव इसका विशेष विवरण सुननेकी मेरी इच्छा है ॥ ४१ ॥

ईश्वर उवाच ।

आदिनाथो महादेवि महाकालो हि यः स्मृतः ।
गुरुः स एवं देवेशि सर्वमन्त्रेऽधुना परः ॥ ४२ ॥

शैवे शाक्ते वैष्णवे च गाणपत्ये तथैन्दवे ।
महाशैवे च सौरे च स गुरुर्नात्र संशयः ।
मन्त्रवक्ता स एव स्यान्नापरः परमेश्वरि ॥ ४३ ॥

ईश्वर बोले—हे देवेशि ! हे महादेवि ! जो आदिनाथ महाकाल हैं, वही इस समय परम गुरु हैं. शैव, शाक्त, वैष्णव, गाणपत्य, ऐन्दव, महाशैव सौरादि मंत्रमें वही मंत्रवक्ता है, अपर गुरु कोई नहीं हैं, इसमें सन्देह नहीं ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

मन्त्रप्रदानकाले हि मानुषो नगनन्दिनि ।
अधिष्ठानं भवेत्तस्य महाकालस्य शाङ्करि ॥
देवि ह्यमानुषी चेयं गुरुता नात्र संशयः ॥ ४४ ॥

हे परमेश्वरी ! हे पर्वतनन्दिनी ! मन्त्र देनेके समय वही मानुषरूपसे मंत्र देते हैं. हे शांकरि ! उस समय उन महाकालकाही अधिष्ठान होता है, इस कारण हे देवि ! गुरुके कर्मको अमानुष जाने । इसमें सन्देह नहीं ॥ ४४ ॥

मन्त्रदाता शिरःपद्मे यज्ज्ञानं कुरुते गुरुः ।
तज्ज्ञानं कुरुते देवि शिष्योयं शीर्षपङ्कजे ॥४५॥

शिवस्वरूप मन्त्रदाता गुरु शिरोरूपपद्ममें जिस प्रकार ज्ञान करते हैं हे देवि ! शिष्यभी निज शीर्षकमलमें उसीप्रकार ज्ञान करते हैं॥४५॥

अतएव महेशानि एक एव गुरुः स्मृतः ।
अधिष्ठानं भवेत्तस्य मानुषस्य महेश्वरि ।
माहात्म्यं कीर्तितं तस्य सर्वशास्त्रेषु शाङ्करि॥४६॥

अतएव हे महेशानि ! गुरुकोही एकमात्र प्रधान जानना चाहिये । हे महेश्वरि ! मंत्र देनेके समय उन अमानुष देवका अधिष्ठान होताहै हे शाङ्करि ! उन गुरुका माहात्म्य सब शास्त्रोंमें कहागयाहै ॥ ४६ ॥

विशेषमनुवक्ष्यामि माहात्म्यं गुरुगोचरम् ।
पशुमन्त्रप्रदाने तु मर्यादा दशपौरुषी ॥ ४७ ॥

मैंने तुम्हारे प्रति गुरुका माहात्म्य विशेषरूपसे वर्णन किया है, पशुमंत्र देनेमें गुरुकी दशपौरुषी मर्यादा है ॥ ४७ ॥

वीरमन्त्रप्रदाने तु पञ्चविंशतिपौरुषी ।
महाविद्यासु सर्व्वासु पञ्चाशत्पौरुषी मता ॥४८॥

वीरमन्त्र देनेमें पचीस पौरुषी और सर्व महाविद्यामंत्र देनेमें पचास पौरुषी मर्यादा है ॥ ४८ ॥

ब्रह्मयोगप्रदाने तु मर्यादा शतपौरुषी ।
ब्रह्मयोगो महादेवि भेरुण्डायां प्रकीर्तितः ॥४९॥

ब्रह्मयोग देनेमें शतपौरुषी मर्यादा जाननी चाहिये । हे महादेवि ! भेरुण्डातन्त्रमें ब्रह्मयोग कहागया है ॥ ४९ ॥

गुरुपादोदकं पुण्यं सर्वतीर्थावगाहनात् ।
सर्वतीर्थावगाहे तु यत्फलं प्राप्नुयान्नरः ॥ ५० ॥
तत्फलं प्राप्नुयान्मर्त्यो पादोदककणाद्गुरोः ।
स स्नातः सर्वतीर्थेषु योऽभिषेकं ततश्चरेत् ॥५१॥

सब तीर्थोंमें स्नान करनेसे जो पुण्य होता है, गुरुका चरणामृत पीनसे भी वही पुण्य होता है. सर्व तीर्थोंमें स्नान करके मनुष्य जो फल पाता है गुरुके पादोदकका कणमात्र पीनेसेभी वही फल प्राप्त होता है. जो मनुष्य गुरुके पादोदक (चरणामृत) में स्नान करता है, उसको एक कालमेंही सर्व तीर्थोंमें स्नान करनेका फल मिलजाता है॥५०॥५१॥

पीतं पूतञ्च कुरुते सर्वपापेभ्य एव हि ।
विशेषतो महामाये तत्क्षणाच्छिवतां व्रजेत् ॥५२॥

पान करनेपर संपूर्ण पापोंसे छूटकर पवित्र होता है । हे महामाये ! विशेषकर इस पादोदक पीनेके फलसे वह तत्काल शिवका स्वरूपलाभ करता है ॥ ५२ ॥

गुरोः पादरजो मूर्ध्नि धारयेद्यस्तु मानवः ।
सर्वपापविनिर्मुक्तः स शिवो नात्र संशयः ॥ ५३ ॥

जो मनुष्य अपने मस्तकमें गुरुके चरणकमलोंकी धूरि धारण करताहै वह सब पापोंसे छूटकर शिवके तुल्य होता है इसमें सन्देह नहीं॥५३॥

तेनैव रजसा देवि तिलकं यस्तु कारयेत् ।
चतुर्भुजो न सन्देहः स वैकुण्ठपतिर्भवेत् ॥ ५४ ॥

हे देवि ! उस पदरजसे जो तिलक करता है वह चतुर्भुज होकर वैकुण्ठपति होता है इसमें सन्देह नहीं ॥ ५४ ॥

तद्रजो भक्षितं येन एकस्मिन्दिवसेऽपि च ।
कोटियज्ञोद्भवं पुण्यं लभते नात्र संशयः ॥ ५५ ॥

जो मनुष्य एक दिनभी गुरुकी पदरज भोजन करता है वह करोड महायज्ञ करनेके पुण्यको पाता है इसमें सन्देह नहीं ॥ ५५ ॥

इति ते कथितं देवि रहस्यं गुरुगोचरम् ।
गोपनीयं प्रयत्नेन स्वकीयं कुलपौरुषम् ॥ ५६ ॥

हे देवि ! यह मैंने तुमसे गुरुका रहस्य कहा स्वकीय कुलपौरुष स्वरूप इस गुरुतत्त्वको परमयत्नसहित गुप्त रक्खे ॥ ५६ ॥

इति सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे श्रीयोगिनीतन्त्रे देवीश्वरसम्वादे
भाषाटीकायां चतुर्विंशतिसाहस्रे
प्रथमः पटलः ॥ १ ॥

श्रीदेव्युवाच ।

परमानन्दसन्दोह चराचरजद्गुरो ।
श्रुतं ते गुरुमाहात्म्यं गुह्याद्गुह्यतरं हि यत् ॥ १ ॥

श्रीदेवी बोलीं—हे परमानन्दसन्दोह ! हे चराचर जद्गुरो महादेव ! आपसे मैंने गुह्यसे भी गुह्यतम गुरुका माहात्म्य सुना ॥ १ ॥

अहञ्च श्रोतुमिच्छामि कालीं सकलतारिणीम् ।
कथिता सा महाविद्या सिद्धिविद्या च यामले ॥ २ ॥

हे देवे ! अब मैं अखिलतारणी कालिकाविद्याका विषय सुननेकी अभिलाषा करती हूं, उस महाविद्या और सिद्धविद्याका विषय यामलतन्त्रमें कहागया है ॥ २ ॥

महामहाब्रह्मविद्यां चामुण्डातन्त्रगोचराम् ।
आज्ञापय महाकालीरहस्यं कृपया शिव ॥ ३ ॥

तन्त्रशास्त्रमें महामहा ब्रह्मविद्या और चामुण्डाका विषय वर्णित हुआ है. हे महादेव ! मेरे प्रति करुणा प्रकाश करके यह कालीरहस्य वर्णन कीजिये ॥ ३ ॥

ईश्वर उवाच ।

महामहाब्रह्मविद्या परेयं कालिका मता ।
यामासाद्य च निर्वाणमुक्तिमेति नराधमः ॥ ४ ॥

ईश्वर बोले—यह महामहा ब्रह्मविद्याही कालिकाविद्या है, नराधम मनुष्यभी इस विद्याको प्राप्तहोकर निर्वाण मुक्तिलाभ करनेमें समर्थ होता है ॥ ४ ॥

रहस्यं कथ्यते देवि सर्वलोकास्तथैवच ।
अस्या उपासकाश्चैव ब्रह्मविष्णुशिवादयः ॥ ५ ॥

कालिकायाः प्रसादेन सर्वे मुक्त्यादिभागिनः ।
रहस्यस्य सहस्रावृत्त्या जप्त्वा वापि कोटिशः ॥ ६ ॥

हे देवि ! ब्रह्मा, विष्णु और शिवादि सब इन महामहा विद्याके उपासक हैं । हे देवि ! अब रहस्य कहता हूं, समस्त लोकही उपासक होसकते हैं कालिकाके प्रसादसे सभी मुक्ति आदिके भागी होसकते हैं, उस कालिकाविद्याका मंत्र सहस्रवार वा करोडवार जप करै ॥ ५ ॥ ६ ॥

भाग्यवाञ्जायते यस्मात्कालीसाधनतत्परः ।
काली च जगतां माता सर्वशास्त्रेषु निश्चिता ॥ ७ ॥

कालीक साधनमें तत्पर मनुष्य उस पुण्यफलसे भाग्यवान् होताहै काली जगत्की माता है यह सब शास्त्रोंमें निश्चित हुआ है ॥ ७ ॥

कालीमन्त्रं जपेद्यो हि कालीपुत्रो न संशयः ॥ ८ ॥

जो मनुष्य कालिकाका मन्त्र जपता है, वह कालीका पुत्र है इसमें सन्देह नहीं ॥ ८ ॥

त्यजसि त्वं परश्चैतत्पुमांसं परमं तथा ।
स्वरूपं त्वं क्वचित्काले त्यजसि त्वं जगन्मयि ।
कालीविद्यां समासाद्य न त्यक्तुं शक्नुयात्क्वचित् ॥९॥

हे जगन्मयि ! कालीमन्त्रपरायण इस परमपुरुषको तुमभी कदाचित् त्याग करसकतीहो और कदाचित् स्वरूपत्वभी त्याग करसकता है, किन्तु कालीविद्या इस पुरुषको प्राप्त होकर कभी त्याग नहीं कर सकती ॥ ९ ॥

गच्छेच्छूद्रस्य शूद्रत्वं ब्राह्मणानां च विप्रता ।
मन्त्रग्रहणमात्रे तु सर्वे शिवसमाः किल ॥ १० ॥

यद्यपि शूद्रकी शूद्रता और ब्राह्मणकी विप्रता चलीजाय, किन्तु कालिकाका मन्त्रग्रहण करतेही मनुष्य शिवके तुल्य होजाताहै ॥१०॥

वाराणस्यां समासाद्य गङ्गां चैव तथैव ते।
कालीमंत्रग्रहादेव सर्वे शिवसमाः किल ॥ ११ ॥

यह शूद्र और ब्राह्मण यदि वाराणसी नगरी वा गंगाके तटपर कालीमंत्र ग्रहण करैं तो वे सब तत्काल शिवके समान होते हैं ॥ ११ ॥

अपि चेत्त्वत्समा नारी मत्समः पुरुषोऽस्ति चेत्।
तस्यैव जननी धन्या पिता तस्य सुरोत्तमः ॥ १२ ॥

हे देवि ! यदि तुम्हारीसमान नारी और मेरे समान पुरुष हो तो मनुष्यके माता पिता धन्यवादके योग्य हो सकते हैं (परन्तु यह सब कालीक मंत्रमें रत रहनेसेही होना सम्भव है) अतएव उसकी माता पृथ्वीमें धन्य और उसका पिता सुरोत्तम होता है ॥ १२ ॥

तस्यैव पितरः स्वर्गं यान्ति यस्मात्सुदुर्लभम्।
येन भाग्यवशाद्देवि काली सा त्वं समाश्रिता ॥ १३ ॥
अशंसन्तीह पितरो नराणां पुण्यकर्मणाम्।
यदास्माकं कुले पुत्रः कालीमन्त्रमुपाश्रयेत्।
तदा मुक्तिपुरीं प्राप्य विरोमिम सदैव हि ॥ १४ ॥

जो मनुष्य भाग्यके वश होकर कालीका आश्रय लेता है, उसके पितर दुर्लभ स्वर्गको प्राप्त करते हैं ॥ १३ ॥ पुण्यकारी मनुष्यके पितर कामना करते रहते हैं कि, हमारे कुलमें पुत्र कब कालीमन्त्रका आश्रय करेगा; जिससे हम मुक्तिको प्राप्त होकर नित्य आनन्द करेंगे ॥ १४ ॥

काली तारा तथा छिन्ना गुरुर्वै भूपतिस्तथा।
एकरूपेण बोद्धव्या भेदेन नरकं व्रजेत् ॥ १५ ॥

काली तारा और छिन्नमस्तादि अन्यान्य महाविद्या गुरु और भूपति इन सबको ही एकरूप जाने, भेदज्ञान करनेसे नरकमें जाना पडता है ॥ १५ ॥

ताराशिष्यस्त्यजेत्कालीं कालीशिष्यस्तु तारिणीम् ।
छिन्नामहिषमर्दिन्योः कदाचित्पूजनं स्मृतम् ॥ १६ ॥

किन्तु ताराका शिष्य कालीकी पूजा न करके ताराकीही और कालीका शिष्य ताराकी पूजा न करके कालीकीही पूजा करै, कभी (विशेष आवश्यकता होनेपर) छिन्ना और महिषमर्दनीकी पूजाभी कर सकता है ॥ १६ ॥

यदि वा पूजयेद्देवि नान्यदेवान्प्रपूजयेत् ।
कालीत्वेन च संभाव्य त्वन्यां वा पूजयेच्छिवे ॥ १७॥

हे देवि ! यदि पूजाही करे तो अन्यकी पूजा न करके ताराकी कालीरूपमें और कालीकी तारारूपमें भावना करके अन्यत्र पूजा करनी चाहिये ॥ १७ ॥

या काली परमा विद्या सैव तारा न संशयः ।
एतयोर्भेदभावेन नानामन्त्रा भवन्ति हि ।
उक्तं तत्कालिकाकल्पे ताराकल्पे च ते मया ॥ १८ ॥

जो परमा विद्या काली हैं, वही परमाविद्या तारा हैं, इसमें सन्देह नहीं इन दोनोंके भेदभावसे नाना प्रकारके मंत्र हुए हैं हे देवि ! मैंने तुमसे कालिकाकल्प और तारकल्पमें वह सभी कहे हैं ॥ १८ ॥

श्रीदेव्युवाच ।

नानाविधानं देवेश कथयस्व प्रियम्वद ।
विशेषतो महादेव रहस्यं जपकर्मणः ॥ १९ ॥

श्रीपार्वतीजीने कहा—हे देवेश ! हे प्रियम्वद ! आप मुझसे अनेक प्रकारके विधान कहिये । हे महादेव ! विशेष करके मैं जपकर्मका रहस्य सुनना चाहती हूं ॥ १९ ॥

ईश्वर उवाच ।

वर्णमाला शुभा प्रोक्ता सर्वमन्त्रप्रदीपनी ।
तस्याः प्रतिनिधिर्देवि महाशंखमयी शुभा ॥ २० ॥

ईश्वर (महादेव) बोले-हे देवि ! सब मंत्रोंकी उद्दीपनकारिणी वर्णमाला ही कल्याणके दायिनी कहकर शास्त्रमें उक्त हुई है, हे महादेवि ! उस वर्णमालाकी प्रतिनिधि महाशंखमयी माला मंगलदायिनी है ॥ २० ॥

महाशङ्खा करे यस्य तस्य सिद्धिरदूरतः ।
तदभावे वीरवन्द्ये स्फाटिकी सर्वसिद्धिदा ॥ २१ ॥

जिसके हाथमें महाशंखकी माला है, उसकी सिद्धि निकट ही विद्यमान रहती है, हे वीरवन्द्ये ! उसके अभावमें स्फाटिककी मालाको ही सब सिद्धियोंकी देनेवाली जाने ॥ २१ ॥

मणिसंख्यां महादेवि मालायाः कथयामि ते ।
पञ्चविंशतिभिर्मोक्षं पुष्टिदा सप्तविंशतिः ॥ २२ ॥

हे महादेवि ! मालाकी मणिसंख्या कहता हूं, सुनो । पंचविंशति (२५) संख्यामें मोक्षलाभ, सप्तविंशति (२७) संख्यामें पुष्टिलाभ ॥ २२ ॥

त्रिंशद्भिर्धनसिद्धिः स्यात्पञ्चाशन्मन्त्रसिद्धये ।
अष्टोत्तरशतैः सर्व्वा सिद्धिरेव महेश्वरि ॥ २३ ॥

तीस संख्यामें धनसिद्धि, पचास संख्यामें मन्त्रसिद्धि और हे महेश्वरि ! अष्टोत्तरशत (१०८) संख्यामें सभी कामना सिद्ध होती हैं ॥ २३ ॥

श्रीदेव्युवाच ।

एतत्साधारणं प्रोक्तं विशेषं कामिनां वद ॥ २४ ॥

देवी पार्वतीजी बोलीं-हे देव ! यह तो साधारण ही कहा, कामीजनोंके पक्षमें विशेष करके कहो ॥ २४ ॥

श्रीशिव उवाच ।

दन्तमाला जपे कार्या गले धार्या नृभिः शुभा ।
दशनैर्यदि कर्त्तव्या मन्त्रसंख्या तथा प्रिये ॥ २५ ॥

सर्वसिद्धिप्रदा माला राजदन्तेन मेरुणा ।
अन्यत्रापि च देवेशि मेरुत्वेनैवमादिशेत् ॥ २६ ॥

श्रीमहादेवजी बोले–हे प्रिये! जपविषयमें दन्तमाला ही कर्तव्य है, उसको गलेमें धारण करनेसे वह शुभसाधिनी होती है, यदि दशनद्वारा मन्त्रसंख्या कर्त्तव्य हो ॥ २५ ॥ तो राजदन्तको मेरु करनेसे उस मालाके द्वारा सब कामना सिद्ध होती है । हे देवि! अन्य मालाओंमें भी मेरुके स्थलमें यह राजदन्त श्रेष्ठ है ॥ २६ ॥

सङ्कल्पवाक्ये या संख्या संख्या तु जपहोमयोः ।
तां शृणुष्व महेशानि क्रमेण कथयामि ते ॥ २७ ॥

हे महेश्वरि! संकल्पवाक्य एवं जप और होममें जो संख्या है, वह क्रमसे कहता हूं सुनो ॥ २७ ॥

शतं सहस्रमयुतं लक्षं कोटिस्तथैव च ।
सर्वत्र परिसंख्येयमविशेषं महेश्वरि ॥ २८ ॥
विशेषे तु महेशानि विशेषं त्वाचरेत्क्वचित् ।
शतादिप्रतिसंख्यायामष्टौ तत्राधिकं जपेत् ॥ २९ ॥

हे महेशानि! शत, सहस्र, अयुत, (दशसहस्र) लक्ष, और कोटि सर्वत्र यही संख्या निरूपित है कहीं भी विशेष नहीं है ॥ २८ ॥ हे देवि! जपविषयमें कहीं विशेष यही है कि, शतादि संख्यामें अष्ट संख्या अधिक अर्थात् सौके स्थानमें एकसौ आठ जप करना चाहिये ॥२९॥

आद्यन्तपर्वद्वितयं हित्वा चाष्टकपर्वभिः ।
जपान्ते च तथा मालां शिवे वै धारयेत्ततः ॥ ३० ॥

आदि और अन्त यह दो पर्व त्यागकर अष्ट पर्वसे जप करना चाहिये जपके अन्तमें शिवे माला धारण करै ॥ ३० ॥

रक्तपुष्पार्घ्यबीजेन घटवाद्यपुरःसरम् ।
देव्यै समर्पयेद्धीमान्फलं तज्जपकर्मणः ॥ ३१ ॥

हे देवि ! बुद्धिमान् पुरुष रक्तपुष्पका अर्घ्य बीज और घटद्वारा बाजा बजाकर जपकार्यका फल देवीको समर्पण करै ॥ ३१ ॥

साङ्गोपाङ्गेन देवेशि रहस्यं जपकर्मणः ।
उक्तं सरस्वतीतन्त्रे तस्माज्जानीहि कामिनि ॥ ३२ ॥

हे देवेशि ! जपकर्मका साङ्गोपाङ्ग रहस्य सरस्वतीतंत्रमें कहा है उससे जानना ॥ ३२ ॥

करमालां महेशानि शिवशक्तिक्रमेण च ।
शृणुष्व परमेशानि सर्वमन्त्रप्रसिद्धये ॥ ३३ ॥

हे महेशानि ! हे परमेश्वरि ! सर्व मंत्रसिद्धिके निमित्त शिवशक्तिके क्रमसे करमालाका विषय सुनो ॥ ३३ ॥

अनामामध्यमारभ्य कनिष्ठादिक्रमेण च ।
तत्पार्श्वमूलपर्यन्तं प्रजपेद्दशपर्वभिः ॥ ३४ ॥

अनामिकाके मध्यपर्वसे आरंभ करके कनिष्ठादि अंगुलियोंके क्रमसे तर्जनीके मूलपर्यंत दश पर्वद्वारा जप करै ॥ ३४ ॥

मध्यमामूलतोवापि मेरुत्वेन समाचरेत् ।
अष्टोत्तरं जपेद्देवि आद्यन्ताद्वितयं त्यजेत् ।
शिवमाला समाख्याता शक्तिमालां शृणुष्व मे ॥ ३५ ॥

मध्यमाके मूलपर्वको मेरुरूपमें विचारे । हे देवि ! अष्टोत्तर जपकालमें आद्य और अन्तमें यह दो त्यागदे यह शिवमाला कही अब शक्तिमाला सुनो ॥ ३५ ॥

अनामामध्यमारभ्य कनिष्ठादिक्रमेण च ।
तर्जनीमूलपर्य्यन्तं प्रजपेद्दशपर्वसु ॥ ३६ ॥

अनामिकाके मध्यपर्वसे आरंभ करके कनिष्ठादिक्रमसे तर्ज्जनीके मूल पर्य्यंत दशपर्वद्वारा जप करै ॥ ३६ ॥

मध्यमाद्वितयं पर्व तर्ज्जन्याः परमेश्वरि ।
मेरुं जानीहि देवेशि तद्वयं न स्पृशेत्क्वचित् ॥ ३७ ॥

हे परमेश्वरि ! मध्यमाके दोनों पर्वको तर्ज्जनीका मेरु जानना चाहिये इस कारण उन दोनोंको स्पर्श न करे ॥ ३७ ॥

अष्टोत्तरजपे पर्व आद्यंतं द्वितयं त्यजेत् ।
नित्यं जपं करे कुर्यान्न तु काम्यं कदाचन ।
काम्यं चापि करे कुर्यान्मालाभावे च मत्प्रिये ॥३८॥

अष्टोत्तरजपकालमें आद्य और अन्त पर्वको त्याग दे, नित्य जपको ही करमालाद्वारा करना उचित है, किन्तु काम्यजप करना उचित नहीं है । हे प्रिये ! मालाके अभावमें काम्य जप करलेनेमें भी हानि नहीं है ॥ ३८ ॥

नित्यकर्मान्वितो जापो नित्यजापः स ईरितः ।
स्नानं च तर्पणं होमो बलिस्तृप्तिश्च नित्यतः ॥ ३९ ॥

नित्यकर्ममें जो जप करना चाहिये, वही नित्यजप कहाता है स्नान, तर्पण, होम, बलि और तृप्ति यह सब नित्यकर्ममें गिनेगये हैं ॥ ३९॥

अनुलोमविलोमाभ्यां सर्वमालासु संजपेत् ।
केवलंचानुलोमेन प्रजपेत्करमालया ॥ ४० ॥

सब मालाओंमें अनुलोम और विलोमद्वारा जप करना चाहिये कर मालासे केवल अनुलोमकेही क्रमानुसार जप करै ॥ ४० ॥

पुंमन्त्रं प्रजपेद्देवि शिवसम्भवमालया ।
शक्तिमंत्रं जपेद्देवि शक्तिसम्भवमालया ॥ ४१ ॥

हे देवि ! शिवमालाद्वारा पुंमंत्रजप और शक्तिमालाद्वारा शक्तिमंत्र जपना चाहिये ॥ ४१ ॥

चंद्रमंत्रं जपेद्देवि तथैवं वेदमातरम् ।
सावित्रीं प्रजपेद्देवि करेण शिवमालया ॥ ४२ ॥
चन्द्रमन्त्रं जपेद्देवि कराद्वा शक्तिमालया ।
सावित्रीजपने शस्ता सर्वदा करमालिका ॥
स्फाटिकी मौक्तिकी कौशी शस्ता स्याच्छंखसम्भवा ४३

हे देवि ! चन्द्रमंत्र और वेदमाता सावित्रीका मंत्र करद्वारा जपे और शिवमालासे सावित्रीके मंत्रका जप और करद्वारा तथा शक्ति मालासे चन्द्रका जपे । सावित्रीके मंत्र जपनेमें करमाला अथवा स्फटिकानिर्मित मोतियोंकी कौशी अर्थात् कुशनिर्मित और शंखनिर्मित मालाभी श्रेष्ठ है ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

वैष्णवे तुलसीमाला गजदन्तैर्गणेश्वरे ।
त्रिपुराजपने शस्ता रुद्राक्षै रक्तचन्दनैः ॥ ४४ ॥

वैष्णवमन्त्रके जपनेमें तुलसीकी माला और गणेशजीका मंत्र जपनेमें गजदन्तरचित माला श्रेष्ठ है रुद्राक्ष और रक्तचन्दननिर्मित माला त्रिपुरा देवीके जपमें उत्तम है ॥ ४४ ॥

श्मशानोद्भवधत्तूरबीजैर्धूमावतीजपे ।
करपर्वसमुद्भूतनाड्या संग्रथिता सती ॥ ४५ ॥

और धूमावतीका मंत्र जपनेमें श्मशानोत्पन्न धतूरेकी माला श्रेष्ठ होती है हे महेश्वरि ! करपर्वनिर्मित माला नाडीद्वारा गूंथी जाकर ४५॥

शस्ता च बगलामुख्याः सत्यं सत्यं महेश्वरि ॥
असङ्कल्प्यत्व सत्यं स्याद्यूनाधिकमथापि वा ॥
न सम्यक्फलभाग्भूयात्तस्मान्नियममाचरेत् ॥ ४६ ॥

बगलामुखीके मंत्र जपनेमें श्रेष्ठ होती है. हे देवि ! यह मैंने तुमसे सत्य ही सत्य कहा है । बिना संकल्प किये जो जप किया जाता है

अथवा नियमसे कम वा अधिक जो जप कियाजाता है. तो उससे सम्यक् प्रकार फलका भागी नहीं होता, इस कारण नियम बाँधकर जप करै ॥ ४६ ॥

ताम्रपात्रं सदूर्वञ्च सतिलं जलपूरितम् ॥ ४७ ॥
सकुशं सफलं देवि गृहीत्वाचम्य कल्पतः ॥
अभ्यर्च्य च शिरःपद्मे श्रीगुरुं करुणामयम् ॥ ४८ ॥
यक्षाशावदनो वापि देवेन्द्राशामुखोऽपि वा ॥
मासं पक्षं तिथिञ्चैव देवपर्वादिकं तथा ॥ ४९ ॥
आद्यन्तकालमुच्चार्य गोत्रं नाम च कामिनाम् ।
कर्माण्यद्य करिष्येऽहमैशान्यामुत्सृजेत्पयः ॥ ५० ॥

सतिल, सदूर्वादल, जलपूरित, सकुश और फलसहित ताम्रपात्र ग्रहणपूर्वक विधिके अनुसार आचमन और शिरःपद्ममें करुणामय गुरुकी अर्चना करके कौबेरी अर्थात् उत्तरदिशामें वा देवेन्द्राशा अर्थात् पूर्व दिशामें मुख करके मास, पक्ष, तिथि और देवपर्वादि एवं आद्यन्त काल और यजमानका गोत्र तथा नाम उच्चारणपूर्वक "मैं क्रिया जप, करूंगा" यह कहकर ईशानकोणमें जल छोडदे ॥ ४७ ॥ ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ५० ॥

चान्द्रः सौरस्तु सर्वत्र चान्द्रः स्यात्तिथिचोदने ।
चान्द्रोऽपि मुख्यः सर्वत्र गौणस्तु क्रूरकर्मणि ॥ ५१ ॥

चान्द्र और सौरकाल सर्वत्र ही प्रशस्त है, किन्तु तिथिनिर्णयमें चान्द्रकाल प्रशस्त है चान्द्रकाल भी सर्वत्र मुख्य है, किन्तु क्रूरकर्ममें गौण है ॥ ५१ ॥

ऋणदाने तथा दाने प्रौष्ठपद्यादिषु प्रिये ।
मासो नाक्षत्रिकः प्रोक्तः सावनो वर्षपर्वणि ॥ ५२ ॥

ऋणदान और दानमें तथा प्रौष्ठपद्यादिमें नाक्षत्रिक अर्थात् नक्षत्रसे होनेवाला मास उक्त होता है सावनमास वर्षपर्वमें उक्त होता है ॥ ५२ ॥

एवं युगे युगे प्रोक्तः कलौ सारस्तु सर्वतः ।
सौरे मासि शुभा दीक्षा न चान्द्रे न च तारके ॥५३॥
न सावनो महेशानि यस्मात्सा विफला भवेत् ।
क्रियावती वेदमयी चान्द्रमासेऽपि शस्यते ॥ ५४ ॥

इस प्रकार युगयुगमें उक्त होता है, कलियुगमें सर्वत्र ही सौरमास उक्त होता है, सौरमासमें दीक्षा कल्याणदायिनी होती है, चान्द्र वा नाक्षत्रिक अथवा सावन मासमें दीक्षाका विधान नहीं है, क्योंकि इन सब मासोंमें दीक्षाग्रहणसे कुछ फल नहीं होता, वेदमयी क्रिया चान्द्रमासमें भी श्रेष्ठ है ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

शुक्लपक्षे शुभं सर्वमशुभं च सितेतरे ।
प्रातःकालं समारभ्य यावन्मध्यदिनं रवेः ।
तावत्कर्माणि कुर्वीत यः सम्यक्फलमीहते ॥ ५५ ॥

शुक्लपक्ष सर्वत्र ही शुभ है और कृष्णपक्षको सर्वत्र अशुभ जाने । जो सम्यक् प्रकार फलकी कामना करे, वह प्रातःकालसे आरंभ करके मध्याह्नपर्यन्त सब कार्य करे ॥ ५५ ॥

क्रूरकर्माणि कुर्वीत शेषेऽपि परमेश्वरि ।
गते तु प्रथमे यामे तृतीयप्रहरावधि ॥ ५६ ॥

हे परमेश्वरि ! क्रूरकर्म शेषमें भी करनेसे कोई हानि नहीं है, प्रथम प्रहर गत होनेपर तृतीययामपर्यन्त ॥ ५६॥

कालो नक्तं जपस्योक्तः पूजाकालमितः शृणु ।
अर्द्धयामे गते नक्तमर्द्धयामे स्थिते सदा ।
पूजाकालो भवेद्यामश्चतुर्वर्गप्रदः सदा ॥ ५७ ॥
श्लिष्टे द्वे घटिके ये तु रात्रेर्मध्यमयामयोः ।
सा महारात्रिरुद्दिष्टा तत्कृतं कर्म चाक्षयम् ॥ ५८ ॥

यद्यज्जप्तं हुतं यद्यत्कृतं वा मोक्षसाधनम् ।
तत्सर्वमक्षयं याति तथानन्त्याय कल्पते ॥ ५९ ॥

जपका प्रशस्त काल कहा, अब पूजाका समय सुनो । रात्रिका अर्द्धयाम बीतनेपर अर्द्धयाम स्थितिपर्यन्त पूजाका काल है, इस कालमें पूजा करनेसे चतुर्वर्ग (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) प्राप्त होता है, इसमें सन्देह नहीं । रात्रिके मध्ययामकी जो दो घडी शेष रहती हैं, उन्हींको महारात्रि कहते हैं, महारात्रिमें जो कर्म किया जाता है, वही मोक्षदायक होता है । वही सब फल अक्षय होता है और अनन्त पुण्यफलप्रदान करसकता है ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ ५९ ॥

स नक्तो वैष्णवे सौरे महासौरे च पैतृके ।
मध्याह्नं च विना देवि शशाङ्कग्रहणाद्विना ।
दीक्षा कार्या प्रयत्नेन शुक्लपक्षविभेदतः ॥ ६० ॥

वैष्णवकर्म, सौरकर्म, महासौर और पैतृक कर्म रात्रिकालमें करना उचित नहीं है, हे देवि ! मध्याह्नके अतिरिक्त, चन्द्रग्रहणके अतिरिक्त शुक्ल और कृष्णपक्षके भेदमें यत्नसहित दीक्षा कार्य करै ॥ ६० ॥

मुक्तिकामः कृष्णपक्षे भुक्तिकामः सिते तथा ।
भूतिकामेन कर्त्तव्यः कृष्णस्थात्पञ्चमीदिनात् ॥ ६१ ॥

मुक्तिकी कामना करनेवाला मनुष्य कृष्णपक्षमें और भोगकी अभिलाषा करनेवाला मनुष्य शुक्लपक्षमें तथा ऐश्वर्यकी इच्छा करनेवाला मनुष्य कृष्णपक्षकी पंचमीके दिनसे आरंभ करके कार्य करै ६१

शुभकाले शुभं कुर्यादशुभं चापि दुःखितः ।
उपरागे महातीर्थे कालदोषो न विद्यते ॥ ६२ ॥

शुभकालमें कार्य करनेसे समस्तही शुभ होता है आतुर मनुष्य अशुभ कालमें भी कर्म करै ग्रहणकाल और महातीर्थमें कालदोष नहीं माना जाता ॥ ६२ ॥

वाराणस्यां विशेषेण सर्वदा सर्वमाचरेत् ।
सदा कृतयुगं तत्र सर्वदा चोत्तरायणम् ॥ ६३ ॥

विशेष करके वाराणसीमें सदाही सब कर्मोंका अनुष्ठान करै । वहां सदाही सत्ययुग और सदाही उत्तरायण है ॥ ६३ ॥

अविशेषो दिवा रात्रौ सन्ध्यायां च महानिशि ।
प्रत्यक्षं दृश्यते वह्नौ मूर्त्या वर्तं पुनः शिवे ।
काश्याञ्च नोदेति कदा सिद्धियोगो वरानने ॥ ६४ ॥

विशेषतः दिन रात्रि और संध्या तथा महानिशा इन सबको वहां अविशेष अर्थात् समानरीतिसे पुण्यदायक जाने । हे शिवे ! वहां वह्निमें मूर्त्यावर्त्त प्रत्यक्ष दिखाई देता है. हे वरानने ! काशीमें कब सिद्धियोग उदय नहीं होता । अर्थात् काशीमें सदैव सिद्धियोग रहता है ॥ ६४ ॥

द्वित्रिभ्यां क्रोशतः काशी पञ्चक्रोशभिवान्तरे ।
आयामे विस्तरे देवि नित्येयं नित्यदा शुभा ॥ ६५॥

दो तीन कोशव्यापी काशीका अवस्थान और भावान्तरमें पंचकोशी याने । हे देवि ! दीर्घ और विस्तारमें यह काशी नित्या और नित्यकाल शुभदायिनी है ॥ ६५ ॥

इयं निर्वाणनगरी परंज्योतिर्मयी शिवे ।
ब्रह्मांडं स्थापयेत्तत्र सकूटं वस्तु मानवम् ॥ ६६ ॥

हे शिवे । यह काशी निर्वाणनगरी और परमज्योतिर्मयी है इसमें कूटवस्तु और मनुष्यके सहित ब्रह्माण्ड स्थापित है ॥ ६६ ॥

यत्र भ्रमणतो देवि ना निर्वाणमवाप्नुयात् ।
सर्वस्वेनापि कर्त्तव्यं वाराणस्यां द्विजार्पणम् ॥ ६७ ॥

इसमें भ्रमण करनेसे मनुष्य निर्वाणमुक्ति पाता है, वाराणसीमें सर्वस्व दान करके भी ब्राह्मणको संतुष्ट करना चाहिये ॥ ६७ ॥

वाराणस्यां द्विजे दानं ब्रह्मयोगे रतिस्तथा ।
निष्कामकर्मबन्धश्च सर्वं निर्वाणकारणम् ॥ ६८ ॥

वाराणसीमें ब्राह्मणको दान, ब्रह्मयोगमें प्रीति, और निष्कामकर्म, यह सब निर्वाण मुक्तिके कारण हैं ॥ ६८ ॥

गंगादिमुक्तिक्षेत्रादौ ज्ञानादेर्योगतस्तथा ।
मृतं पूतं नयेत्काशी मुक्तिं मदुपदेशतः ॥ ६९ ॥
न वासोऽन्यत्र मे यस्मान्न मुक्तिः काशिकां विना ।
तत्र यद्यत्कृतं कर्म तदनन्तफलप्रदम् ॥ ७० ॥

गंगादि मोक्षप्रद क्षेत्रादिमें ज्ञानादियोगसे मुक्ति होती है, किन्तु मेरे उपदेशसे काशी मरे मनुष्यको भी पवित्र करके मुक्तिप्रदान करती है काशीमें मेरा वास है, काशीके अतिरिक्त कोईभी मुक्ति देनेमें समर्थ नहीं है, उसमें जो जो कर्म किये जाते हैं, उनसे अनन्तफल प्राप्त होसकता है ॥ ॥ ६९ ॥ ७० ॥

अक्षयं हि भवेत्सर्वं दृढां सिद्धिमवाप्नुयात् ।
तत्र सांयोगिकं पुण्यं तत्र चैव विमुच्यते ॥ ७१ ॥
तत्राहं तत्त्वरूपेण पुष्णामि त्वन्यथा नहि ।
स्वल्पत्वे तिथिकालस्य क्रियाकालगतिर्भवेत् ॥
काले खलु समारभ्य त्वकालेऽपि समापयेत् ॥ ७२ ॥

काशीमें किये सभी कर्म अक्षय होते हैं काशीमेंही दृढा सिद्धि प्राप्त होती है, हे शिवे ! उसीस्थानमें संयोगिक पुण्य, उसीस्थानमें मुक्ति और उसीस्थानमें मैं तद्ब्रह्मस्वरूपमें पुष्ट होता हूं, इसमें अन्यथा नहीं है, यदि तिथिकाल स्वल्प हो और इस कारण क्रियाकाल बीतजाय तो कालमें आरंभ करके अकालमें समापन करनेसे उसमें दोषका स्पर्श नहीं होता ॥ ७१ ॥ ७२ ॥

सन्ध्यायां पतितायान्तु गायत्रीं दशधा जपेत् ।
ततः कालोचितां सन्ध्यां कृत्वा कर्म समापयेत्॥७३॥
इत्येवं कथितं तुभ्यं यत्पृष्टं गिरिसम्भवे ।
इतः परतरं किञ्चित्तद्ब्रूयास्तव मानसे ॥ ७४ ॥

संध्याके पतित होनेपर दशबार गायत्री जपै फिर कालोचिता संध्या करके कर्मसमापन करना चाहिये ॥ ७३ ॥ हे पर्वतनन्दिनी ! तुमने जो पूछा था. मैंने वह सब कहा; इससे अधिक जो तुम्हारे मनमें विद्यमान हो, सो प्रकाश करके कहो ॥ ७४ ॥

इति सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे श्रीयोगिनीतन्त्रे देवीश्वरसम्वादे भाषाटीकायां चतुर्विंशतिसाहस्र्ये द्वितीयः पटलः ॥ २ ॥

श्रीदेव्युवाच ।

भगवन्प्रमथाधीश देवदेव जगद्गुरो ।
युद्धस्य वारणं देव ज्वरादेर्वारणं तथा ॥ १ ॥
क्षिप्रं भवेत्कथं नाथ कृपया परया वद ।
नाशुत्राता च जगतां त्वां विना परमेश्वर ॥ २ ॥

श्रीदेवीजीने कहा–हे भगवन् ! हे प्रमथाधीश देवदेव जगद्गुरो शंकर ! युद्ध और ज्वरादिका निवारण ॥ १ ॥ किस प्रकार शीघ्र संपादित होता है, यह मुझसे कृपापूर्वक वर्णन कीजिये । हे नाथ ! हे देव ! हे परमेश्वर ! आपके अतिरिक्त जगत्का शीघ्र रक्षाकरनेवाला कोई नहीं हैं ॥ २ ॥

ईश्वर उवाच ।

कथयामि तव स्नेहात्कवचं वारणं महत् ।
युद्धस्य च ज्वरादेश्च क्षिप्रं हि नगनन्दिनि ।
प्राकृतेनैव वाक्येन कथयामि शृणुष्व तत् ॥३ ॥

ईश्वरबोले– हे पर्वतनन्दिनी ! मैं तुम्हारे स्नेहसे वशीभूत होकर युद्ध और ज्वरादिका शीघ्र निवारण करनेवाला महत्कवच प्राकृत वचनोंमें कहता हूं, सो सुनो ॥ ३ ॥

ॐ नमो भगवति वज्रशृंखले हन्तु भक्षतु खादतु अहो रक्तं पिब कपालेन रक्ताक्षि रक्तपटे भस्माक्षि भस्मलिप्तशरीरे वज्रायुधप्रकरानिचिते पूर्वान्दिशं बध्नातु दक्षिणान्दिशम्बध्नातु पश्चिमान्दिशम्बध्नातु नागार्थं धनाय ग्रहपतीन् बध्नातु नागपत्नीं बध्नातु यक्षराक्षसपिशाचान् बध्नातु प्रेतभूतगन्धर्वादयो ये ये केचित् पुत्रिकास्तेभ्यो रक्षतु ऊर्द्ध्वं रक्षतु अधो रक्षतु स्वनिकांबध्नातु जलमहाबले एह्येहि तु लोटि-लोष्टि शतावलि वज्राग्निवज्रप्रकरे हुँ फट् ह्रीं ह्रीं श्रीं फट् ह्रुं ह्रुं क्रूं फं फं सर्वग्रहेभ्यः सर्वदुष्टोपद्रवेभ्यो ह्रीं अशेषेभ्यो मां रक्षतु ॥ ४ ॥ इतीदं कवचं देवि सुरासुरसुदुर्ल-भम् । ग्रहज्वरादिभूतेषु सर्वकर्मसु योजयेत् ॥ ५ ॥

हे देवि ! इस सुरासुरदुर्लभ कवचको ग्रहज्वरादिमें एवंभूतगणोंमें और सब कार्योंमें ही संयोजित करे ॥ ४ ॥ ५ ॥

न देयं यत्र कुत्रापि कवचं मन्मुखाच्युतम् ।
दत्ते च सिद्धिहानिः स्याद्योगिनीनां भवेत्पशुः ॥ ६ ॥
दद्याच्छान्ताय वीराय सत्कुलीनाय योगिने ।
सदाचाररतायैव निर्जिताशेषशत्रवे ॥ ७ ॥

हे शिवे ! मेरे मुखसे निकलाहुआ यह कवच जहां तहां नहीं देना चाहिये, देनेसे सिद्धिकी हानि होती है और वह योगिनीगणोंका पशु

होता है ॥ ६ ॥ शान्त, वीर, श्रेष्ठवंशोत्पन्न योगी सदाचारनिरत, निर्जितशत्रु अर्थात् जिसने शत्रुओंको जीतलिया है, ऐसे मनुष्यको यह देना चाहिये ॥ ७ ॥

श्रीदेव्युवाच ।

श्रुतं हि कवचं दिव्यं त्वन्मुखाम्भोजनिर्गतम् ।
इदानीं श्रोतुमिच्छामि जगद्वश्यकरं परम् ॥ ८ ॥

श्रीपार्वतीजी बोलीं—हे देव ! आपके मुखकमलसे निकला हुआ दिव्य कवच मैंने सुना, अब अतिउत्तम जगद्वश्यकर मन्त्र कर्मादिके सुननेकी इच्छा करती हूं ॥ ८ ॥

ईश्वर उवाच ।

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि जगन्मोहकरं महत् ।
नारदेन पुरा पृष्टं मयि कैलासमूर्द्धनि ।
कथितं कवचं तस्मै सर्वमोहकरं मया ॥ ९ ॥

ईश्वर बोले—हे देवि ! महत् जगत्मोहकर कवच कहता हूं, सुनो पहिले कैलासशिखरमें नारदजीने मुझसे यह विषय पूछा था, उनसे मैंने सर्वमोहकर कवच कहा था ॥ ९ ॥

तेनैव कवचेनैव नारदो ब्रह्मसम्भवः ।
मोहयामास लोकांस्त्रीन्भित्वा हि कलहप्रियः ॥ १० ॥

उन कलहप्रिय ब्रह्मपुत्र देवर्षि नारदजीने उस कवचसेही त्रैलोक्यमण्डल भेदकरके मोहित किया था ॥ १० ॥

तदसम्भवमालोक्य विष्णुराह विधेः सुतम् ।
कथं वा मोहितं सर्वं वद मे कारणं मुने ॥ ११ ॥

उनका यह असम्भव कार्य देखकर विष्णुजीने उन ब्रह्मनन्दनसे कहा हे मुने ! तुमने किस प्रकारसे इन सम्पूर्ण जगत्को मोहित किया इसका कारण कहो ॥ ११ ॥

तत्सर्वमभवद्विष्णौ विष्णुराह समुद्रजाम् ।
कैलासशिखरासीनं महादेवं जगद्गुरुम् ।
पप्रच्छ नारदो धीमान्सर्वलोकहिते रतः ॥ १२ ॥

विष्णुजीने उन मुनिके निकटसे वह सब प्राप्तकर क्षीरोदनन्दिनी [लक्ष्मी] से कहाथा और सब लोकोंके हितमें निरत बुद्धिमान् नारदजीने कैलासशिखरपर बैठे हुए जगद्गुरु महादेवजीसे पूछा ॥ १२ ॥

नारद उवाच ।

कालिका या महाविद्या वर्ण्यतां महती प्रभो ।
किमेतस्याः फलं देव किमेतन्मोहनं भवेत् ।
केनोपायेन समरे त्राणं मे वद शंकर ॥ १३ ॥

नारदजी बोले–हे प्रभो शंकर ! महती कालिका महाविद्या वर्णन कीजिये । हे देव ! इसका फल क्या है ? यह मोहन कैसा है ? किस उपायसे समरमें रक्षा होती है ? यह सब कहिये ॥ १३ ॥

ईश्वर उवाच ।

त्रिकाले गोपितं देवि कलिकाले प्रकाशितम् ।
काली दिगम्बरी देवी जगन्मोहनकारिणी ।
तच्छृणुष्व मुनिश्रेष्ठ त्रैलोक्ये मोहनं त्विदम् ॥ १४ ॥

ईश्वर बोले–हे देवी ! यह सत्य, त्रेता और द्वापर इन तीनों युगमें गुप्त था कलिकालमें प्रकाशित हुआ है । दिगम्बरी काली देवी जगन्मोहनकारिणी है. हे मुनिश्रेष्ठ ! यह वही त्रैलोक्यमोहन सुनो ॥१४॥

अस्य कालभैरवऋषिरनुष्टुप् छन्दः-
श्मशानकाली देवता सर्वत्र मोहने विनियोगः

इसके कालभैरवऋषि, अनुष्टुप् छन्दः श्मशानकाली देवता और सर्वत्र मोहनमें इसका विनियोग है ॥ १५ ॥

"ऐंह्रींह्रूंक्रः स्वाहा विवादे पातु मां सदा ।
क्रींदक्षिणकालिकादेवतायै सभामध्ये जयप्रदा ॥१६॥
ह्रींह्रींश्यामाङ्गि शत्रुं मारय मारय क्रींक्रीं
त्रैलोक्यं वशमानय ह्रीं ह्रीं क्रीं मां रक्ष रक्ष ।
विवादे राजगेहे च द्वाविंशत्यक्षरा परा ॥ १७ ॥
ब्रह्मराक्षसवेतालात्सर्वतो रक्ष मां सदा ।
कवचैर्वर्ज्जितं यत्र तत्र मां पातु कालिका ।
सर्वत्र रक्ष मां देवि मम मातृस्वरूपिणी" ॥ १८ ॥
इत्येतत्परमं मोहं भवद्भाग्यात्प्रकाशितम् ॥ १९ ॥

हे देवि ! तुम्हारे भाग्यसेही यह परम मोहन प्रकाशित हुआ है ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥

सदा यस्तु पठेद्वापि त्रैलोक्यं वशमानयेत् ॥ २० ॥

जो मनुष्य इसका सदा पाठ करता है, वह तीनों लोकको वशीभूत करनेमें समर्थ होता है ॥ २० ॥

इदं कवचमज्ञात्वा पूजयेद्वीरकामिनीम् ।
सर्वदा स महाव्याधिपीडितो नात्र संशयः ।
अल्पायुः स भवेद्रोगी कथितं तव नारद ॥ २१ ॥

इस कवचको विना जाने जो वीर कामिनीकी पूजा करता है, वह महाव्याधिग्रस्त होकर पीडित, अल्पायु और रोगी होता है, इसमें सन्देह नहीं है नारद ! मैंने यह तुमसे कहा ॥ २१ ॥

धारणं कवचस्यास्य भूर्जपत्रे विशेषतः ।
समन्त्रकवचं धृत्वा इच्छासिद्धिः प्रजायते ॥ २२ ॥

विशेषतः भोजपत्रपर लिखकर यह कवच मन्त्रसहित धारण करनेसे इष्टसिद्धि प्राप्त होती है ॥ २२ ॥

शुक्लाष्टम्यां लिखेन्मंत्री धारयेत्स्वर्णपत्रके ।
कवचस्यास्य माहात्म्यं नालं वक्तुं महामुने ॥ २३ ॥

मन्त्रवान् मनुष्य शुक्लाष्टमीमें इस कवचको लिखके स्वर्णपत्रमें धरकर इसको धारण करै । हे महामुने ! इस कवचका माहात्म्य अनिर्वचनीय है ॥ २३ ॥

शिखायां धारयेद्योगी फलार्थी दक्षिणे भुजे ।
इदं कल्पद्रुमो देवि तव स्नेहात्प्रकाशिते ।
गोपनीयं प्रयत्नेन पठनीयं महामुने ॥ २४ ॥

योगी मनुष्य शिखामें और फलार्थी मनुष्य इसको दहिनी भुजामें धारण करै । हे देवि ! यह कल्पवृक्षकी तुल्य कवच तुम्हारे स्नेहसे प्रकाशित किया है इसको परमयत्नपूर्वक गुप्त रखकर सदा पाठ करै ॥ २४ ॥

विष्णुरुवाच ।

इत्येवं कवचं नित्यं महालक्ष्मि प्रगृह्यताम् ।
अवश्यं वशमायाति त्रैलोक्यं ते चराचरम् ॥ २५ ॥
शिवेन कथितं पूर्वं नारदाय फलेप्सवे ।
तत्पाठान्नारदेनापि मोहितश्च चराचरम् ॥ २६ ॥

विष्णुजीने कहा—हे महालक्ष्मी ! इस नित्य कवचको तुम ग्रहण करो चराचर त्रैलोक्य अवश्य तुम्हारे वशीभूत होगा ॥ २५ ॥ पहिले महादेवजीने इसको फलकामी नारदसे कहाथा, नारदने इस कवचका पाठ करके चराचरको मोहित कियाथा ॥ २६ ॥

श्रीदेव्युवाच ।

पुरा मुने जगद्वन्द्य प्रमथेश वरप्रद ।
नराणामुपकारार्थं ब्रूहि योगं सुविस्तरम् ॥ २७ ॥

येनाशु लभते राज्यं येनाशु लभते सुतम् ।
येनाशु लभते ज्ञानं येनाशु लभते धनम् ।
येनाशु लभते कीर्तिं येनाशु लभतेऽखिलम् २७।२८।

श्रीपार्वतीजी बोली—हे पुरातनमुने ! हे जगद्वन्द्य ! हे वरप्रद ! हे प्रमथेश ! मनुष्योंके उपकारार्थ जिसके द्वारा तत्काल राज्यलाभ, पुत्रलाभ, ज्ञानलाभ, धनलाभ, कीर्तिलाभ और जिसके द्वारा समस्त ही लाभ हो वही योग विस्तारसहित वर्णन कीजिये ॥ २७ ॥ २८ ॥

ईश्वर उवाच ।

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि यन्मां त्वं परिपृच्छसि ।
उक्तं फेत्कारिणीतन्त्रे नीलतन्त्रे च विस्तरात् ॥ २९॥

महादेवजी बोले—हे देवी ! तुमने मुझसे जो पूछा, वह कहता हूं, सुनो। फेत्कारिणतंत्र और नीलतंत्रमें यह विषय विस्तारसहित कहा है ॥२९॥

इदानीं विस्तराद्देवि कथयामि शुचिस्मिते ।
उदेति पश्चिमे भानुश्चन्द्रः पतति भूतले ।
यदि शुष्यति पाथोधिर्न मिथ्या च कदा च न ॥३०॥

हे शुचिस्मिते ! अब मैं तुम्हारे प्रति वह विस्तारसहित वर्णन करता हूं सुनो । यद्यपि पश्चिम दिशामें सूर्य उदय हो, चन्द्रमा यद्यपि पृथ्वीमें गिर पडे, समुद्र यद्यपि सूखजाय किन्तु तो भी यह सब वचन कभी मिथ्या नहीं होंगे ॥ ३० ॥

योगराजो महेशानि त्वव्यर्थोऽयं सदैव हि ॥ ३१ ॥
विष्णुचक्रं यथा व्यर्थं त्रिशूलश्च यथा मम ।
कुलिशं देवराजस्य तथा योगो मयोदितः ॥ ३२ ॥

हे देवि ! यह योगराज सदा ही अव्यर्थ है, विष्णुका चक्र मेरा

त्रिशूल और देवराज इन्द्रका वज्र जिस प्रकार अव्यर्थ है, ऐसे ही इस मेरे कहे योगको भी अव्यर्थ जानना चाहिये ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

यथैव निश्चितं देवि ब्रह्मणः कमलासनम् ।
तथैव निश्चितो देवि योगोऽयं नात्र संशयः ॥ ३३ ॥

हे देवि ! ब्रह्माजीका कमलासन जिस प्रकार निश्चित है, इसी प्रकार इस योगको निश्चित जानना इसमें सन्देह नहीं है ॥ ३३ ॥

कल्पवृक्षो यथा देवि ह्याकाक्षापारपूरकः ।
अयं योगवरो देवि तथैव परिकीर्तितः ॥ ३४ ॥

हे देवि ! कल्पवृक्ष जिस प्रकार आकांक्षाका पूण करनेवाला है, इस उत्तम योगको भी उसी प्रकार वासनापूरक जाने ॥ ३४ ॥

राज्यार्थञ्च कुलार्थञ्च सुतार्थं स्वर्णपत्रके ।
आयामप्रस्तृते देवि षोडशाङ्गुल सम्मिते ॥ ३५ ॥

हे देवि ! राज्यार्थ, कुलार्थ और सुतनिमित्त लम्बाई चौडाईमें सोलह अंगुल परिमाणवाले स्वर्णपत्रके ऊपर ॥ ३५ ॥

यज्ञार्थञ्च धनार्थञ्च कीर्त्यर्थं राजते शुभे ॥ ३६ ॥

यज्ञार्थ धनार्थ और कीर्तिके निमित्त चांदीके पत्रपर ॥ ३६ ॥

तथा मानमितो देवि तद्वत्ताम्रे विनाशने ।
स्वर्णे वा परमेशानि अन्यार्थं भूर्जपत्रके ॥ ३७ ॥

सन्मान वा साम्यताके निमित्त ताम्रपत्र और अन्यकार्यकी सिद्धिके लिये स्वर्णपत्र वा भोजपत्रपर ॥ ३७ ॥

लिखेन्मन्त्रं वरारोहे तारिण्याः सर्वसिद्धिदम् ।
राज्यार्थी च धनार्थी च पुत्रार्थी कीर्तिकामिकः ॥ ३८ ॥

सर्वसिद्धिप्रद तारिणीका मंत्र लिखे । हे वरारोहे ! राज्यार्थी, धनार्थी और पुत्रार्थी कीर्तिकी कामना करनेवाला ॥ ३८ ॥

वित्तार्थी विलिखेद्देवि लेखन्या सुमनोहरम् ॥ ३९ ॥
स्वर्णयष्ट्याष्टाङ्गुलया कनिष्ठायाः प्रमाणतः ।
ज्ञानार्थं कुशमूलेन त्वन्यार्थं दूर्वया लिखेत् ॥ ४० ॥

और ऐश्वर्यकी इच्छा करनेवाला मनुष्य कनिष्ठाप्रमाण अष्टांगुल स्वर्णलेखनीद्वारा यह मंत्र मनोहर रीतिसे लिखे । ज्ञानकी इच्छा करनेवाला कुशमूल और अन्यकामना चाहनेवाला दूर्वाद्वारा लिखे॥ ३९॥४०॥

आचम्य पुरतो देवि नत्वा च गुरुपादुकाम् ।
उत्तराशामुखो भूत्वा पूजयित्वा च तारिणीम् ॥४१॥

हे देवि ! प्रथम आचमन करके गुरुकी पादुकाको नमस्कारपूर्वक उत्तरकी ओरको मुखकरके तारिणीदेवीकी पूजा करै ॥ ४१ ॥

कुङ्कुमं रोचना जटामांसी चन्दनमेव च ।
लाक्षा कस्तूरिकाश्मीरं सिन्दूरं च वरानने ॥ ४२ ॥

फिर हे वरानने ! कुंकुम (रोली) गोरोचना, वालछड, चन्दन, काश्मीर (केशर) कस्तूरी, लाख और सिन्दूर ॥ ४२ ॥

सर्वमेकीकृतेनादौ षट्कोणं चक्रमालिखेत् ।
तन्मध्ये विलिखेत्तारां सार्द्धवेदाक्षरीं पराम् ॥ ४३ ॥
सार्द्धपञ्चाक्षरीं वापि तन्मयो वेदिमध्यगम् ।
साध्यं तत्र लिखेत्साध्यं शृणुत्वं शम्भुवल्लभे ॥ ४४ ॥

यह सब वस्तु एकत्र करके प्रथम षट्कोण चक्र लिखे, तिसमें अत्यन्त उत्कृष्ट सार्द्धवेदाक्षरी (साढे चारअक्षरवाली) अथवा सार्द्धपञ्चाक्षरी (साढेपांच अक्षरवाला) तारादेवीका मंत्र लिखे, तदनन्तर हे शंभुवल्लभे ! इस चक्रके मध्यवेदीमें साध्य विषय अर्थात् वांछित विषय लिखे साध्य विषय सुनो ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

अमुकस्यामुकं वाक्यं वशीकुरु च कुर्विति ॥ ४५ ॥

अमुकस्यामुकं वाक्यं वशीकुरु कुरु । अमुकस्यामुकं ज्ञानं सिद्धिं कुरुकुरु ॥ ४५ ॥

अमुकीनां शुभं पुत्रमुत्पादयोत्पादयेति च ।
अमुकस्यामुकं द्रव्यं देहि देहीति कामिनि ॥ ४६ ॥
एवमेव क्रमेणैव साध्यं संलिख्य यत्नतः ।
क्लीबहीनान्दीर्घवर्णान्षट्कोणे षट्समालिखेत् ॥ ४७ ॥

इस प्रकार क्रमशः यत्नपूर्वक साध्य लिखे. इस षट्कोणमें क्लीब हीन छै दीर्घ वर्ण लिखे ॥ ४६ ॥ ४७ ॥

वृत्तमष्टदलं पद्मं सुदृष्टं सुमनोहरम् ।
अष्टपत्रं लिखेत्तत्र किञ्जल्कयुगलं युगं ॥ ४८ ॥
अष्टपत्रे चाष्टवर्णान्वक्ष्यमाणाँल्लिखेत्ततः ।
वाग्भवं भुवनेशानीं कामं हुं प्रणवं तथा ॥ ४९ ॥
मायामन्त्रं ततः स्वाहापूर्वादि क्रमतो लिखेत् ।
चतुरस्रं चतुर्द्वारमेवं यन्त्रं समालिखेत् ॥५०॥

इसके पीछे अष्टदल गोलाकार युगलमें युगल किञ्जल्कयुक्त मनोहर पद्म और अष्टपत्रमें अष्टवर्ण लिखे । पूर्वादिक्रमसे वाग्भव, भुवनेशानी काम, हुं प्रणव (ओम्) एवं मायामंत्र और स्वाहा लिखना चाहिये चतुष्कोण चतुर्द्वारयुक्त इस प्रकार यंत्र लिखे ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ५० ॥

ज्ञानातौ सिद्धिकार्येषु अन्यत्र त्वमृतोदये ।
गुरौ शुक्रे तथा सोमे मङ्गले वा बुधेऽह्नि च ।
तारायां सानुकूलायां जपेन्मत्रं समाहितः ॥ ५१ ॥

ज्ञानप्राप्ति और अन्य सिद्धिके विषयमें एवं अन्य शुभकार्यमें, गुरु, शुक्र, सोम, मङ्गल वा बुधवारमें अनुकूल तारामें सावधानचित्तसे मन्त्रको जपे ॥ ५१ ॥

पीतवस्त्रेण संवेष्ट्य जंतुना परिवेष्टयेत् ।
पट्टवस्त्रेण रक्तेन बध्नीयात्साधकोत्तमः ॥ ५२ ॥

हे पार्वती ! पीतवस्त्र और लाक्षासे यह मंत्राधार पात्र वेष्टन करै । साधकोत्तम उसको लालवर्णके रेशमी वस्त्रसे बांध देवे॥ ५२ ॥

स्वर्णपीठेषु संस्थाप्य संख्यानन्त्वाचरेत्कृती ।
भूमिस्पृष्टं न चेत्कुर्यान्न निर्माल्येन संस्कृतम् ।
विदीर्णं लङ्घितं वापिनैव कुर्यात्कदाचन ॥ ५३ ॥
आयामे प्रस्तृते देवि षोडशाङ्गुलमानतः ।
घटं कुर्य्यात्प्रयत्नेन सर्वदृष्टिमनोहरम् ॥ ५४ ॥

अनन्तर कृती मनुष्य स्वर्णपीठमें उसको स्थापन करके संख्यान अर्थात् योग वा जप संख्या आरंभ करै, उसको कभी पृथ्वीका स्पर्श वा शिवनिर्माल्यका स्पर्श न करावे तथा विदीर्ण न करै, उसको उल्लंघकर जाना भी उचित नहीं है । हे देवि ! लम्बाई और विस्तारमें सोलह अंगुलपरिमाण सर्वजनमनोहर घट यत्नपूर्वक स्थापन करै ॥५३ ॥ ५४ ॥

राज्यार्थी काञ्चनेनैव पुत्रार्थी रजतेन च ।
ताम्रेण चैव युद्धार्थी मृदान्यत्र घटश्चरेत् ॥ ५५ ॥

राज्यकी कामना करनेवाला सुवर्णद्वारा, पुत्रकी इच्छा करनेवाला रजत (चांदी) द्वारा, युद्धकी अभिलाषा करनेवाला ताम्रद्वारा और अन्य कामना करनेवाला मृत्तिका (मिट्टी) द्वारा घट प्रस्तुत करावे ॥ ५५ ॥

तत्र मुक्तां प्रवालानि मणिं रजतकाञ्चने ।
धान्यं छित्वा मुखं तस्य पल्लवैः प्रतिपादयेत् ॥ ५६ ॥

इस घटमें मणि, मोती, मूँगा, चांदी और सुवर्ण तथा धान्य डाल मुखमें पञ्चपल्लव प्रदान करै ॥ ५६ ॥

क्षौमयुग्मेन रक्तेन प्रच्छाद्य प्रयतः सुधीः ।
अष्टाङ्गुल स्वर्णपत्रे चतुरस्त्रं समन्ततः ॥ ५७ ॥

तदुपरान्त रक्तवर्णके दो रेशमी वस्त्रोंसे यह घट यत्नपूर्वक ढकदे। फिर अष्टांगुल स्वर्णवस्त्रको चारों ओरसे चौकोनाकर कर ॥ ५७ ॥

तत्र मन्त्रं लिखित्वैवं घटे संस्थाप्य यत्नतः ।
चतुःषष्ट्युपचारेण यजेत्तारां परां शिवाम् ॥ ५८ ॥

उसपर मंत्र लिखकर इस घटमें यत्नसहित स्थापनपूर्वक चौंसठ उपचारोंसे शिवारूपिणी तारादेवीकी आराधना करै ॥ ५८ ॥

होमस्थाने कृते चतुर्विंशत्य ङ्गुलकल्पिते ।
अब्जकं पुष्पकं देवि षोडशच्छदमंडितम् ॥ ५९ ॥
किञ्जल्कैर्मण्डितं देवि बलिमादाय पूर्ववत् ।
निवेदयेन्महाभक्त्या बलिमन्त्रेण मन्त्रवित् ॥ ६० ॥
पञ्चामृतैः पञ्चगव्यैः स्नापयित्वा च पूजयेत् ।
अष्टोत्तरसहस्त्रन्तु हुत्वा साधकसत्तमः ।
तत्पुटोपारि देवेशि क्षिपेत्पुष्पाक्षतं तथा ॥ ६१ ॥

अनन्तर चौवीस अंगुल परिणाम होमस्थान निश्चित करके षोडशपत्रशोभित किञ्जल्कमण्डित अब्जक पुष्प और बलिद्वारा पूर्ववत् महाभक्ति युक्त होकर मंत्रज्ञ व्यक्ति बलिमंत्रद्वारा पूर्ववत् निवेदन करै पञ्चगव्य और पंचामृतसे स्नान कराकर पूजा करनी चाहिये। साधकश्रेष्ठ अष्टोत्तरसहस्रवार होमाहुति देकर हे देवेशि ! उस पुटके ऊपर पुष्पाक्षत निक्षेप करै ॥ ५९ ॥ ६० ॥ ६१ ॥

भूमिं ग्राममितां दद्याद्राज्यमिच्छति कामुकः ।
दक्षिणां युद्धकामी च काञ्चनाश्वौ महेश्वरि ॥ ६२ ॥

हे महेश्वरि ! फिर राज्याभिलाषी ग्रामपरिमिता भूमि युद्धार्थी दक्षिणा और कंचनके बने दो अश्व ॥ ६२ ॥

शालग्रामशिलामेकां स्वर्णरेखाद्यलंकृताम् ।
ज्ञानसिद्ध्यै प्रदद्यात्तु धनार्थी गाश्च काञ्चनम् ॥६३॥

ज्ञानार्थी स्वर्णरेखादिद्वारा अलंकृत एक शालग्रामशिला और धनकी इच्छा करनेवाला गौ एवं सुवर्णकी दक्षिणा देवै ॥ ६३ ॥

भोजयेद्ब्राह्मणान्धीरः कुमारीः कल्पपल्लवे ।
ततस्तु साधयेद्यन्त्रं पुरुषो दक्षिणे भुजे ॥ ६४ ॥

हे कल्पवृक्षके पत्तोंकी समान कोमलभुजावाली ! इसके पीछे धीर पुरुष ब्राह्मणभोजन और कुमारीभोजन करावे । फिर यह यंत्र पुरुष दक्षिण भुजामें धारण करै ॥ ६४ ॥

नारी वामभुजे चैव शिशुर्वै कण्ठभागके ॥ ६५ ॥

स्त्रियें वामभुजामें और बालक कण्ठमें धारण करै ॥ ६५ ॥

इत्येवं कथितं गरभ्यं न देयं प्राणसङ्कटे ॥ ६६ ॥

हे पार्वती ! यह मैंने तुमसे राज्यलाभादि मनोहर योग कहा । यह प्राणसंकट उपस्थित होनेपर भी किसी अनधिकारी को नहीं देना चाहिये ॥ ६६ ॥

इति सर्वतन्त्रोत्तमे श्रीयोगिनीतन्त्रे देवीश्वरसम्वादे भाषाटीकायां चतुर्विंशतिसाहस्रे तृतीयः पटलः ॥ ३ ॥

श्रीदेव्युवाच ।

देवदेव जगद्वन्द्य सुरासुरनमस्कृत ।
इदानीं श्रोतुमिच्छामि वीरषट्कर्मसाधनम् ॥ १ ॥

धन्यं पुण्यवतां राज्ञां राज्यादिकवयोजुषाम् ।
स्त्रियास्तु सिद्धसंस्थानां सर्वभोगविलासिनाम् ॥ २ ॥

श्रीदेवजीने कहा–हे सुरासुरनमस्कृत ! जगद्वन्द्य देवदेव ! अब मैं पुण्यवानोंका, राज्यादिव योभोगी (अत्यन्त सौभाग्यवान् वृद्ध) गणोंका, स्त्रियोंका. सिद्धसंस्थगणोंका तथा सब भोगविलासियोंमें धन्य और ग्रहणीय षट्कर्मसाधन सुननेकी इच्छा करती हूं ॥ १ ॥ २ ॥

श्रीईश्वर उवाच ।

शान्तिवश्यस्तम्भनानि विद्वेषोच्चाटने तथा ।
मारणं परमेशानि षट्कर्मेदं प्रकीर्तितम् ॥ ३ ॥

श्रीईश्वर (महादेवजी) बोले–हे परमेशानि ! शान्ति, वशीकरण, स्तम्भन, विद्वेषण उच्चाटन और मारण यही छैः कर षट् कर्म कहे गये हैं ॥ ३ ॥

तारिणी कालिका छिन्नामधिकृत्य जगन्मये ।
कथयामि तव स्नेहाद्द्रुतांसिद्धिकरं परम् ॥ ४ ॥

हे जगन्मये ! तारिणी, कालिका और छिन्नमस्ता इनको अधिकार करके तुम्हारे प्रति स्नेहवशतः मैं तुमसे शीघ्र सिद्धकरकरनेवाला परम विषय कहता हूं ॥ ४ ॥

रतिर्वाणी रमा ज्येष्ठा मातङ्गी कुलकामिनी ।
दुर्गाचैव भद्रकाली कर्मादौ कर्मसिद्धये ॥ ५ ॥

रति, वाणी, रमा, ज्येष्ठा, मातंगी, कुलकामिनी, दुर्गा और भद्रकाली यह कर्मादिमें कर्मसिद्धिका निमित्त होती हैं ॥ ५ ॥

षोडशैरुपचारैश्च यजेद्वीरः स्वशक्तितः ।
शून्यागारे महारण्ये देवतायतनेऽपि वा ॥ ६ ॥

वीर मनुष्य अपनी शक्तिके अनुसार षोडशोपचारसे उनकी पूजा करै । शून्यागार, महारण्य वा देवमन्दिरमें ॥ ६ ॥

पञ्चकर्माणि कुर्वीत मारणन्तु शवोपरि ।
तदभावे पितृवने वासांसि कथयामि ते ॥ ७ ॥
मुख्यं दिगम्बरं ज्ञेयं द्वीपिचर्म द्वीतीयकम् ।
तदभावे रक्तक्षौमं नान्यद्वस्त्रं प्रकल्पयेत् ॥ ८ ॥

प्रथमोक्त पांच कर्म करै, किन्तु मारणकर्म शवोपरि (मृतकदेह पर) करना चाहिये । उसका अभाव होनेपर श्मशानभूमिमें मारण करै । वस्त्रका विषय कहता हूं, सुनो । मुख्य तो दिग्वस्त्र (नग्न) है, दूसरा द्वीपिचर्म अर्थात् बाघकी खाल है, इनके अभावमें लालवर्णका रेशमी वस्त्र ग्रहण करै, अन्य वस्त्र निषिद्ध है ॥ ७ ॥ ८ ॥

स्वर्णमादौ द्वितीये च राजतं स्तम्भने शिला ।
विद्वेषोच्चाटने ताम्रं कपालं मारणे शुभम् ॥ ९ ॥

शान्तिमें सुवर्ण, वशीकरणमें रजत (चांदी) स्तंभनमें शिला, विद्वेषण और उच्चाटनमें ताम्र, तथा मारणमें नरकपाल शुभ है ॥९ ॥

विप्रोन्योऽपि नरः प्रोक्तो युवा वै कृष्णवर्णकः ।
अदुर्भिक्षव्याधिमृतो माला तस्य शुभावहा ॥ १० ॥

ब्राह्मण वा अन्यजातीय कृष्णवर्ण युवा अथवा दुर्भिक्षकी पीडा-रहित वा निरोग मृतमनुष्यकी अस्थिमाला ही शुभदायिनी है ॥१०॥

अभावे स्फाटिकी जप्या इन्द्राक्षैर्वाजपेत्प्रिये ।
मृदौ वा कोमले वापि विष्टरे वा सुरेश्वरि ॥ ११ ॥

इसके अभावमें स्फटिककी माला वा इन्द्राक्षमालासे जप करै । हे प्रिये सुरेश्वरि ! मिट्टी वा कोमल कुशासनमें ॥ ११ ॥

मुण्डे वाऽयोनिके देवि त्वचि व्याघ्रस्य वा प्रिये ।
एकहस्ते द्विहस्ते वा चतुर्हस्ते समन्ततः ॥ १२ ॥

स्थिरासनश्चरेत्सम्यक्स्वाभयं तत्र चिन्तयेत् ।
भये जाते महेशानि भैरवोक्तमनुं जपेत् ॥ १३ ॥

मुण्डमें वा योनिमें व व्याघ्रत्वचामें एक हाथ वा दो हाथ, अथवा चारों ओर चार हाथ स्थानमें सम्यक् प्रकार स्थिरासन करै । वह अपनी अभयचिन्ता करै अर्थात् निर्भय रहै. हे महेश्वरि ! भय उत्पन्न होनेपर भैरवोक्त मंत्रका जप करै ॥ १२ ॥ १३ ॥

विषयुग्मं वज्रजाले हनयुग्ममतः परम् ।
सर्वभूतानुतः कूर्चमन्त्रान्तो भैरवो मनुः ॥ १४ ॥

वज्रजालमें विषयुग्मः, फिर हनयुग्म और कूर्च मन्त्रके अन्तमें भैरवमन्त्र सर्वभयोंको दूर करता है ॥ १४ ॥

ततो भूतबलिं दद्यात्साधको धर्मसम्मितम् ।
अश्वत्थेन महेशानि धर्मकीलकमाचरेत् ॥ १५ ॥

अनन्तर साधक मनुष्य धर्मसंमित भूतबलिप्रदान करे । हे महेशानि ! अश्वत्थद्वारा वह धर्मका कीलक स्थापन करै ॥ १५ ॥

सूर्यवारादियोगेन पञ्चकर्माणि चाचरेत् ।
शनौ च मारणं देवि निश्चितं वीरवन्दिते ॥ १६ ॥

सूर्यवारादियोगमें पंचकर्मका आचरण करै हे वीरवन्दिते देवि ! शनिवारमें मारण करना चाहिये ॥ १६ ॥

रात्रियोगे च कर्त्तव्यं सर्वं कर्म शुचिस्मिते ।
प्राग्विद्वान्प्रजपेत्सम्यक्स्वमन्त्रमयुतं शवे ।
प्रयोगस्यफलावाप्तौ स्वस्वरक्षाकरं महत् ॥ १७ ॥

रात्रियोगमें सभी कर्मोंका साधन करना चाहिये । विद्वान् मनुष्य पहिले निजमंत्र अयुत (दशसहस्र) वार शवोपरि जपे । हे शुचिस्मिते ! प्रयोगकी फलप्राप्तिके लिये निज निज रक्षाविधान कर्त्तव्य है ॥ १७ ॥

ततः साध्यादिने मंत्री याममात्रनिशोत्तरम् ।
गणादिपञ्चभिर्देवैर्यजेत्कुलविनाशिनीम् ॥ १८॥

इसके पीछे मन्त्रवान् पुरुष रात्रिकालमें प्रहरमात्र बीतनेपर गणादि पांच देवताओंके सहित कुलविनाशिनी देवीकी पूजा करै ॥ १८ ॥

दिग्वासा गलिताशेषचिकुरः कुलकीलकः ।
शक्तियुक्तो जपेद्विद्यां सदा त्वा मनसा स्मरेत् ॥१९॥

नग्नहोकर समस्त केश, कुलकीलिक और शक्तियुक्त होकर सदा मंत्रस्मरण करै और मनसे तेरा स्मरण करै ॥ १९ ॥

लक्षसंख्यं महेशानि शक्तिपूजापुरःसरम् ।
प्रत्यहं भोजयेद्विप्रान्कौलिकाद्यान्दिनान्तरे ॥ २० ॥

हे महेश्वरि ! लक्षवार शक्तिपूजा करनेके पीछे नित्य ब्राह्मण को और दिनान्तरमें कुलकौलिकगणोंको भोजन करावे ॥ २० ॥

मांसं मद्यं तथा मत्स्यं हुत्वा वह्नौ शतं शतम् ।
दक्षिणां गुरवे दद्याद्गुरुरूपेण शाम्भवि ॥ २१ ॥

हे शाम्भवि ! मांस मद्य और मत्स्यद्वारा अग्निमें शतशतवार होम करके गुरुको गुरुतर रूपसे दक्षिणा देवे ॥ २१ ॥

एवमुक्तविधानेन दिग्भ्यो वा वीरपुङ्गवः ।
यदि कुर्यान्महेशानि देवानपि तथा नयेत् ॥ २२ ॥

हे महेशानि ! इस प्रकार कहेहुए विधानसे जो वीरश्रेष्ठ यह सब कार्य करे, तो दिशाओंसे देवताओंके भी उस स्थानमें बुलानेको समर्थ होसकते हैं ॥ २२ ॥

नापेक्षा जायते कान्ते चावश्यं फलभाग्भवेत् ।
महाप्रयोगे देवेशि कृष्णच्छागं बलिं हरेत् ॥ २३ ॥

हे कान्ते ! इसमें अपेक्षा वा संशय नहीं है, अवश्यही इसके फलका भागी होगा, हे देवेशि ! महाप्रयोगमें काले बकरेकी बलिप्रदान करे ॥ २३ ॥

पूजान्ते सततं देवि तन्मांसैर्वह्निमर्चयेत् ।
विधिः सर्वत्र कथितो दिव्यवीरपशुक्रमात् ॥ २४ ॥

हे देवि ! पूजाके पीछे उसके मांससे अग्निकी अर्चना करे । दिव्य-वीर पशुक्रममें सर्वत्र यह विधि कथन की गई है ॥ २४ ॥

क्रमेण फलमाप्नोति व्यत्यये पातकी भवेत् ॥ २५ ॥
इत्येवं कथितं तुभ्यं सम्यक् षट्कर्मगोचरम् ॥
गोपनीयं खले दुष्टे पशुपामरसन्निधौ ॥ २६ ॥

क्रमानुसार कार्य करनेसे फल प्राप्त और भेद करनेसे पापका भागी होता है, यह मैंने तुमसे षट्कर्मका विषय कहा । खल, दुष्ट और पशु-तुल्य पामर मनुष्यसे इसको छिपावे ॥ २५ ॥ २६ ॥

श्रीदेव्युवाच ।

सुराद्याः किंविधा देव शक्तिर्वा कीदृशी शुभा ।
षट्कर्मसु यथायोग्यं वद मे करुणानिधे ॥ २७ ॥

श्रीपार्वतीजीने कहा— हे करुणानिधे ! किस प्रकार सुरगण और किस प्रकार शक्ति कल्याणकारी होती है, षट्कर्मविषयका यथायोग्य यह सब वर्णन कीजिये ॥ २७ ॥

ईश्वर उवाच ।

माध्वी शान्तिकरी प्रोक्ता वश्ये च स्फाटिकी शुभा ।
स्तम्भने डाकिनी ज्ञेया विद्वेषे पैष्टिकी मता ॥ २८ ॥
उच्चाटने तथा गौडी मारणे भैरवी मता ।
एतासां लक्षणं देवि कथितं कुलमोहने ॥ २९ ॥

ईश्वर बोले–शान्तिविषयमें माध्वी, वशीकरणमें स्फाटिकी, स्तंभनमें डाकिनी, विद्वेषणमें पैष्टिकी ॥ २८ ॥ उच्चाटनमें गौडि और मारणमें भैरवी शुभकारी होती है. हे देवि ! यह सब शक्तियोंके लक्षण कुलमोहनतंत्रमें कहे हैं ॥ २९ ॥

पद्मिनी शान्तिदा प्रोक्ता वश्ये सा शंखिनी मता ।
स्तम्भनोच्चाटने देवि प्रशस्ता नागवल्लभा ॥ ३० ॥

पद्मिनी शान्तिदायिनी, वशीकरणमें शंखिनी स्तंभन और उच्चाटनमें नागवल्लभा श्रेष्ठ है ॥ ३० ॥

मारणे च तथा शस्ता डाकिनी शत्रुमृत्युदा ।
गौराङ्गी दीर्घकेशी या सदा चामृतभाषिणी ॥ ३१ ॥

और मारणमें डाकिनी शत्रुको मृत्यु देनेवाली होती है, गौराङ्गी, दीर्घकेशी, सदा अमृतभाषीणी ॥ ३१ ॥

रक्तनेत्रा सुशीला च पद्मिनी साधने शुभा ।
मन्त्रसिद्धिकरी ह्येषा शंखिनी सापि भामिनि ॥ ३२ ॥

रक्तनेत्रा पद्मिनी साधनविषयमें शुभदायिनी होती है, हे भामिनी ! शंखिनी और मन्त्रसिद्धिकरी ॥ ३२ ॥

दीर्घाङ्गी सा शंखिनी स्याज्जगद्रञ्जनकारिणी ।
समांगी शूद्रदेही च न खर्वा नातिदीर्घका ॥ ३३ ॥
दीर्घकेशी मध्यपुष्टा मृदुभाषा च नागिनी ।
कृष्णाङ्गी च कृशाङ्गी च दन्तुरा मदतापिता ॥ ३४॥

शंखिनी, दीर्घाङ्गी और सबजनोंका मनरंजन करनेवाली है, नागिनी समान अंगवाली शूद्रतुल्य देहधारिणी न बहुत खर्व (ठिंगनी) न बहुत लम्बी, दीर्घकेशी, मध्यपुष्टा और मीठा बोलनेवाली होती है, कृष्णांगी और कृशाङ्गी, दन्तुरा, मदतापिता ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

ह्रस्वकेशी दीर्घघोणा सदा निष्ठुरवादिनी ।
सदा क्रुद्धा दीर्घदेहा महारावपरायणा ॥ ३५ ॥
निर्लज्जा हास्यहीना च निद्रालुर्बहुभक्षिका ।
इयं सा डाकिनी प्रोक्ता मृत्युयोगे प्रशस्यते ॥ ३६ ॥

ह्रस्वकेशी (छोटे केशवाली) दीर्घघोणा (बडे नाशिकावाली) सदा निष्ठुर बोलनेवाली, सदा क्रोधित, दीर्घदेहवाली, महाशब्दवाली, निर्लज्ज हास्यहीन, सदा सोनेवाली और बहुत भोजन करनेवाली कोहि डाकिनी कहागया है, यह डाकिनीही मृत्युयोगमें श्रेष्ठ है॥ ३५॥ ३६॥

एतास्तु शक्तयो देवि सर्वजातिसमुद्भवाः ।
सापत्याश्च सुरत्यश्च जातपुत्रादिकाः शुभाः ।
ग्राह्याः कुलरसैः पूज्या भक्तिभावेन कामिनीः ॥ ३७॥

हे देवि ! सर्वजातिमें उत्पन्न यही सब शक्ति है, सन्तानवाली सुरति युक्त और जातपुत्रादि (जिसके पुत्र हैं) कोहि शुभकारिणी होती है यही सब शक्ति ग्रहण करने योग्य हैं, इन सब कामियोंकि कुल रसद्वारा भक्तिभावसे पूजा करै ॥ ३७ ॥

श्रीदेव्युवाच ।

केन केन च मन्त्रेण मन्त्री षट्कर्मभाग्भवेत् ।
तन्मन्त्रं कथय स्वामिन् यद्यहं तव वल्लभा ॥ ३८ ॥

श्रीपार्वतीजी बोली-हे महेश ! हे स्वामिन् ! यदि मैं तुम्हारी प्यारी हूं, तो मंत्रवान् मनुष्य किस किस मंत्रद्वारा षट्कर्मका भागी होता है, वह मंत्र मुझसे वर्णन करो ॥ ३८ ॥

ईश्वर उवाच ।

एकाक्षरं कालिकायास्तारायास्तु त्रिबीजकम् ।
वज्रवैरोचनीयो हि मनुरेकादशाक्षरः ॥ ३९ ॥

सर्वतेजोऽपहारी च मनुराख्यात एव च ।
बहुनात्र किमुक्तेन शृणु मत्प्राणवल्लभे ॥ ४० ॥

ईश्वर बोले—कालिकाका बीज एकाक्षर, ताराका बीज अक्षर, वज्रवैरोचनीका बीज एकादशाक्षर ॥ ३९ ॥ यह सर्वतेजोविनशीण मंत्र कहा है, हे प्राणवल्लभे ! बहुत कहनेका प्रयोजन नहीं है ॥ ४० ॥

केवलं शक्तियुक्तश्च जपेद्देवीं समाहितः ।
अवश्य फलमाप्नोति नान्यथा वीरवन्दिते ॥ ४१ ॥

केवल शक्तियुक्त होकर सावधानचित्तसे देवीका जप करै, हे वीरवन्दित ! तो अवश्यही फलप्राप्त होगा इसमें सन्देह नहीं ॥ ४१ ॥

खलो यदि फलं प्राप्तः सबलो यदि निष्फलः ।
भवेदेतन्महेशानि तदा सर्वं वृथा भवेत् ॥ ४२ ॥

यदि खलव्यक्ति फलको प्राप्त हो और सबल यदि निष्फल हो, तो यह सब वृथा होसकता है ॥ ४२ ॥

अहं धाता तथा पाता रक्षितोद्योगवान् शिवे ।
तथापि न हि सिद्धिः स्याच्चित्रमेतन्नगात्मजे ॥ ४३ ॥

हे शिवे ! मैं धाता और पाता (रक्षक) तथा उद्योगी हूं, इसपरभी यदि सिद्धि न हो तो यह आश्चर्यकी बात कहनी चाहिये ॥ ४३ ॥

एवन्तु मारणं देवि विशेषात्कथयामि ते ।
सान्तं वह्निसमायुक्तं वामनेत्रविभूषितम् ॥ ४४ ॥

हे देवि ! मैं तुमसे अन्तयुक्त और वह्निसंयुक्त वामनेत्रविभूषित मारणका विषय विशेष करके कहता हूं, सुनो ॥ ४४ ॥

ह्रींहुंहुं अमुकं मारय स्वाहा ।
कूर्चयुग्मं ततो देवि अमुकं मारय मारय ॥ ४५ ॥

ह्रींहुंहुंअमुक मारय मारय स्वाहा । हे देवि ! तदनन्तर कूर्चयुक्तं अमुकं मारय मारय ॥ ४५ ॥

चतुर्दशाक्षरो मन्त्रः स्वाहान्तः शत्रुनाशकः ।
खदिराङ्गारमादाय कुजाष्टम्यां विशेषतः ॥ ४६ ॥

चतुर्दशाक्षर स्वाहान्त मन्त्रको शत्रुनाशक जानना चाहिये । खैरके अँगारे लाकर विशेषकर मंगलवारकी अष्टमीमें ॥ ४६ ॥

लेखयेत्पुत्तलीं शत्रुस्वरूपां लोहपात्रके ।
निशायां मस्तके नेत्रे ललाटे हृदये करे ॥ ४७ ॥
नाभौ गुह्ये कटौ पृष्ठे क्रमोक्तेन पदद्वये ।
मन्त्रवर्णान्समालिख्य प्रतिष्ठां तत्र कारयेत् ॥ ४८ ॥

लोहपात्रपर शत्रुस्वरूप पुतली लिखकर रात्रिके समय मस्तक नेत्र, ललाट, हृदय हाथ ॥ ४७ ॥ नाभि, गुह्य, कमर, पीठ और दोनों पैरोंमें क्रमशः मन्त्रवर्ण लिखकर उसकी प्रतिष्ठा करै ॥ ४८ ॥

संहारमुद्रां बद्ध्वा तु ध्यायेद्देवीं जयप्रदाम् ।
दीर्घाकारां कृष्णवर्णां सदोर्द्ध्वस्तनमस्तकाम् ॥ ४९ ॥
नृमुण्डयुगलं हस्ते चर्वयन्तीं दिगम्बराम् ।
शत्रुनाशकरी देवी ध्यायेच्छत्रुक्षयायच ॥ ५० ॥

तदनन्तर संहारमुद्रा बंधनकर जयप्रदा देवीका ध्यान करै, दीर्घाकार, कृष्णवर्ण, ऊंचे ऊंचे स्तनोंवाली और जिनका मस्तक विस्तृत है. दिगम्बरा, हाथमें दो नृमुण्ड चर्वण करती हैं शत्रुके क्षयके निमित्त शत्रुनाशकरी देवीका इस प्रकार ध्यान करै ॥ ४९ ॥ ५० ॥

एवं ध्यात्वेष्टकाचूर्णैर्वामहस्तेन शाङ्करि ।
ॐ शत्रुनाशकर्त्र्यै नमः इति दत्त्वा महेश्वरि ॥ ५१ ॥

हरिद्राचूर्णसहिता धारां दद्यादनेन तु ।
अमुकस्य शोणितं पिब पिबेति च तत्परम् ।
मांसं खादय खादय ह्रीं नमश्चेति मन्त्रतः ॥५२॥
मध्याह्ने मध्यरात्रौ तु पूजयित्वा शताष्टकम् ।
जपेदेकादशाहे च रोगः स्यान्नात्र संशयः ॥ ५३ ॥
दण्डाधिकैकविंशाहे मृत्युरेव रिपोर्ध्रुवम् ।
अथवान्यप्रकारेण शत्रुक्षयमहं वदे ॥ ५४ ॥

हे शंकरि ! इस प्रकार ध्यान करके गेरूके चूर्णद्वारा वाम हाथसे "ॐ शत्रुनाशकर्त्र्यै नमः" इस मंत्रसे हरिद्रा चूर्णके सहित धारा प्रदान करै । इसके पीछे "अमुकस्य शोणितं पिब पिब मांसं खादय खादय ह्रीं नमः" इस मंत्रसे मध्याह्न वा मध्यरात्रिमें एक सौ आठ वार पूजा करके जप करै, इस प्रकार करनेसे ग्यारहवें दिनमें निःसन्देह शत्रुको रोग होगा इक्कीसव दिनके एक दण्डमें रिपु (वैरी) की मृत्यु होगी, इसमें सन्देह नहीं अथवा मैं अन्यप्रकारसे शत्रुमारण कहता हूं, सुनो ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

पुंगोशकृत्समादाय मेलयेदुष्णवारिणा ।
विपरीतक्रमेणैव जपपूजादिकञ्चरेत् ॥ ५५ ॥

वृषका गोबर लाकर उष्ण जलद्वारा उसकी पूजा करै । इसमें विपरीतक्रमसे जप पूजादिका अनुष्ठान करना चाहिये ॥ ५५ ॥

महादेवाय नम इति पुंगोशकृतमाहरेत् ।
शिवाय नम इति मन्त्रेण पिण्डीकरणमाचरेत् ॥५६॥
पशुपतये नम इति प्राणान्संस्थापयेत्ततः ।

लोहपात्रे महेशानि खादिराङ्गारयोगतः ।
शत्रुप्रतिकृतिं कृत्वा तत्र संस्थापयेच्छिवम् ॥ ५७ ॥

"महादेवाय नमः" इस मंत्रसे वृषका गोबर लाकर "शिवाय नमः" इस मंत्रसे गठन संपादनपूर्वक " पशुपतये नमः " इस मन्त्रसे प्राण स्थापन करै । हे महेश्वरि ! लोहेके पात्रमें खैरके अँगारोंसे शत्रुकी आकृति लिखकर वहां स्थापन करै ॥ ५६ ॥ ५७ ॥

ततोध्यायेन्महारुद्रं ध्यानं शृणु समाहिता ।
शत्रोर्वक्षःस्थितं रुद्रं ज्वलदग्निसमप्रभम् ॥ ५८ ॥

इसके उपरान्त महारुद्रका ध्यान करना चाहिये । यह ध्यान सावधान चित्तसे सुनो शत्रुके वक्षस्थल स्थित प्रज्वलित अग्निप्रभ ॥ ५८ ॥

वामहस्ते केशधरं दक्षिणात्प्राणकर्षणम् ।
नरचर्माम्बरं देवं महाव्यालादिवेष्टितम् ॥ ५९ ॥
पिनाकधृगिहागच्छ इत्याद्यावाह्य यत्नतः ।
शूलपाणे नम इति स्नापयेत्साधकोत्तमः ॥ ६० ॥
महेश्वरं नम इति पाद्याद्यैः संप्रपूजयेत् ।
ईशानादिन्तथामूर्त्तिं व्युत्क्रमेण प्रपूजयेत् ॥ ६१ ॥
अग्निकोणादिपर्यन्तं सूर्यरीत्या महेश्वरि ।
ॐ शिवाय नमो मूलमष्टाविंशतिधाजपेत् ॥ ६२ ॥

वामहस्तमें शत्रुके केशधारी और दक्षिणहाथसे शत्रुके प्राणोंको खैंचनेवाले, नरचर्माम्बर महासर्पादिवेष्टित ॥ ५९ ॥ (रुद्रदेवका ध्यान करै) "पिनाकधृगागच्छ " इत्यादि मन्त्रसे यत्नपूर्वक आवाहन करके 'शूलपाणये नमः' साधकोत्तम इस मंत्रसे स्नान करावे ॥ ६० ॥ ' महेश्वराय नमः ' इस मंत्रसे पाद्यादिद्वारा पूजा करै, फिर अग्निकोणादि पर्यन्त सूर्य रीतिद्वारा ईशानादिमूर्ति व्युत्क्रमद्वारा पूजा करनी चाहिये । "ॐ शिवाय नमः" ओम् मूल मंत्र अट्ठाईसबार जप करै ॥ ६१ ॥ ६२ ॥

हुँ क्षमस्वेति वामेन करेण तु विसर्जयेत् ।
केशवाजित विष्णो हे हरे सत्य जनार्दन ॥
हंस नारायणाय स्वाहा मन्त्रमेवं सकृज्जपेत् ॥ ६३ ॥

'हुं क्षमस्व' इस मन्त्रके द्वारा बांयें हाथसे विसर्जन करे, अजित, केशव, विष्णो, हरे, सत्य, जनार्दन, "हंस नारायणाय स्वाहा" यह मंत्र एकवार जपना चाहिये ॥ ६३ ॥

हुं नमो भगवते वासुदेवाय स्वाहा इति यः ।
ॐ शिवाय नमोमन्त्रमपिनित्यं सकृज्जपेत् ॥ ६४ ॥

'हुं नमो भगवते वासुदेवाय स्वाहा' यह मंत्र और 'ओम् नमः शिवाय' इस मंत्रका एक वार जप करै ॥ ६४ ॥

एवमेकादशाहेन शत्रून्मादनमञ्जसा ।
अवश्यं जायते देवि सत्यं सत्यं त्रिलोचने ॥ ६५ ॥

हे देवि ! इस प्रकार करनेसे ग्यारहवें दिन शत्रु एकवारही उन्मादित होजायगा । हे त्रिलोचने ! यह अवश्य ही होगा इसमें सन्देह नहीं ॥ ६५ ॥

कथयामि महादेवि वैरिस्तम्भनमुत्तमम् ।
कुम्भकारस्य सदनादानयेत्पिठरं शुभम् ।
एकं द्विकं त्रिकं चैव यत्कृतं साधकोत्तमः ॥ ६६ ॥
आनीय च उखामध्याद्भस्म पर्युषितन्तथा ।
निःक्षिप्य पिठरे शुष्कं नालिकापत्रविस्तरम् ॥
भस्मोपरिं च संस्थाप्य पिठरंतः सुरेश्वरि ॥
ऐशान्यां विवरं कृत्वा शनैर्वारे महेश्वरि ॥ ६७ ॥

अब शत्रुके स्तंभन करनेकी उत्तम विधि कहता हूं सुनो । कुम्हारके घरसे यह उत्तम पिठर एक दो अथवा तीन लावै । कुम्हारके

आँवेमेंसे भस्म लाकर उनको भर देवें। और उसके ऊपर दूसरे सिकोरे ढकदेवे साधना करनेवालोंमें श्रेष्ठ पुरुष शनैश्चरके दिन वाटिकाके ईशान कोनमें एक गढा खोदे ॥ ६६ ॥ ६७ ॥

पुनर्मध्याह्नकाले च निर्जने सति भामिनि ।
चतुर्दिक्षु वाटिकाया गर्त्तस्य निकटात्प्रिये ॥ ६८ ॥

हे भामिनि ! फिर मध्याह्नकालमें निर्जन होनेपर वाटिकाके चारों ओर गर्तके निकट हो ॥ ६८ ॥

तत्तावतीमहं भूमिं चौरेभ्यो रक्षयामि च ।
प्रफुल्लमनसा देवि चरेद्भूमेः परिग्रहम् ॥ ६९ ॥

तिस भूमिको मैं चोरोंसे रक्षा करता हूं हे देवि ! इस प्रकार प्रफुल्ल मनसे भूमिपरिग्रह ॥ ६९ ॥

तावतीञ्च ततो भूमिं वामावर्त्तेन भामिनि ।
परिक्रम्य पुनस्तत्र गर्त्तस्य निकटं व्रजेत् ॥ ७० ॥

हे भामिनि ! उस भूमिके बाँई ओर परिक्रमा करके फिर गढेके निकट जाय ॥ ७० ॥

तत्रैव निर्ज्जने गर्त्ते शलाकां लोहनिर्मिताम् ।
रोपयित्वा तदुपरि पिठरं सशरावकम् ।
संस्थाप्य मृद्भिः संपूर्य तद्गर्तं गृहमाव्रजेत् ॥ ७१ ॥

गुप्त रीतिसे उस गढेमें लोहेकी बनी शलाका गाडकर उसके ऊपर शरावेके सहित पिठर अर्थात् बन्द किया हुआ पात्र स्थानपूर्वक मिट्टीसे उस गढेको पूर्ण करके घरको चलाजाय ॥ ७१ ॥

गतिस्तम्भो भवेद्देवि चौरादीनां तथा खलु ।
अयं योगवरो देवि दुर्लभो वसुधातले ॥ ७२ ॥

हे देवि ! इस प्रकार करनेसे चोरादिकी गति रुक जायगी । हे देवि ! यह उत्तम योग पृथ्वीतलमें दुर्लभ है ॥ ७२ ॥

पिशाचभूतवेतालकूष्माण्डब्रह्मरक्षसा ।
दानवानां तथान्येषां गतिस्तत्र न जायते ॥ ७३ ॥

यह योग करनेसे पिशाच, भूत, वेताल, कूष्मांड, ब्रह्मराक्षस, दानव और अन्यान्य भूतगणोंको वहां गति नहीं होती ॥ ७३ ॥

धनपुत्रसमृद्धिस्तु वर्द्धतेहर्निशन्तथा ।
दिने दिने धर्मवृद्धिर्जायते नात्र संशयः ॥ ७४ ॥

दिन रात धन पुत्र और समृद्धिकी वृद्धि तथा दिन दिन धर्ममें बुद्धि बढती रहती है, इसमें सन्देह नहीं ॥ ७४ ॥

इति श्रीयोगिनीतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे देवीश्वरसम्वादे चतुर्विंशतिसाहस्रये भाषाटीकायां चतुर्थः पटलः ॥ ४ ॥

श्रीदेव्युवाच ।

भगवन्सर्वधर्मज्ञ लोकानुग्रहकारक ।
साधनं सर्वमन्त्रस्य सर्वाशापरिपूरकम् ।
तदहं श्रोतुमिच्छामि तद्वदस्व महेश्वर ॥ १ ॥

श्रीपार्वतीजी बोलीं—हे सब धर्मोके जाननेवाले लोकानुग्रहकारक भगवन् ! मैं सब मंत्रोंके संपूर्ण अंगोंका पूर्ण करनेवाला साधन सुननेकी इच्छा करती हूं, हे महेश्वर ! सो आप वर्णन कीजिये ॥ १ ॥

ईश्वर उवाच ।

शय्यायाः साधनं ह्यादौ वक्ष्येऽहं परमाद्भुतम् ।
सार्द्धयामगतायान्तु निशायां साधकोत्तमः ॥ २ ॥
भूत्वा दिगम्बरः सम्यगाचम्य विधिवत्तदा ।
अभ्युक्ष्य मूलमन्त्रेण शय्यायान्तत्र संविशेत् ॥ ३ ॥

महादेवजी बोले–पहिले मैं परम अद्भुत शय्यासाधन कहता हूं, सो सुनो । साधकोत्तम मनुष्य रात्रिका डेढ प्रहर बीतनेपर ॥ २ ॥ नग्न होकर यथाविधि आचमन पूर्वक मूलमंत्रसे अपने शरीरपर जल छिड-ककर शय्यापर जाय ॥ ३ ॥

गुरुं परगुरुश्चैव परात्परगुरुन्तथा ।
परमेष्टिगुरुश्चैव वामेऽभ्यर्च्य गणेश्वरम् ॥ ४ ॥

अनन्तर गुरु, परगुरु, परात्परगुरु, परमेष्टिगुरु इन सब गुरु और गणेशश्वरकी वामभागमें पूजा करके ॥ ४ ॥

दक्षिणे च भ्रुवोरूर्ध्वंश्मशानावासिने नमः ।
ततो यमासनायान्ते नमः इत्यर्चयेच्छिवे ॥ ५ ॥

'दक्षिणे भ्रुवोरूर्ध्वंश्मशानावासिने नमः' । इस मंत्रसे अर्चना कर-नेके पीछे 'यमासनाय नमः' इस मंत्रसे पूजा करै ॥ ५ ॥

शय्यातले देवि प्रणवं वाग्भवञ्च फट् ॥
लिखित्वाचम्य यत्नेन स्वमन्त्रोक्तविधानतः ॥ ६ ॥
प्रणवं मणिधरिञ्च वज्रिणीं चेन्महापदम् ॥
प्रतिसीरे रक्ष रक्ष मां हुं फट्स्वाहयायुतम् ॥ ७ ॥

हे शिवे ! ॐकार और फट् अन्त वाग्भवमंत्र लिखकर आचमनके पीछे निजमन्त्रोक्त विधानानुसार ॐकार और "मणिधरिश्चैव वज्रिणीं चेन्महापदम् । प्रतिसीरे रक्ष रक्ष मां हुं फट् स्वाहा" ॥ ६ ॥ ७ ॥

अनेन मनुना देवि शिखां बद्धा विधानतः ।
अङ्गन्यासकरन्यासौ मातृकान्यासमेव च ॥ ८ ॥

इस मंत्रसे विधिपूर्वक शिखाबंधन करै, फिर अंगन्यास, करन्यास, मातृकान्यास ॥ ८ ॥

भूतशुद्ध्यादिकं कृत्वा हृत्पद्मे परमां शिवाम् ।
ध्यात्वा भक्त्या समभ्यर्च्य मानसैः साधकोत्तमः॥९॥

और भूतशुद्धादिक समापनपूर्वक हृत्पद्ममें भक्तिसहित पूजा करके साधकोत्तम मनमें परमा शिवाका ध्यान करै ॥ ९ ॥

शय्यातलेतांप्रणीय मन्त्रोपरि वरानने ।
प्रणवञ्च ततो देवि बटुकेभ्यो नमस्तथा ॥ १० ॥
इति मन्त्रेण मनसा बटुं पाद्यादिभिर्यजेत् ।
ततस्तु वह्निबीजेन समन्ताज्जलधारया ॥ ११ ॥
वह्निप्राचीरमाचिन्त्य सङ्कल्पञ्च समादरात् ।
जपं कृत्वा समर्प्याथ विधिना परमेश्वरि ।
पुनः संकल्प्य देवेशि कुर्यात्सर्वक्रमं शिवे ॥ १२ ॥
होमञ्च तर्पणञ्चैव अभिषेकं ततः परम् ।
विप्रस्य भोजनञ्चैव अभावे द्विगुणं जपेत् ॥ १३ ॥
काञ्चनं दक्षिणां दत्त्वाच्छिद्रावधारणञ्चरेत् ।
संप्रोच्य बटुकं देवि क्षमस्वेति विसर्ज्जयेत् ॥ १४ ॥

तदनन्तर हे वरानने ! 'शय्यातले तांप्रणीय' फिर प्रणव (ॐकार) इसके पीछे 'बटुकेभ्यो नमः' मंत्रसे पाद्यादिद्वारा बटुककी पूजा करनी चाहिये । इसके उपरान्त वह्निबीज (रं) द्वारा चारों ओर जलधारासे वह्निप्राचीरकी चिन्ता करके यत्नपूर्वक विधिसहित सर्व समापन करनेपर फिर सर्वकर्मसे संकल्प, होम, तर्पण और अभिषेक करके ब्राह्मणभोजन एवं इसके अभावमें दूना जप करै. । हे शिवे ! हे परमेश्वरि ! फिर सुवर्णकी दक्षिणा देकर अच्छिद्राव अर्थात् छिद्ररहित पात्र धारण करै फिर बटुकका स्तव करनेके पीछे 'क्षमस्व' इस मन्त्रसे विसर्जन करै ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥

एवमुक्तं महादेवि शय्यासाधनमुत्तमम् ।
मन्त्रसिद्धिकरं शीघ्रमस्मत्सायुज्यदायकम् ॥ १५ ॥

हे महादेवि ! यह मैंने तुमसे शीघ्र सिद्धि करनेवाला अपना सायुज्यदायक उत्तम शय्यासाधन कहा ॥ १५ ॥

अथ शृणु त्रिवाटस्य चतुर्वाटस्य साधनम् ।
गत्वा तु त्रिपथं वापि चतुर्मार्गं वरानने ॥ १६ ॥

हे वरानने ! अब त्रिराहे और चौराहेका साधन कहता हूं, सुनो त्रिराहे वा चौराहेमें जाकर ॥ १६ ॥

प्रणमेद्गुरुमभ्यर्च्य मणिधरीति मन्त्रतः ।
बद्धा ग्रथिन्तु वस्त्रान्ते निर्भयः साधकोत्तमः ॥ १७ ॥

गुरुकी अर्चना और प्रणाम करके (मणिधरी) इस मंत्रसे ग्रंथिबंधनपूर्वक वस्त्रमंत्रोच्चारणपूर्वक साधक निर्भय होवे ॥ १७ ॥

श्मशानवासिनो ये ये देवा देव्यश्च भैरवाः ।
दयां कुर्वन्तु ते सर्वे सिद्धिदाश्च भवन्तु मे ॥ १८ ॥

फिर हाथ जोडकर प्रार्थना करै कि–हे श्मशानके रहनेवाले दश देवताओ ! तुम सब मिलकर मेरे ऊपर दया करो और मुझे सिद्धि दो ॥ १८ ॥

प्रणमेत्प्रणवाद्येनमनुनानेन भक्तितः ।
ततः पूर्वमुखो वापि उत्तराशामुखोऽपि वा ॥ १९ ॥
उपविश्य समाचम्य स्वस्ति वाच्य महेश्वरि ।
स्थानं सम्मार्ज्य तत्रैव प्रेतबीजं लिखेत्सुधीः ॥ २० ॥

अनन्तर 'प्रणवादि' इस मंत्रसे भक्तिपूर्वक प्रणाम करै । हे महेश्वरि ! तदनन्तर पूर्वमुख वा उत्तर मुखाभिमुख बैठकर आचमनके पीछे स्वस्तिवाचनपुरःसर स्थानमार्जन करके बुद्धिमान् साधक उसी स्थानमें प्रेतबीज लिखे ॥ १९ ॥ २० ॥

बीजोपरि महादेवि विहितासनमास्तरेत् ।
तत्रोपविश्य देवेशि हृदीष्टांदेवतां स्मरेत् ॥ २१ ॥

हे देवि ! बीजोपरि विहित आसन बिछाय उसके ऊपर बैठकर हृदयमें इष्टदेवताका स्मरण करना चाहिये ॥ २१ ॥

यथेष्टंमनसाराध्य ह्यष्टासु च बलिं हरेत् ।
कालादिभ्यो महेशानि पूजयित्वा विधानतः ॥ २२ ॥

मनमें यथेष्ट आराधना करके अष्टदिशामें बलि देकर विधानद्वारा कालादिकी पूजा करनी चाहिये ॥ २२ ॥

काली कपालिनी कुल्ला कुरुकुल्ला विरोधिनी ।
विप्रचित्ता तथा नीला बलाका च मुनिद्विषा ॥ २३॥
प्रणवादिनमोन्तेन पूजा बल्यादिना स्मृता ।
संकल्प्याष्टोत्तरशतं जप्त्वाच्छिद्रावधारणम् ॥
कृत्वा स्थानं परित्यज्य स्मरन्देवीं गृहं व्रजेत् ॥ २४॥

ओंकारादि अंगोंसहित 'नमोऽस्तु' मंत्रसे बलि आदिके द्वारा काली कपालिनी, कुल्ला, कुरुकुल्ला, विरोधिनी, विप्रचित्ता, नीला, बलाका और मुनिद्विषा इन देवियोंकी पूजा करनेके पीछे अष्टोत्तर शतवार जप करके अच्छिद्रावधारण करै, फिर इस स्थानको छोडकर देवीजीका स्मरण करता हुआ घरको चलाजाय ॥ २३ ॥ २४ ॥

एवमुक्त साधनान्ते सर्वसिद्धिनिषेवितम् ।
यस्मै कस्मै न दातव्यं साधकानां परं हितम् ॥२५॥

हे देवि ! यह मैंने तुमसे सर्वसिद्धिदायक वाटसाधन कहा । यह सर्व साधारणको नहीं देना चाहिये । यह साधकोंका परम हितकारी है ॥ २५ ॥

अतः परमहं वक्ष्ये बिल्वमूलस्य साधनम् ।
बिल्वमूलं महेशानि समन्ताच्छङ्करःस्मृतम् ॥ २६ ॥

अब मैं तुमसे बिल्ववृक्षका साधन कहता हूं हे महेशानि ! चारों ओरके बिल्वमूल शंकर स्वरूप कहेगये हैं ॥ २६ ॥

जटास्वरूपं देवेशि पर्णं जानीहि सुन्दरि ।
ऋग्यजुःसामसदृशांत्रिपत्रांहि वरानने ॥ २७ ॥

हे देवेशि ! हे सुन्दरि ! उसके पर्ण मेरी जटा है । हे वरानने ! उसके तीन पत्ते ऋक् यजुः और सामवेद स्वरूप हैं ॥ २७ ॥

शाखा हि सर्वशास्त्राणि जानीताम्मीनलोचने ।
कल्पवृक्षसमो बिल्वो ब्रह्मविष्णुशिवादयः ।
महालक्ष्मीर्बिल्ववृक्षा जातः श्रीशैलपर्वते ॥ २८ ॥

शाखाको सर्वशास्त्र जानना चाहिये । हे मीनलोचने ! बिल्ववृक्ष कल्पवृक्षके तुल्य और ब्रह्मा विष्णु शिवस्वरूप है श्रीमहालक्ष्मीजीने बिल्ववृक्ष होकर ही श्रीशैलपर्वतमें जन्म लिया था ॥ २८ ॥

श्रीदेव्युवाच ।

कथ सा विष्णुवनिता बिल्ववृक्षो बभूव ह ।
वृत्तान्तं परमाश्चर्यं वद मे करुणामय ॥ २९ ॥

श्रीपार्वतीजीने कहा—हे करुणामय ! विष्णुकी भार्याने किस प्रकार बिल्ववृक्ष होकर जन्म लिया । यह परमाश्चर्ययुक्त वृत्तान्त मैं सुनना चाहतौं हूं सो वर्णन करके मेरा कौतूहल चारितार्थ कीजिये ॥ २९ ॥

ईश्वर उवाच ।

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि वृत्तान्तं परमाद्भुतम् ।
सत्ये तु पूजयामास लिङ्गं रामेश्वराभिधम् ॥ ३० ॥

ज्योतीरूपं मदीयांशं प्रार्थ्य ब्रह्मादिभिः सह ।
तत्र मेऽनुग्रहाद्वाणी सर्वेषां प्रियतां गता ॥ ३१ ॥

ईश्वर बोले-हे देवि ! यह परमअद्भुत वृत्तान्त कहता हूं सुनो। सत्ययुगमें ज्योतीरूप मेरे अंश रामेश्वरनामक लिंगको ब्रह्मादि देवताओंके सहित देवियोंने पूजा की थी, उनमें मेरे अनुग्रहसे वाणी देवी सबकी प्रिया हुई है ॥ ३० ॥ ३१ ॥

विष्णोरतिप्रिया नित्यं सदासाभूत्सरस्वती ।
तादृक् प्रीतिर्न लक्ष्म्याश्च जायते केशवस्य हि ॥३२॥

वह सरस्वती विष्णुकी सदा प्यारी हुई है केशवकी लक्ष्मीके प्रति वैसी प्रीति उत्पन्न नहीं हुई ॥ ३२ ॥

इति चिन्तापरा लक्ष्मीर्ययौ श्रीशैलमुत्तमम् ।
प्राप्यमल्लिङ्गमेकान्ते तपस्तेपेऽतिदारुणम् ॥ ३३ ॥

इस कारण लक्ष्मी देवी चिन्तायुक्त होकर उत्तम श्रीशैलपर्वतको गई वहां मेरे एक लिंगको प्राप्त होकर उन्होंने अत्यन्त दारुण तपस्या आरंभ की ॥ ३३ ॥

तथापि हृदि नैवाभूत्कृपा मे परमेश्वरि ।
तदा सा वृक्षरूपेण स्थिता लिंगाग्रतः सती ॥ ३४ ॥

हे परमेश्वरी ! तोभी मेरी कृपाका न होना देख लक्ष्मी देवी मेरे लिंगके अग्रस्थित स्थानमें वृक्षरूपसे अवस्थान करके ॥ ३४ ॥

पत्रैः पुष्पैः फलैः स्वीयः पूजयामास सन्ततम् ।
कोटिवर्षं महेशानि ततो मेऽनुग्रहोऽभवत् ॥ ३५ ॥

अपने पत्र पुष्प और फलोंसे निरन्तर मेरी पूजा करने लगी। हे महेशानि ! तब करोडवर्ष पीछे मेरा अनुग्रह हुआ ॥ ३५ ॥

तेनैवानुग्रहेणैव विष्णोर्वक्षःस्थिताभवत् ।
तत्रैव परमेशानि विहरेत्सा सदैव हि ॥ ३६ ॥

उसी अनुग्रहके कारण लक्ष्मी विष्णुके वक्षस्थलमें स्थित हुई और वह निरन्तर उनके संग विहार करने लगी ॥ ३६ ॥

अतस्तु कारणाद्देवि तद्रूपेण हरिप्रिया ।
सदैव पूजयन्ती मां मद्भक्ता सातुला शिवे ॥ ३७ ॥

हे परमेशानि ! हे देवि ! इसी कारण वह हरिप्रिया उस वृक्षरूपमें सदा ही मेरी पूजा करती रहती हैं। हे शिवे ! वह मेरे प्रति अत्यन्त भक्तिमती हैं ॥ ३७ ॥

अतस्तु वृक्षमास्थाय तिष्ठामि च दिवानिशम् ।
सर्वतीर्थमयो देवि सर्वदेवमयः सदा ॥ ३८ ॥
श्रीवृक्षः परमेशानि अत एव न संशयः ।
तत्फलैस्तत्प्रसूनैर्वा तत्पत्रैर्यः प्रपूजयेत् ॥ ३९ ॥
तत्काष्ठचन्दनैर्वापि स मे भक्तः स मे प्रियः ॥ ४० ॥

इसी कारण मैं दिनरात बिल्ववृक्षका आश्रय करके वास करता हूँ, हे परमेश्वरि ! हे देवी ! अतएव बिल्ववृक्ष सदा ही सर्वतीर्थमय और सर्वदेवमय है इसमें सन्देह नहीं। बिल्वपत्र वा बिल्वपुष्प, बिल्व फल अथवा बिल्वकाष्ठके चन्दनसे जो मेरी पूजा करता है, हे देवि ! वही मेरा प्रिय और वही मेरा भक्त है ॥ ३८ ३९ ॥ ४० ॥

तत्काष्ठचन्दनं भाले यो धारयति संभ्रमात् ।
मत्तनुं शिवबुद्ध्या सा नमेद्देवि मुदान्विता ॥ ४१ ॥

जो मनुष्य भ्रमसे भी कपालमें बिल्वकाष्ठका चंदन धारण करता है, उसके देहको शिवतनु जानकर लक्ष्मी देवी हर्षित होकर प्रणाम करती हैं ॥ ४१ ॥

अतस्तच्चन्दनं देवि धारयेन्न कदाचन ।
तत्पत्रं तत्प्रसूनं वा धारयेन्नकदापिहि ॥ ४२ ॥

अतएव हे देवि ! वह चन्दन मनुष्यगण कभी धारण न करैं एवं उसका पत्र वा पुष्प धारण करना भी उचित नहीं है ॥ ४२ ॥

बिल्वमूले महेशानि प्राणांस्त्यजति यो नरः ।
रुद्रदेवो भवेत्सत्यं पापकोटियुतोऽपि सः ॥ ४३ ॥

हे महेशानि ! जो मनुष्य बिल्वमूलमें प्राणत्याग करता है. वह यदि करोडपापोंसे युक्त हो तो भी रुद्रदेह धारण करता है इसमें सन्देह नहीं ॥ ४३ ॥

अतस्तत्साधनं देवि सर्वेषां प्रियकारकम् ।
तत्र गत्वा बिल्वमूलं प्राग्वद्गुरुचतुष्टयम् ॥
अभ्यर्च्य यत्नतो देवि क्षेत्रपालं प्रपूज्य च ॥ ४४ ॥

हे देवि ! इस कारण उसका साधन सब देवताओंका प्रिय करनेवाला है, उस बिल्वमूलमें जाकर पूर्ववत् गुरुचतुष्टय (चारों गुरु) की पूजापूर्वक परमयत्नसे क्षेत्रपालकी पूजा करै ॥ ४४ ॥

क्षेत्रपाल महाभाग श्मशानाधिप सुव्रत ।
सिद्धिं देहि जगत्कर्त्तः स्थानं देहि नमोऽस्तुते ॥४५॥

फिर हे क्षेत्रपाल ! हे महाभाग ! हे श्मशानके अधिपति ! हे श्रेष्ठव्रतवाले ! हे जगत्कर्त्ता ! सिद्धि दीजिये । स्थान दीजिये । आपको प्रणाम है ॥ ४५ ॥

अनेन प्रणवाद्येन मनुना प्रणमेत्ततः ।
ततः स्थानन्तु संपूज्य लिखेत्तत्र वरानने ॥ ४६ ॥
वाग्भवं प्रेतबीजञ्च पुनर्वाग्भवमेवच ।
तदन्ते मूलमन्त्रञ्च विलिखेत्साधकोत्तमः ॥ ४७ ॥

"प्रणवादि" इस मंत्रसे प्रणाम करै । हे वरानने ! फिर उस स्थानकी पूजा करके वाग्भव बीज, प्रेतबीज, पुनर्वार वाग्भव बीज और इसके पीछे साधकोत्तम मूलमंत्र लिखै ॥ ४६ ॥ ४७ ॥

पूजयित्वा च कालादीन्पूर्ववत्परमेश्वरि ।
संकल्प्याष्टोत्तरशतं जप्त्वाऽच्छिद्रं च धारयेत् ॥४८॥

हे परमेश्वरि ! फिर कालादिकी पूजा पूर्ववत् समापन करके संकल्पपूर्वक अष्टोत्तरशत जप करनेके पीछे अच्छिद्रावधारण करै ॥४८॥

स्थानं परित्यज्य गुरुं संस्मरन् तद्गृहं व्रजेत् ।
इत्येवं कथितं तुभ्यं सारात्सारं परात्परम् ॥ ४९ ॥
गोपनीयं सदा भद्रे विशेषात्पशुसङ्कुले ॥ ५० ॥

इसके उपरान्त उस स्थानको छोडकर गुरुका चिंतन करते करते ही अपने घर चलाजाय । यह मैंने तुम्हारे प्रति सारसे भी सार परसेभी पर बिल्वसाधन कहा । हे भद्रे ! यह सदाही और विशेषकर पशुसंकुलस्थानमें गुप्त रखने योग्य है ॥ ४९ ॥ ५० ॥

इदानीं शृणु देवेशि मुण्डसाधनमुत्तमम् ।
यत्कृत्वा साधको याति महादेव्याः परं पदम् ॥५१॥

हे देवेशि ! अब उत्तम मुण्डसाधन सुनो । साधक यह मुण्डसाधन करके महादेवीके परमपदको प्राप्त होता है ॥ ५१ ॥

नरमाहिषमार्जारमुण्डकानि वरानने ।
अथवा परमेशानि नृमुण्डत्रयमादरात् ॥ ५२ ॥

हे वरानने ! नरमुण्ड, महिषमुण्ड और मार्जार (बिलावका) मुण्ड अथवा तीन नरमुण्ड यत्नसहित लावे ॥ ५२ ॥

शिवासर्पसारमेयवृषभानां महेश्वरि ।
नरमुण्डं तथा मध्ये पञ्चमुण्डी समीरिता ॥५३ ॥

शिवा (गीदड) मुण्ड, सर्पमुण्ड, कुक्कर (कुत्ता) मुण्ड, वृषभमुण्ड और नरमुण्ड, हे महेश्वरि ! यही पांच मुण्ड हैं ॥ ५३ ॥

अथवा परमेशानि नराणां पञ्च मुण्डकान् ।
तथा शतं सहस्रं वायुतं लक्षं तथैव च ॥ ५४ ॥
नियुतञ्चाथ वा कोटिं नृमुण्डान् परमेश्वरि ।
नरमुण्डं स्थापयित्वा प्रोथयित्वा धरातले ॥ ५५ ॥

अथवा हे परमेशानि ! पांच नरमुण्डही पांच मुण्ड रूपमें ग्रहण किये जाते हैं. तथा शत, सहस्र, अयुत, लक्ष, नियुत वा करोड नरमुण्ड गृहीत होते हैं. हे परमेश्वरि ! नरमुण्ड पृथ्वीमें गाड-कर ॥ ५४ ॥ ५५ ॥

वितस्तिप्रमितां वेदिं तस्योपरि तु कल्पयेत् ।
आयामप्रस्थतो देवि चतुर्हस्तौ समाचरेत् ॥ ५६ ॥

स्थापनपूर्वक उनके ऊपर ऊर्ध्वमें वितस्तिपरिमित वेदी बनावे, लम्बाई और चौडाईमें वह चार हाथकी बराबर होनी चाहिये ॥५६॥

सहस्राल्लक्षपर्यन्तं हस्तषोडशसम्मिताम् ।
ततः परं महादेवि शतहस्तमिताञ्चरेत् ॥ ५७ ॥
तस्यान्तुभूतनाथादींश्चतुर्दिक्षु समर्चयेत् ॥ ५८ ॥

सहस्रस लक्ष मुण्ड पर्यन्त सोलह हाथ वेदी और नियुतसे करोड संख्यक मुण्डमें २ सौ हाथकी बराबर वेदी बनानी चाहिये । उस वेदीमें चारों ओर भूतनाथादिकी पूजा करै ॥ ५७ ॥ ५८ ॥

पूर्वोक्तभूतनाथाय नमोमन्त्रेण देशिकः ।
पाद्यादिभिः पूजयित्वा बलिं दद्यात्प्रयत्नतः ॥ ५९ ॥

साधक व्यक्ति पूर्वोक्त भूतनाथजी नमोमन्त्रद्वारा पाद्यादि पूजा करके यत्नपूर्वक उसको बलि देवे ॥ ५९ ॥

एवन्तु दक्षिणे देवि श्मशानाधिपमादरात् ।
तद्वच्च पश्चिमे भागे कालभैरवमुत्तमम् ॥ ६० ॥

इस प्रकार दक्षिण दिशामें श्मशानाधिपति और पश्चिम दिशामें उत्तम कालभैरवकी ॥ ६० ॥

श्मशानादुत्तरे तद्वत्पूजयित्वा बलिं हरेत् ।
वेदिमध्ये प्रेतबीजं फट्कारैस्तदनन्तरम् ॥ ६१ ॥
पाद्यादिभिरनेनैव कुण्डानि परिपूजयेत् ॥ ६२ ॥

और उत्तरमें उसी प्रकार श्मशानकी पूजा करके आदरपूर्वक बलिदान करै वेदीमें प्रेतबीज और फट्कार मंत्रसे पाद्यादि कुण्डकी पूजा करनी चाहिये ॥ ६१ ॥ ६२ ॥

नैर्ऋत्यां ह्रीं चण्डिकायै बीजं च विलिखेत्ततः ।
तत्रैव पूजयेद्भक्त्या भारतीं शुभ्रविग्रहाम् ॥ ६३ ॥

साधकोत्तम नैर्ऋत्य कोणमें 'ह्रीं चण्डिकायै' और बीजमंत्र लिखकर उसी स्थानमें शुभ्र विग्रहा अर्थात् श्वेत शरीरवाली भारतीकी भक्तिपूर्वक पूजा करै ॥ ६३ ॥

वाग्देवतामंगयुतां नमोऽन्तवाग्भवादिना ।
अनेन मनुनाभ्यर्च्य बलिं तस्यै निवेदयेत् ॥ ६४ ॥

अंगयुक्त वाग्देवताकी नमोऽन्त वाग्भवादिमंत्रसे अर्चना करके उसको बलि निवेदन करनी चाहिये ॥ ६४ ॥

हे वीर सर्वदेवेश मुण्डरूप जगत्पते ।
दयां कुरु महाभाग सिद्धिदो भव मज्जपे ॥ ६५ ॥

हे वीर ! हे सब देवताओंके ईश्वर ! हे मुण्डरूप ! हे जगत्पते ! हे महाभाग्यवाले ! मेरे जपमें सिद्धि दो ॥ ६५ ॥

शवं कुर्याद्वह्निसंस्थं पाशमिन्दुकलान्वितम् ॥ ६६ ॥

इस मंत्रसे वेदिकाके ऊपरी भागमें तीन पुष्पाञ्जलि देवे । फिर शवको वह्निसंस्थ अर्थात् अग्निमें स्थापन और पाशको इन्दुकलायुक्त करके ॥ ६६ ॥

मायाबीजं कूर्चबीजं फट्कारस्तदनन्तरम् ।
पाद्यादीभिरनेनैव कुण्डानि परिपूजयेत् ॥ ६७ ॥

मायाबीज और कूचबीज फट्कार मन्त्रद्वारा पाद्यादिसे कुण्डकी पूजा करे ॥ ६७ ॥

नैर्ऋत्यां ह्रींचण्डिकायैनमोमन्त्रेण देशिकः ।
वायव्यां ह्रींभद्रकाल्यैनमोमन्त्रेण तत्परम् ॥ ६८ ॥
ईशाने च ह्रींदयायैनमोमन्त्रेण शाम्भवि ।
अग्नौतु ह्रींचण्डोग्रायैनमोमन्त्रेण साधकः ॥ ६९ ॥
पूजयित्वा बलिं दत्त्वा तदुत्थाय च संमुखे ।
श्मशानवासिनो ये ये देवा देव्यश्च भैरवाः ॥ ७० ॥
दयां कुर्वन्तु ते सर्वे सिद्धिदास्ते भवन्तु मे ।
अनेन प्रणवाद्येनात्रिवैंपुष्पाञ्जलिं क्षिपेत् ॥ ७१ ॥

साधक " ह्रीं चण्डिकायै नमः " इस मंत्रसे नैर्ऋतकोणमें, फिर ह्रीं भद्रकाल्यै नमः ' इस मंत्रसे वायुकोणमें ' ह्रीं दयायै नमः ' इस मंत्रसे ईशानकोणमें ' ह्रीं चण्डोग्रायै नमः ' इस मंत्रसे अग्निकोणमें पूजा करके बलिप्रदानपूर्वक उठकर खडा हो सन्मुख " श्मशानवासिनो ये ये देवा देव्यश्च भैरवाः । दयां कुर्वन्तु ते सर्वे सिद्धिदास्ते भवन्तु मे" प्रणवाद्य इस मंत्रसे तीन पुष्पाञ्जलि निक्षेप करै ॥६८॥६९॥७०॥७१॥

वदे स्थानन्तु संपूज्य वशी भव वशी भव ।
विष्टरासनमास्तीर्य उपविश्य महेश्वरि ॥ ७२ ॥
अष्टाधिकायुतजपं कृत्वाऽच्छिद्रं च धारयेत्
नत्वा स्थानं परिष्कृत्य देवीं ध्यायन्गृहं व्रजेत् ॥७३॥

इसके पाछ स्थानस्पर्शपूर्वक 'वशीभव' यह वचन कहै। हे महेश्वरि! फिर कुशासन बिछाकर उसके ऊपर बैठ आर अष्टाधिक अयुत, (१०००८) जप करके अच्छिद्रावधारण करै इसके उपरान्त स्थानपरिष्कारपूर्वक देवीको प्रणाम और ध्यान करके घर चलाजाय॥७२॥७३॥

पुरश्चर्याविधेर्देवि शेषं संशृणु शाम्भवि ।
कीलकं नैव कुर्यात्तु त्रिमुण्डोपरि कर्हिचित् ॥ ७४ ॥

हे शाम्भवि देवि! पुरश्चरणकी विधिके अनुसार अवशिष्ट सुनो। उसमें त्रिमुण्डोपरि कभी कीलक न कर ॥ ७४ ॥

शून्यागारे नदीतीरे पर्वते वा चतुष्पथे ।
बिल्वमुले श्मशाने वा निर्जने चैकलिङ्गके ॥ ७५ ॥
एतेषु प्रोथयेन्मुण्डान्सर्वकामार्थसिद्धये ।
एवं वा प्रोथयित्वा च नारं मुण्डं विधानतः ॥ ७६ ॥

हे देवि! संपूर्ण कामनाओंकी सिद्धिके निमित्त शून्यागारमें, नदीके तटपर, पर्वत चौराहे वा बिल्वमूल अथवा श्मशानमें निर्जनमें वा एक लिंगमें इन सब स्थानोंमें मुण्डोंको गाड दे। इस प्रकार नरमुण्ड गाडकर इसी विधानसे ॥ ७५ ॥ ७६ ॥

अनेन सर्वसिद्धिः स्याद्बहुभिः किमु सुव्रते ।
इत्येवं कथितं देवि मुण्डानां साधनं शिव ।
यत्कृत्वा सर्वसिद्धानामधिपो भुवि जायते ॥ ७७ ॥

पूजा करनेपर सर्वसिद्धि होती है। हे सुव्रते! हे शिवे। यह मैंने तुमसे मुण्डसाधन कहा। इसको साधन करके पृथ्वीमें सर्व सिद्धीश्वर होसकता है ॥ ७७ ॥

इति श्रीयोगिनीतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे देवीश्वरसम्वादे चतुर्विंशतिसाहस्रे भाषाटीकायां पञ्चमः पटलः ॥ ५ ॥

श्रीदेव्युवाच ।

भगवन्सर्वधर्मज्ञ सर्वागमविशारद ।
गुरुस्त्वं सर्वमन्त्राणां करुणामृतसागर ॥ १ ॥

श्रीदेवीजीने कहा–हे सर्वधर्मज्ञ सर्वागम विशारद भगवन् ! हे करुणासागर ! आप सब मंत्रोंके गुरु हैं ॥ १ ॥

सर्वधर्मकृतां पूज्य योगिहृत्पद्मभास्कर ।
दिव्यभावो वीरभावो महत्त्वेन प्रदर्शित ।
गोप्यं तत्र विशेषेण वद मे चन्द्रशेखर ॥ २ ॥

आपने सर्व साधन किये हैं, योगियोंके हृदयरूप कमलके आप सूर्यकी समान प्रफुल्ल करनेवाले हैं, आपने ही दिव्यभाव और वीर भाव दिखाया है. हे चन्द्रशेखर । अब उसका विशेषरूपसे गोप्य वर्णन कीजिये ॥ २ ॥

ईश्वर उवाच ।

दिव्यवीरविभेदेन योगोद्वौतु समीरितौ ।
तद्योगो ह्यभवत्कौलो दिव्यवीरो महेश्वरि ॥ ३ ॥

ईश्वर बोले कि–दिव्य और वीर भेदसे योग दो प्रकारका है, हे महेश्वरि ! योगही दिव्य वीर और कौल कहाता है ॥ ३ ॥

तद्योगं हि विना देवि यस्तत्कर्म समाचरेत् ।
न स योगी भवेद्देवि मुमुक्षुः कुलकामिनि ॥ ४ ॥
तावच्च ते प्रवक्ष्यामि श्रुत्वा कर्णेऽवतंसय ।
आत्मानं परमं ब्रह्म चिन्तयेदथ वा न चेत् ॥ ५ ॥
आत्मदेहं स्वेष्टरूपं सदैव परिचिन्तयेत् ।
ब्रह्माण्डञ्च तथा सर्वं स्वरूपेण विभावयेत् ॥ ६ ॥

हे देवि ! उस योगके विना जो उस कर्मका आचरण करता है वह मुमुक्षु योगी नहीं होता है. हे कुलकामिनि ! मैं वह सब तुमसे कहता हूं सो सुनकर उसको कर्णभूषण करो । आत्माकी परब्रह्मरूपमें चिन्ता करै अथवा आत्मदेह ही इष्टरूप है इस प्रकार निरन्तर चिन्ता करै और संपूर्ण ब्रह्माण्ड इष्टरूप है; ऐसी भावना करनी चाहिये ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥

दिव्ययोगमिमं देवि सावधानेन गोपय ।
वीरयोगं शृणुष्वेमं सर्वदेवनमस्कृतम् ॥ ७ ॥
बिन्दुत्रयं कलाक्रान्तं प्रथमं परिचिन्तयेत् ।
तत्तस्माद्भावयेज्जातं स्त्रीरूपं षोडशाब्दिकम् ॥ ८ ॥

हे देवि ! यही दिव्य योग है, तुम इसे सावधानीसे गुप्त रखना हे परमेश्वरि । सर्वदेवनमस्कृत यह वीरयोग सुनो । प्रथम कलायुक्त तीन बिन्दुकी चिन्ता करै फिर उससे षोडशवर्षीय स्त्रीरूपकी भावना करै ॥ ७ ॥ ८ ॥

बालार्ककोटिसुज्योतिः प्रकाशितादिगन्तरम् ।
मूर्द्धादिस्तनपर्यन्तमूर्ध्वबिन्दोः समुद्भवम् ॥ ९ ॥

इस स्त्रीके करोड बाल,सूर्यके समान ज्योतिर्मण्डलसे दिग् मण्डल प्रकाशित हुआ है, मूर्द्धादिस्तनपर्यन्त ऊर्ध्वबिन्दुसे यह ज्योतिः प्रकाशित होती है ॥ ९ ॥

बिन्दुर्यावन्मध्यदेहं कण्ठादिकीटशीर्षकैः ।
स्तनद्वयेन भासन्तं त्रिवलीपरिमण्डितम् ॥ १० ॥

उसका मध्य देह ही मध्य बिन्दु है, वह कण्ठसे कमरके ऊर्ध्व भाग पर्यन्त है यह दोनों स्तनके भागमें दीप्तिमान् और त्रिवलीसे शोभित है ॥ १० ॥

योन्यादिकं च पादान्तं कामन्तत्परिचिन्तयेत् ॥ ११ ॥

अनन्तर योनि आदि पादान्त पर्यन्तकी एकाग्र चित्तसे चिन्ता करै ॥ ११ ॥

नानालङ्कारभूषाढ्यं विष्णुब्रह्मेशवन्दितम् ।
एवं कामकलारूपं आत्मदेहं विचिन्तयेत् ॥ १२ ॥

यह स्त्री अनेक प्रकारके आभूषण धारण किये हुए और ब्रह्मा विष्णु महेश्वरसे वंदित है, आत्मदेहकी इस प्रकार कामकलारूपमें चिन्ता करै ॥ १२ ॥

सदैव परमेशानि वीरयोगमिमं शृणु ।
संक्षेपात्कथयिष्यामि तयोराचारमुत्तमम् ॥ १३ ॥

हे परमेशानि ! यही वीरयोग है, । अब संक्षेपसे इन दोनोंका उत्तम आचार कहता हूं सुनो ॥ १३ ॥

मद्यं मांसं तथा मत्स्यं मुद्रा मैथुनमेव च ।
इदमाचरणं देवि पशोर्नो दिव्यवीरयोः ॥ १४ ॥

मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा और मैथुन, यह आचार पशुभावका है, दिव्य और वीर भावका नहीं है ॥ १४ ॥

स देवाचारवान्भूयादिव्यो वीरो महेश्वरि ।
यदि दैवान्महेशानि मद्यादि न च लभ्यते ॥ १५ ॥

हे महेश्वरि ! दिव्ययोगी और वीरयोगी देवाचारवान् होगा । हे महेशानि ! यदि किसी दिन दैवयोगसे मद्य न मिले ॥ १५ ॥

यस्मिन्नहनि देवेशि तथात्मानं तु भावये ।
तथापि न हि तत्त्याज्यमिदमाचमनं शिवे ॥ १६ ॥

हे देवेशि ! जो आत्माकी तदादिरूप (भाव) में भावना करै, तथापि इस आचमनका त्याग न करै ॥ १६ ॥

महामद्यं विना कौलः क्षणादूर्द्धं न तिष्ठति ।
तस्मान्मद्यादिकं देवि सेवितव्यं दिने दिने ॥ १७ ॥

महामद्य विना कौल क्षणभरभी अवस्थित नहीं होता। हे देवि ! इस कारण प्रतिदिन मद्यादिकी सेवा करै ॥ १७ ॥

अनुष्ठानविधिं वक्ष्ये शृणु त्वं पर्वतात्मजे ।
गुरुणा दीक्षितो भूत्वा कौलं न्यासं समाचरेत् ॥ १८ ॥

हे पार्वती ! अब अनुष्ठानकी विधि वर्णन करता हूं सुनो । गुरुद्वारा दीक्षित होकर कौलको न्यास करना चाहिये ॥ १८ ॥

तद्विधिश्चोत्तरे तन्त्रे एतत्स्यात्तु कुलार्णवे ।
मयोक्तं तत्क्रमणव अभिषेकद्वयं चरेत् ॥ १९ ॥
नाम लब्ध्वा गुरोश्चापि वृणुयाद्योगमुत्तमम् ।
दिव्यम्वा वीरयोगम्वा यथाकर्मानुसारतः ॥ २० ॥

वह विधि उत्तर तंत्रमें और यह विधि कुलार्णवमें मैंने कही है, उसके अनुसार दो वार अभिषेक कर गुरुका नाम ले दिव्य हो वा वीर हो कर्मानुसार उत्तम योग वरण करै ॥ १९ ॥ २० ॥

तत्क्षणात्प्रियतामेत्य मुक्तो भवति कालतः ।
यस्तु दिव्यो भवेत्सत्यं स विष्णुनात्र संशयः ॥ २१ ॥

तत्काल यह योग प्रिय होकर कालानुसार मुक्तिप्रदान करता है जो दिव्य योगी है, वह विष्णु है, इसमें सन्देह नहीं ॥ २१ ॥

यो रुद्रो भविता शेषे वीर एव न संशयः ।
यत्र देशे नरस्तिष्ठेद्दिव्यो वा वीरपुङ्गवः ॥ २२ ॥

जो वीर योगी है, वह रुद्र है, इसमें सन्देह नहीं हे देवेशि ! जिस देशमें दिव्ययोगी वा वीर योगी वास करता है ॥ २२ ॥

तत्तत्कुलम्वा देवेशि देशोवा क्षितिराट् स्वयम् ।
सिद्धिक्षेत्रं समुद्दिष्टं समन्ताद्दशयोजनम् ॥ २३ ॥

वही देश और वही कुल (गुरुका वास स्थान) सब पृथ्वीमें उत्तम और पुण्यजनक होता है । जहां दिव्य वा वीर वास करता है, वहांके चारोंओरका दश योजन स्थान सिद्धक्षेत्र होता है ॥ २३ ॥

तत्रैव सर्वतीर्थानि तत्र गङ्गा सरिद्वरा ।
योगिनां दुर्लभं चतत् डाकिनीभिः सरीसृपैः॥२४॥

उसी स्थानमें सर्वतीर्थ और उसी स्थानमें सरित् श्रेष्ठ गंगा अवस्थान करती है । यह स्थान योगिनियोंको भी दुर्लभ और डाकिनी सरीसृप (कीट पतंगादिक) ॥ २४ ॥

ब्रह्मराक्षसवेतालः कूष्माण्डैर्भैरवैः शिवे ।
गुह्यकैर्दानवैर्वापि मायिभिर्यक्षकिन्नरः ॥ २५ ॥

ब्रह्मराक्षस, वेताल, कूष्मांड, भैरव, गुह्यक, दानव, मायी, यक्ष, किन्नर ॥ २५ ॥

रोगैर्दुष्टमृगैश्चैव दुर्भिक्षैर्नैवपीडितम् ॥
अवश्यं मङ्गलं तत्र तत्पुरीपरिवर्द्धनम् ॥ २६ ॥
सुभिक्षं क्षेममारोग्यमेवं सद्धर्मकोषकः ।
स्फुरन्ति सर्वशास्त्राणि सर्वं स्यादपि नित्यशः ॥२७॥

रोग, दुष्टजन्तु, दुर्भिक्ष, सर्पकुल इन सबको ही दुर्गम है,वहाँ अवश्य ही मंगल विराजमान रहता है । जिस पुरमें दिव्य वीर योगी वास करता है, उस पुरीमें श्री, वृद्धि और समृद्धिकी वृद्धि होती है, वहां सुभिक्ष, क्षेम आरोग्य और धर्मका कोष स्थित होता है, वहांके निवासियोंको सर्वशास्त्र स्फूर्तिको प्राप्त होते हैं॥ २६ ॥ २७ ॥

ब्रह्मविष्णुशिवादीनां सुप्रियः साधकोत्तमः ।
तरवोऽपि सुजीवन्ति पशुः पक्षी सुजीवति ॥ २८ ॥

हे प्रिये ! वह साधकोत्तम ब्रह्मा विष्णु शिवादिका प्रिय होता है, हे देवि ! वहां तरुगणोंकी मृत्यु नहीं होती । पशु और पक्षी जीवित रहते हैं ॥ २८ ॥

कुलधर्मे मनो यस्य स्वधर्मश्च व्यवस्थितः ।
यत्र कुत्र मृतो देवि दिव्यो वा वीरपुङ्गवः ।
तत्रैव परमं ज्ञानं कर्णमूले ददाम्यहम् ।
कुलधर्मस्त्वयं देवि संसेव्यश्च निरन्तरम् ॥ २९ ॥

जिसका कुलधर्ममें मन है, जिसकी स्वधर्मव्यवस्था संगत है, उस दिव्य वा वीर पुरुषके जिस किसी स्थानमें मरनेपरभी उसके कर्णमूलमें मैं परम ज्ञान देता हूं हे देवि ! इस कुलधर्मकी निरन्तर सेवा करनी चाहिये ॥ २९ ॥

कुलधर्मपरा देवि सर्वे च त्रिदिवौकसः ।
मुनयो मानवा नागाः सिद्धगन्धर्वकिन्नराः ॥ ३० ॥

हे शिवे ! कुलधर्मनिरत देवगण, मुनिगण, मानवगण, नागगण, सिद्धगण, गन्धर्वगण, किन्नरगण ॥ ३० ॥

ऋषयो वसवो दैत्या येऽपि स्युः कुलपुङ्गवाः ।
कुलधर्मप्रसादेन ते सर्वे कुलनायकाः ॥ ३१ ॥

ऋषिगण, वसुगण, दैत्यगण जो कोई कुलश्रेष्ठ हैं, यह धर्म कर्मके प्रसादसे कुलनायक होते हैं ॥ ३१ ॥

इन्द्राद्याः खेचरारूढा भवेयुश्चिरजीविनः ।
ये यथा मां प्रपद्यन्ते ते तथा फलभागिनः ॥ ३२ ॥

इन्द्रादि देवता और खेचरगण इसमें चिरजीवी हुए हैं, मुझको जो जिस प्रकारसे भजता है, वह उसी प्रकारसे फलभागी होता है ॥ ३२ ॥

ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यो ब्रह्मचारी गृही तथा ।
वानप्रस्थो यतिश्चैव भवेयुस्ते कुलानुगाः ॥ ३३ ॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ, यती इत्यादि सब ही कुलानुगामी होंगे ॥ ३३ ॥

तेषां विधिं शृणुष्वाद्य मत्तस्त्वं कुलनायिके ।
गुडार्द्रकरसेनैव सुरा तु ब्राह्मणस्य च ॥ ३४ ॥

हे कुलनायिके ! उसकी विधि सुनो ? गुड और अदरखका रस मिलानेसे ब्राह्मणकी सुरा ॥ ३४ ॥

नारिकेलोदकं कांस्ये क्षत्रियस्य वरानने ।
वैश्यस्य माक्षिकं प्रोक्तं कांस्यस्थं वरवर्णिनि ॥ ३५ ॥

कांसीके पात्रमें नारियलका जल क्षत्रियकी और वैश्यकी कांस्यस्थ माक्षिक (मधु) सुरा कही गई है ॥ ३५ ॥

मांसं मत्स्यन्तु सर्वेषां लवणार्द्रकमीरितम् ।
भृष्टधान्यादिकं यद्वच्चर्वणीयं प्रचक्षते ॥ ३६ ॥
सा मुद्रा कथिता देवि सर्वेषां नगनन्दिनि ।
ब्राह्मणी ब्राह्मणस्यैव क्षत्रिया क्षत्रियस्य च ॥ ३७ ॥

मत्स्य, मांस और लवणार्द्रक सभीके पक्षमें समान है, भृष्टधान्यादि अर्थात् जो भुने हुए चर्वणीय द्रव्य हैं, वही मुद्रा कहाते हैं । ब्राह्मणी ब्राह्मणके क्षत्रिया क्षत्रियके ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

वैश्या वैश्यस्य देवेशि मैथुने यद्विधिः स्मृतः ।
वैश्या वा ब्राह्मणक्षत्रौस्त्रिवर्णानां महेश्वरि ।
क्षत्रिया ब्राह्मणस्यापि कथिता वरवर्णिनि ॥ ३८ ॥
शूद्रा वा ब्राह्मणादीनां त्रिवर्णानामभावतः ॥ ३९ ॥

वैश्या वैश्यके मैथुन विषयमें प्रशस्त है । इसके अभावमें वैश्या ब्राह्मण और क्षत्रियके, क्षत्रिया ब्राह्मणके और शूद्रा ब्राह्मणादि तीनों वर्णोंके मैथुनयोग्य होती हैं ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

ब्रह्मक्षत्रविशाञ्चैव आश्रमिणामिदं स्मृतम् ।
त्रिवर्णविहितानाञ्च यतीनां शृणु सम्प्रति ॥ ४० ॥

वर्णाश्रमी, विप्र, क्षत्र और वैश्यगणोंकी यह विधि कही गई, अब त्रिवर्णविहित यती गणोंकी विधि सुनो ॥ ४० ॥

सहस्रारोपरिबिन्दौ कुण्डल्या मेलनं शिवे ।
मैथुनं शयनं दिव्यं यतीनां परिकीर्तितम् ॥ ४१ ॥

हे शिवे ! सहस्रदल पद्मोपरि बिन्दुम जो कुल कुण्डलिनीका मिलन है, वही यतीगणोंका परम मैथुन कहा गया है ॥ ४१ ॥

अवधूताश्रमी यो हि तस्य वक्ष्ये विधिं शृणु ।
पैष्टिकादीनि सर्वाणि मद्यानि तस्य शाम्भवि ॥ ४२ ॥

हे शाम्भवि ! अवधूताश्रमीकी विधि सुनो । पैष्टिकादि सब प्रकार की मद्य उसको सेवनीय है ॥ ४२ ॥

मत्स्यं मांसं तस्य देवि जलभूचरखेचरम् ।
पूर्वोक्ता च भवेन्मुद्रा सेविता सादरान्विता ॥ ४३ ॥

जलचर, भूचर और खेचर उसका मत्स्य और मांस है । पूर्वोक्त मुद्राही उसके पक्षमें सेवनीय है ॥ ४३ ॥

मातृयोनिं परित्यज्य मैथुनं सर्वयोनिषु ।
क्षतयोनिस्ताडितव्या अक्षतां नैव ताडयेत् ॥ ४४ ॥

वह मातृयोनि त्यागकर सर्व योनिमें ही मैथुन करै, क्षतयोनि ताडन करै अक्षतयोनिका ताडित करना उचित नहीं है ॥ ४४ ॥

अक्षताताडनाद्देवि सिद्धिहानिः प्रजायते ।
द्वादशाब्दाधिका योनिर्यावत् षष्टिः प्रजायते ।
तावत्तु मैथुनं तस्या यावत्तु स्यात्स्वयम्भवा ॥ ४५ ॥

हे देवि ! अक्षत योनिके ताडन करनेसे सिद्धिकी हानि होती है द्वादशवर्षसे लेकर साठ वर्ष तक प्रसंग योग है योनि पुष्ट होनेपर जब स्वयम्भवा अर्थात् स्वयं प्रवृत्त हो, उसी समयमें मैथुन श्रेष्ठ है ॥४५॥

अवधूतसमाचाराः शूद्रे सर्वे प्रकीर्तिताः ।
विशेष मैथुने तस्य कथयामि शृणुष्व मे ॥ ४६ ॥

अवधूताचार समस्त ही शूद्रके पक्षमें कहा गया है, मैथुनमें उनकी विशेषता कहता हूं सुनो ॥ ४६ ॥

ब्राह्मणीं क्षत्रियां वैश्यां त्यक्त्वा तु सर्वजातिषु ।
मैथुनं प्रचरेद्धीमान्देवताभावचेष्टितम् ॥ ४७ ॥

बुद्धिमान् मनुष्य ब्राह्मणी, क्षत्रिया और वैश्या त्यागकर सर्व जाति में ही दिव्याचारविहित मैथुन करै ॥ ४७ ॥

गृहमेधी भवेच्छूद्रो नान्याश्रमी भवेत्कदा ।
शूद्रवदन्यजातीनामाचारोऽयं प्रकीर्तितः ॥ ४८ ॥

शूद्र ही इसमें गृहाश्रमी होगा, अन्यान्य मनुष्य आश्रमी नहीं होंगे, इसमें अन्यजातिका भी शूद्रवत् आचार कहा गया है ॥ ४८ ॥

गुरुवद्द्वे त्रिवर्णे तु तथा मातामहे कुले ।
मैथुनं सुसमुद्दिष्टमवधूताश्रमेऽपि च ॥ ४९ ॥

अवधूताश्रममें भी गुरुकी समान दो और तीन वर्णमें तथा मातामहके कुलमें मैथुन कहा गया है ॥ ४९ ॥

काली तारा छिन्नमस्ता सुन्दरी भैरवी तथा ।
मातङ्गी च तथा विद्या विद्या धूमावती तथा ॥ ५० ॥

काली, तारा, छिन्नमस्ता, सुन्दरी, भैरवी, मातंगी, विद्या, विद्या, धूमावती ॥ ५० ॥

एतासां साधकाचारश्चावधूतसमः स्मृतः ।
सर्वाश्रमे सर्ववर्णे सर्वयोगे तथा शिवे ॥ ५१ ॥

हे शिवे ! सर्वाश्रम सर्ववर्ण सर्वयोगमें इनके साधनका आचार अवधूतकी समान कथन किया गया है ॥ ५१ ॥

सर्वस्थानेषु सर्वत्र न विशेष क्वचिद्भवेत् ।
आनन्दं ब्रह्मणो रूपं तच्च देहे व्यवस्थितम् ॥ ५२ ॥

सर्वस्थानमें सर्वत्र ही समान है, इसका विशेष कहीं भी नहीं है, आनन्द ब्रह्मका स्वरूप वह देहमें व्यवस्थित है ॥ ५२ ॥

एवं विप्रो देवतायै स्वगात्ररुधिरं ददेत् ।
शक्तिनाशविकारोऽस्ति स्वदेहरुधिरार्पणे ॥ ५३ ॥

इस प्रकार ब्राह्मण देवताको अपने गात्रका रुधिर दान करै अपने देहका रुधिर अर्पण करनेसे शक्तिनाश और विकारादि होता है॥५३॥

तस्याभिव्यञ्जनं द्रव्यं दीयते कुलयोगिभिः ।
द्रव्यादिसकलं देवि व्यञ्जकस्यापरार्द्धकम् ॥ ५४ ॥

अत एव कुलयोगीगण इस रुधिरका अभिव्यञ्जक द्रव्य (प्रगट करनेवाली वस्तु) भी प्रदान कर सकते हैं हे देवि ! द्रव्यादि सब व्यञ्जक द्रव्य है, उनका अपरार्द्ध स्वरूप कहाजाता है ॥ ५४ ॥

केवलेनाद्ययोगेन साध्यः काल्याद्युपासकः ।
भैरवाय द्वितीयेन शिवत्वं च तृतीयकम् ॥ ५५ ॥

केवल आद्ययोगद्वारा ही कालीआदिमहाविद्याका उपासक होता है दूसरे योगमें भैरवकी तीसरे योगमें शिवकी ॥ ५५ ॥

चतुर्थे सर्वसिद्धीशाश्चित्रमेतन्नगात्मजे ।
परेण परतां याति मम तुल्यो न संशयः ॥ ५६ ॥

और चौथे योगमें सर्वसिद्धीश होता है । हे पर्वतनन्दनि ! यह आश्चर्यका विषय है-एकसे दूसरेके द्वारा श्रेष्ठताको प्राप्त होकर मेरी समान होता है, इसमें सन्देह नहीं ॥ ५६ ॥

सेविते कुलतत्त्वे तु कुलतत्त्वसुदर्शिनः ।
जायंते भैरवास्ते न वेशास्तत्समदर्शिनः ॥ ५७ ॥

कुलतत्त्वदर्शी गण कुलतत्त्वकी सेवा करनेसे भैरव और तत्समवेश (उन्हीकी समान वेश) और उन्हीकी समान समदर्शी होते हैं॥५७॥

तमः परिवृतं वेश्य यथा दीपेन दृश्यते ।
तथा मायावृतं चित्तं ज्ञानदीपेन दृश्यते ॥ ५८ ॥

अन्धकारसे ढकाहुआ घर जिस प्रकार दीपकके द्वारा दिखाई देता है इसी प्रकार मायावृत चित्त ज्ञानदीपकसे दिखाई देता है ॥ ५८ ॥

निरस्तभेदं वस्तु स्यान्मेध्यामेध्यादिवस्तुषु ।
जीवन्मुक्तो देहभावो देहान्ते क्षेममाप्नुयात् ॥५९ ॥

ज्ञानप्रदीप प्रज्वलित होनेपर वस्तुका प्रभेद निरस्त होता है, मेध्य और अमेध्य अर्थात् पवित्र और अपवित्र समस्त वस्तुकी भेदबुद्धि तिरोहित होती है । इस प्रकार जीवन्मुक्त देहभावको प्राप्त होकर देहके अन्तमें परम मंगलरूप मुक्तिलाभ करता है ॥ ५९ ॥

पीत्वा कुलरसं वीरो ब्रह्मध्यानमुपाश्रयेत् ।
ब्रह्मध्यानं महेशानि ब्रह्मनिर्वाणकारणम् ॥ ६० ॥

वीर योगी कुलरस पानकरके ब्रह्मध्यान आश्रय करै, हे महेशानि! ब्रह्मध्यान भी ब्रह्मनिर्वाणप्राप्तिका कारण है ॥ ६० ॥

तच्छृणुष्व महेशानि सारात्सारं परात्परम् ।
स्वकीयजीवदेहादिब्रह्माण्डाऽनन्तमेव च ॥ ६१ ॥
एवं हि सकलं देवि देहमहार्णवादि यत् ।
न चिन्तनीयं तत्सर्वं नास्तीति परिभावयेत् ॥ ६२ ॥

वह सारसे भी सार परेसे भी परका विषय सुनो । स्वकीय जीवात्मा और देहादि समस्त ब्रह्माण्ड महार्णवादि जो कुछ है, वह कुछ नहीं । इस प्रकार भावना करके उसकी चिन्ता न करै ॥ ६१ ॥ ६२ ॥

मात्सीयकं महातेजश्चैतन्यव्यापकं यथा ।
अहमेव जालरूपश्चाधारो देहवर्जितः ॥ ६३ ॥

मात्सीयकतेजः महातेजः वह चैतन्यव्यापक है, मैं जलरूप देह-हीन आधार हूं ॥ ६३ ॥

आत्मानमपि देवेशि तद्भेदेन विचिन्तयेत् ।
ब्रह्मध्यानमिदं प्रोक्तमेतात्स्थिरतराय च ॥ ६४ ॥

हे देवेशि ! आत्माकी भी उसके भेदमें चिन्ता करै यह मैंने स्थिर-तर ब्रह्मध्यान कहा ॥ ६४ ॥

सेवन्ते योगिनो द्रव्यं नान्यथा तु कदाचन ।
क्षणं ब्रह्माहमस्मीति यः कुर्यादात्मचिन्तनम् ॥ ६५ ॥

इस ब्रह्मके अतिरिक्त योगीगण अन्य किसी वस्तुकी चिन्ता न करे 'ब्रह्माहमस्मि' मैंही ब्रह्म हूं, इस प्रकार जो व्यक्ति क्षणकाल आत्मचिन्ता करता है ॥ ६५ ॥

तत्र दद्यात्फलं देवि तस्यान्ते नैव गम्यते ।
मया वा ब्रह्मणा वापि विष्णुनापि कथञ्चन ॥ ६६ ॥

हे देवी ! उसीको फल देती हैं, ऐसा न होनेपर मैं ब्रह्मा अथवा विष्णु कोई उसको नहीं जानसकता ॥ ६६ ॥

अत एव महेशानि नित्यकर्म न लोपयेत् ।
द्रव्याभावे महेशानि जलेनापि समाचरेत् ॥ ६७॥

अतएव हे महेश्वरि ! नित्यकर्मको लोप न करे हे महेशानि ! द्रव्याभावमें जलद्वारा भी नित्यकर्म करना उचित है ॥ ६७ ॥

अथवा मनसा नित्यं कुलयोगं समाचरेत् ।
वक्ष्येऽयुतविधिं भद्रे शृणुष्व कमलानने ॥ ६८ ॥

अथवा मनमनमें प्रतिदिन कुलयोगका आचरण करै । हे कमलानने ! मैं अयुतविधि कहता हूं, सुनो ॥ ६८ ॥

कुण्डल्या मिलनादिन्दोः स्रवते यत्परामृतम् ।
पिबेद्योगि महेशानि सत्य सत्यं वरानने ॥ ६९ ॥

हे वरानने ! हे भद्रे ! कुलकुण्डलिनीक मिलनेमें बिन्दुसे जो उत्कृष्ट अमृत टपकता है, वह योगीजन पान करते हैं, यह मैंने तुमसे सत्यही सत्य कहा है ॥ ६९ ॥

कुलयोगं महादेवी महापानमिदं स्मृतम् ।
पापपुण्यं पशुं हत्वा ज्ञानखड्गेन शाम्भवि ॥ ७० ॥
परमात्मनि नयेच्चित्तं पलानीति निगद्यते ॥
मनसा स्वेन्द्रियं सर्वं संयतात्मानि योजयेत् ॥ ७१ ॥
मत्स्याशी स भवेद्योगी मुक्तबन्धस्तव प्रिये ।
अशेषब्राह्मणभाण्डं परं ब्रह्माणि संनयेत् ॥ ७२ ॥

हे महादेवि ! इस महापानकोही कुलयोग जानना चाहिये । हे शाम्भवि ! ज्ञानरूपी खड्गद्वारा पापपुण्यरूपी पशु हनन करके चित्तरूप मांस परमात्मामें नियोजित करै । अपने इन्द्रियग्रामको रोककर आत्मामें योजित करनेसे वह मत्स्याशी योगी तुम्हारे बंधनसे मुक्त होता है । हे प्रिये! अशेष ब्रह्माण्डभाण्ड परमात्मामें नियोजित करै॥७०॥७१॥७२॥

परशक्त्यात्मसंयोगो न वीर्ये मैथुनं स्मृतम् ।
एवन्ते कथितं देवि सारात्सारं परात्परम् ।
गोपनीयं गोपनीयं मम सर्वस्वसाधनम् ॥ ७३ ॥

परशक्तिके सहित आत्माका संयोगही मैथुन है. हे देवि ! यह मैंने सारसे भी सार परसेभी पर अपना सर्वस्व साधन कहा. इसको गुप्त रखना चाहिये ॥ ७३ ॥

इति श्रीयोगिनीतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे देवीश्वरसम्वादे चतुर्विंशति-साहस्रे भाषाटीकायां षष्ठः पटलः ॥ ६ ॥

श्रीदेव्युवाच ।

नमस्तुभ्यं महादेव संसारार्णवतारक ।
जयाशेषजगन्नाथ भक्तवत्सल चेश्वर ॥ १ ॥
परमानन्दसन्दोह कारणानाञ्च कारण ।
दिव्यवीरप्रभेदेन श्रुतं योगद्वयं मया ।
इदानीं श्रोतुमिच्छामि विद्यां स्वप्रवतीं शुभाम् ।
मृतसञ्जीवनीं विद्यां तथा मधुमतीमपि ।
आशु फलं साधनञ्च वद मे परमेश्वर ॥ ३ ॥

श्रीदेवीजीने कहा—हे संसारसागरतारक महादेव ! तुमको नमस्कार है । परमानन्द सन्दोहकारण ! शंकर ! आप जययुक्त हों । दिव्य और वीरभेदसे दो योग सुने । अब शुभकरी स्वप्नावती विद्या, मृतसञ्जीवनी विद्या और मधुमती विद्या सुनने की अभिलाषा है; वह सब साधन और साफल्यसहित कहकर मेरा कौतूहल निवारण कीजिये ॥ १ ॥ २ [illegible]

ईश्वर उवाच ।

शृणु देवि प्रवक्ष्या[illegible] यस्मात्त्वं परिपृच्छसि [illegible] ॥

ईश्वर बोले—हे देवि ! तुमने मुझसे जो पूछा वह कहता हूं, सुनो ॥ ४ ॥

ओम् ह्रीं स्वपुरावाहिकालि स्वप्ने कथया–
मुकस्यामुकं देहि क्रीं स्वाहा ॥ ५ ॥

ओम् ह्रीं स्वपुरावाहिकालि स्वप्ने कथयामुकस्यामुकं देहि क्रीं स्वाहा ५

प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य मायाबीजं तदन्तरम् ।
तदन्ते स्वपुरावाहि कालीसम्बोधनद्वयम् ॥ ६ ॥
स्वप्ने कथय तत्पश्चादमुकस्यामुकन्ततः ।
देहि पादात्कालिबीजमन्ते वह्निवधूस्तथा ॥ ७ ॥

पहिले ओम् उच्चारण करके फिर मायाबीज तदनन्तर स्वपुरावाहि कालि यह दो सम्बोधन फिर स्वप्ने कथय अमुकस्यामुकं देहि फिर कालीबीज फिर वह्निवधू अर्थात् स्वाहामंत्रपद उच्चारण करै ॥ ६ ॥ ७ ॥

इयं स्वप्नावती विद्या त्रैलोक्ये चातिदुर्लभा ।
महाचमत्कारकरी महाकालेन भाविता ॥ ८ ॥

यही स्वप्नावती विद्या है; यह विद्या त्रैलोक्यमें दुर्लभ है । यह महाकालके द्वारा कथित और महाचमत्कारिणी है ॥ ८ ॥

अष्टोत्तरशतं नित्यं जपेद्वर्षचतुष्टयम् ।
ततः सिद्धा भवेद्विद्या स्वप्ने तिष्ठति नित्यशः ॥ ९ ॥

चारवर्षतक एकसौ आठ वार नित्य जपनेपर यह विद्या सिद्ध होती है और प्रति दिन स्वप्नमें अवस्थिति करती है ॥ ९ ॥

स्वप्ने दर्शयते सर्वं यद्यन्मनसि कल्पते ।
मृतसञ्जीवनीं विद्यामितः शृणु नगात्मजे ॥ १० ॥

जो जो मनमें कल्पना करी जाती है, वही स्वप्नमें दिखाती है; हे पर्वतनन्दिनि ! अब मृतसञ्जीवनी विद्या सुनो ॥ १० ॥

अमृतं बीजमाभाष्य मृतसञ्जीवनीति च ।
स्वमंत्राच्च ततः पश्चान्मृतमुत्थापयत्विमम् ॥ ११ ॥

अमृतबीज "वं" कहकर "मृतसञ्जीनी" यह वाक्य उच्चारण-पूर्वक स्वमन्त्र उच्चारणके पीछे "मृतमुत्थायात्विमम्" अर्थात् इस मृतकको उठाओ ॥ ११ ॥

बृहद्भानुवधूमन्ते त्रैलोक्ये चापि विश्रुता ।
संसुप्तेयं महाविद्या सारात्सारतरं स्मृतम् ॥ १२ ॥

यह मंत्र, फिर अग्निजाया "स्वाहा" मंत्र उच्चारण करै । यह महाविद्या वाक्य विख्यात है । यह सोती हुई रहती है; इस विद्याको सारसे भी सारतर जाने ॥ १२ ॥

नित्यमष्टोत्तरशतं जपमात्रेण शाम्भवि ।
सिद्धिदा सा भवेद्विद्या मृतसञ्जीवनी ततः ॥ १३ ॥

प्रतिदिन केवल अष्टोत्तर शतवार जपकरनेसे ही यह मृतसंजीविनी महाविद्या सिद्धिप्रद होती है ॥ १३ ॥

कालालयं गतो यो वा चिताधूमागतोऽपि वा ।
स्पृशेच्छवं जपेन्मन्त्रं तदा देवि वरानने ।
चिरजीवी भवेत्सत्यं नात्र कार्या विचारणा ॥ १४ ॥

जो यमालय चला गया है, अथवा जिसकी चिताका धुआं उठरहा है यह विद्या जपपूर्वक उसका शवस्पर्श करनेसे वह चिरंजीवी होता है, हे वरानने ! इसमें कार्यविचारण वा संशय कुछ नहीं है ॥ १४ ॥

वक्ष्ये मधुमतीं विद्यां सर्वरञ्जनकारिणीम् ॥ १५ ॥

अब सर्वरंजनकारिणी मधुमतीविद्याका वर्णन करता हूं ॥ १५ ॥

श्रीमधुमती इत्युक्त्वा दिशः स्थावरजंगमाः ।
सागरपुररत्नानि सर्वेषां कर्षिणीति च ॥ १६ ॥

धतूरा, गुलदुपैरी, अशोक, मदन, निर्गुण्डी, कोमल दूर्वांकुर॥ १९३॥

पत्रैश्च तुलसीनाञ्च बिल्वपत्रैः सुकोमलैः ।
करवीरस्य माल्यस्य सहस्राणि ददाति यः ।
सकामान्प्राप्य चाभीष्टान्देवीलोके महीयते ॥ १९४ ॥

तुलसीपत्र और अत्यन्त कोमल बेलपत्रसे देवीकी पूजा करनी चाहिये जो मनुष्य हजार कनेर और कुन्दपुष्प देवीको प्रदान करताहै वह संपूर्ण अभीष्ट और कामनाको प्राप्त होकर देवीके लोकमें जाताहै ॥ १९४ ॥

एकं स्यात्करवीरं तु पद्मानां द्विसहस्रवत् ।
निर्माल्यं न ऋते दद्यात्पुष्पाणि वनजानि च॥ १९५॥

एक कनेरका पुष्प दो हजार कमलके समान है, वनके पुष्प बिना उत्सर्ग किये कभी देवीको प्रदान न करै ॥ १९५ ॥

न शक्नुवन्ति वै देव्याः संगृहीतुं समुद्यताः ।
एकैकं कुसुमं यक्षा रक्षन्ति दश वै यतः ॥ १९६ ॥
तथा यक्षाङ्गनाः पञ्च सर्वतः कुसुमावृताः ।
तस्मादाहृत्य कुसुमं दद्याद्देवान्पितॄनपि ॥ १९७ ॥

क्योंकि देवियें इस पुष्पके आकर्षण करनेमें उद्यत होकर समर्थ नहीं होतीं। दश दश यक्ष और पांच पांच यक्षस्त्रियां एक एक कुसुमकी रक्षा करती हैं, इस कारण कुसुम लाकर देवता और पितरोंको प्रदान करै ॥ १९६ ॥ १९७ ॥

कुर्य्यात्पुष्पगृहं तत्र कामाख्योपरि शङ्करि ।
इह कामानवाप्नोति दुर्गालोके महीयते ॥ १९८ ॥

हे देवि ! वहां एक पुष्पगृह बनाना चाहिये । इस प्रकार पुष्प प्रदान करके इस लोकमें संपूर्ण कामनाको प्राप्त हो दुर्गालोकमें जाकर आनन्द उपभोग करता है ॥ १९८ ॥

ठं ठं स्वाहा महाविद्या वसुचन्द्राक्षरी परा ।
त्रैलोक्याकर्षिणी विद्या प्रोक्तेयं देवदुर्लभा ॥ १७ ॥

श्रीमधुमति दिशः स्थावर जङ्गमाः सागर पुररत्नानि सर्वेषां कर्षिणी ठं ठं स्वाहा ॥ इस अष्टादशाक्षरी महाविद्याको उत्कृष्टतर जानना चाहिये । यह तीनों लोकका आकर्षण करनेवाली देवदुर्लभ महाविद्या मैंने तुमसे कही ॥ १६ ॥ १७ ॥

एकवर्षं जपेन्नित्यं शतमष्टोत्तरं नरः ।
ततः सिद्धा महाविद्या सर्वज्ञानप्रकाशिनी ॥ १८ ॥

जो मनुष्य इसको एकवर्षतकएकसौ आठवार नित्य जप करता है, उसको यह विद्या सिद्ध होती है । यह महाविद्या सर्वज्ञानप्रकाशिनी है ॥ १८ ॥

आकर्षयेत्सुमेरुञ्च दिशः सागरमेव च ।
नदीं रत्नानि च पुरीं स्त्रियः शैलान्वनस्पतीन् ॥
अलभ्यानि च द्रव्याणि पातालादिस्थितान्यपि ॥ १९ ॥
पुरस्थानं च वृत्तान्तं राज्ञां च विद्विषामपि ।
नक्तं तल्पे शतं जप्यात्सिद्धिं प्राप्नोति साधकः ॥ २० ॥

यह सुमेरु, दिशा, सागर, नदी, रत्न, पुरी, स्त्री, शैल, वनस्पति और पातालस्थित सब अलभ्यद्रव्योंका आकर्षण करती है । इसके द्वारा राजाका पुर स्थान और वृत्तान्त सभी जाना जासकता है । साधक मनुष्य रात्रिकालमें शय्यापर सौवार जप करनेसे सिद्धिको प्राप्त होता है ॥ १९ ॥ २० ॥

श्रीदेव्युवाच ।

देवदेव जगन्नाथ प्रसीद जगन्नाथ प्रभो ।
यत्पृष्टं यच्छ्रुतं नाथ श्रोतुमिच्छामि सम्प्रति ।
पद्मावतीं महाविद्यां सर्वविद्याविनोदिनीम् ॥ २१ ॥

करवीरसजातीयं पूजयेद्यस्तु शाङ्करि ।
अग्निष्टोमफलं लब्ध्वा सूर्यलोके महीयते ॥ १९९ ॥

हे शांकरि ! जो मनुष्य कनेर और तज्जातीय पुष्पद्वारा पूजा करता है वह अग्निष्टोमके फलको प्राप्त होकर सूर्यलोकमें जाताहै ॥ १९९ ॥

पूजयित्वा नरो भक्त्या चण्डिकां पद्ममालया ।
ज्योतिष्टोमफलं प्राप्य सूर्यलोके महीयते ॥ २०० ॥

मनुष्यगण भक्तिपूर्वक पद्ममालासे चण्डिकाकी पूजा करके ज्योतिष्टोमके फलको प्राप्त होते हैं और सूर्यलोकमें जाकर पूजाको प्राप्त होते हैं ॥ २०० ॥

बकपुष्पसजातीयं तथा रुद्रजटस्य च ।
वाजपेयस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति नान्यथा ॥ २०१ ॥

बकपुष्प और तज्जातीय पुष्प तथा रुद्रजटासे पूजा करनेपर वाजपेय यज्ञका फल मिलता है, इसमें संदेह नहीं ॥ २०१ ॥

सर्वेषामेव पुष्पाणां प्रवरं नीलमुत्पलम् ।
नीलोत्पलसहस्रेण यस्तु मालां प्रयच्छति ।
दुर्गायां विधिवद्देवि तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ २०२ ॥

नील कमल सब पुष्पोंमें श्रेष्ठ है, जो मनुष्य सहस्र नील कमलोंकी माला दुर्गादेवीको विधिपूर्वक प्रदान करताहै उसका पुण्यफल सुनो ॥ २०२ ॥

वर्षकोटिसहस्राणि वर्षकोटिशतानि च ।
देव्यास्त्वनुचरो भूत्वा रुद्रलोके महीयते ॥ २०३ ॥

वह सौ करोड और हजार करोड वर्ष देवीका अनुचर होकर रुद्रलोकमें पूजित होताहै ॥ २०३ ॥

वक्रधान्योद्भवं यच्च सूक्ष्मधान्योद्भवंतथा ।
राजधान्योद्भवञ्चैव रक्तधान्योद्भवं तथा ॥ २०४ ॥

श्रीदेवीजीने कहा–हे देवदेव जगन्नाथ! आप प्रसन्न हूजिये। हे सुमुख! हे प्रभो! हे नाथ! मैंने जो पूछा था, वह तो सुना। अब सर्वविद्याविनोदिनी पद्मावती महाविद्याके सुननेकी इच्छा करती हूं॥२१॥

ईश्वर उवाच।

कथयामि वरारोहे विद्यां पद्मावतीं शुभाम्॥
प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य मायाबीजं तदन्तरम्।
पद्मावतीपदं देविसंबुद्ध्यन्तं समुद्धरेत्॥ २२॥

ईश्वर बोले–हे वरारोहे! शुभदायिनी पद्मावती विद्या कहताहूं। पहिले ओंकार उच्चारणपूर्वक फिर मायाबीज कहकर सम्बोधनान्त पद्मावती देवीका पद उच्चारण करै॥ २२॥

त्रैलोक्यवार्त्तामन्ते च कथयद्वन्द्वमुच्चरेत्।
स्वाहान्तेयं महाविद्या कथिता कल्पवल्लरी॥ २३॥

फिर त्रैलोक्यवार्त्ता उच्चारण करके 'कथय कथय' यह दो पद उच्चारणपूर्वक अन्तमें स्वाहापदका समुद्धार करै। यह मैंने तुमसे कल्पलतातुल्य महाविद्याका वर्णन किया॥ २३॥

अष्टोत्तरशतं नित्यं जपेद्वर्षद्वयं प्रिये॥
ततः सिद्धा महाविद्या सर्वं वदति साधके॥ २४॥

हे प्रिये! यह मंत्र प्रतिदिन एकसौ आठवार क्रमशः दो वर्ष जपनेपर सिद्ध होकर साधकसे सब विषय कहता है॥ २४॥

तल्पे स्थिता भक्तयोगी जपेन्मन्त्रं शताष्टकम्॥
जगद्धितस्य वृत्तान्तं तज्जानाति दिने दिने॥ २५॥

जो भक्त योगी शय्यापर स्थित होकर रात्रिमें एकसौ आठवार जपता है, वह दिन दिन जगत्का सब हितकर वृत्तान्त जान सकता है॥२५॥

शस्तं तण्डुलमक्षुण्णं सप्ताष्टनवसंख्यया ।
दूर्वाङ्कुरसमेतञ्च भगवत्यै निवेदयेत् ।
अष्टम्यां वा नवम्यां वा सोऽश्वमेधफलं लभेत्॥२०५॥

वक्रधान्योत्पन्न, सूक्ष्मधान्योत्पन्न, रा ान्योत्पन्न और रक्तधान्योत्पन्न (साबत चावल) प्रशस्त है, उनके सप्त अष्ट नवसंख्यक तण्डुल दूर्वाङ्कुरके सहित अष्टमी वा नवमीमें प्र ान करनेसे अश्वमेधका फल प्राप्त होता है ॥ २०४ ॥ २०५ ॥

गन्धानुलेपनं दत्त्वा ज्योतिष्टोमफलं लभेत् ॥ २०६॥

देवीको गन्धानुलेपन प्रदान करनेसे ज्योतिष्टोम यज्ञका फल मिलता है ॥ २०६ ॥

कुंकुमेन विलिप्यार्घ्यं गोसहस्रफलं लभेत् ।
चन्दनागुरुकर्पूरैः शुक्लपुष्पैः सकुंकुमैः ।
विलिप्तां पूजयेद्दुर्गामग्निष्टोमफलं लभेत् ॥ २०७ ॥

और कुंकुमविलेपित अर्घ्यदान करनेसे सहस्र गोदानका फल प्राप्त होता है । चन्दन, अगर, कपूर, और कुंकुम विलिप्त शुक्ल पुष्पद्वारा दुर्गादेवीकी पूजा करनेसे अग्निष्टोमका फल प्राप्त होताहै ॥ २०७ ॥

निम्बपत्रञ्च कुन्दञ्च तमालामलकीदलम् ।
कह्लारं तुलसीञ्चैव पद्मञ्चाहानिपुष्पकम् ॥ २०८ ॥

निम्बपत्र, कुन्द, तमालदल, आमलकीदल, कह्लार, तुलसी, पद्म और अहानिपुष्प, यह सब पुष्प ॥ २०८ ॥

एतत्पर्युषितं न स्याद्यच्चान्यत्कालिकात्मकम् ।
न दुष्येच्छिन्नभिन्नञ्च जातीपुष्पञ्च शाङ्करि ॥ २०९॥

और अन्यान्य कालकात्मक पुष्प पर्युषित (बासी) नहीं होते । हे शाङ्करि ! छिन्न भिन्न जाती पुष्प ॥ २०९ ॥

ब्रह्मविष्ण्वादिकानां च त्रैलोक्यस्यापि शङ्करि ॥
वृत्तान्तं कथयेत्स्वप्ने विद्या पद्मावती शुभा ॥ २६ ॥

एवं ब्रह्मा विष्णु इत्यादि और त्रैलोक्यका वृत्तान्त भी विदित होता है । शुभदायिनी पद्मावती विद्या उससे स्वप्नमें यह सब वृत्तान्त कहती हैं ॥ २६ ॥

श्रीदेव्युवाच ।

श्रुतश्च साधनं पुण्यं महाकालेन भाषितम् ॥
इदानीं श्रोतुमिच्छामि वशीकरणमुत्तमम् ॥
अल्पसाध्यं महादेव द्रुतसिद्धिकरं महत् ॥ २७ ॥

श्रीदेवीने कहा—महाकालका कहा पवित्र साधन सुना, अब उत्तम वशीकरण सुननेकी अभिलाषा करती हूं, हे महादेव ! जो अल्पसाध्य और शीघ्र सिद्धिकर है, वही कहकर मेरा कौतूहल चरितार्थ कीजिये ॥ २७ ॥

ईश्वर उवाच ।

तवानुरोधाद्देवेशि कथयामि शृणुष्व तत् ।
पुरा ते कथितं देवि योगिनां ज्ञानसम्भवे ।
संक्षेपादधुना देवि विस्तरात्कथयामि ते ।
गोपितव्यं प्रयत्नेन सर्वदा पशुसङ्कुले ॥ २८ ॥२९ ॥

ईश्वर बोले—हे देवेशि ! तुम्हारे अनुरोधसे मैं उसको वर्णन करता हूं सुनो हे योगिज्ञानप्रदे ! पहिले मैंने तुम्हारे प्रति यह वशीकरण संक्षेपसे कहा है, इस समय वह तुमसे विस्तारसहित कहताहूं । इसको पशुसंकुल स्थानमें यत्नपूर्वक सदा गुप्त रक्खै ॥ २८ ॥ २९ ॥

कुजवारे नक्तयोगे अमायां च तिथौ नरः ॥
शत्रुनाम लिखित्वा तु वामपादतले न्यसेत् ॥ ३० ॥

पद्मं दूर्वाङ्कुरश्चैव तुलसीदलमेव च ।
आशु पर्य्युषितं न स्यात्कुसुमं चैव शाङ्करि ॥२१०॥

पद्म दूर्वांकुर और तुलसीदल दूषित नहीं होते । हे शाङ्करि! कुसुम शीघ्रही बासी नहीं होते ॥ २१० ॥

नार्चयेज्झिंटिपुष्पेण पीतेन तगरेण च ।
श्वेतौड्रेण च कृष्णेन विजयेन न चार्चयेत् ॥ २११ ॥

झिण्टी पुष्प, पीततगर, श्वेत ओड्र और कृष्ण वर्णके विजय पुष्पसे पूजा करे ॥ २११ ॥

त्रिलक्षं प्रजपेन्मन्त्रं पुरश्चरणसिद्धये।
न्यासश्च तर्पणश्चैव होमं पंक्तयष्टकं चरेत् ।
जितेन्द्रियो महेशानि सोऽग्निष्टोमफलं लभेत्॥२१२॥

पुरश्चरणसिद्धिके निमित्त तीन लक्ष मंत्रजप, न्यास, तर्पण, होम और पंक्तयष्ट (एक सौ आठ) का अनुष्ठान करनेसे वह जितेन्द्रिय मनुष्य अग्निष्टोमके फलको प्राप्त होताहै ॥ २१२ ॥

शुक्लपक्षे नवम्यां चाप्यष्टम्यां परमेश्वरीम् ।
त्रिकालं पूजयेद्यस्तु चतुर्दश्यां मम प्रिये ॥ २१३ ॥

हे प्यारी ! जो मनुष्य शुक्लपक्षकी अष्टमी नवमी और चतुर्दशीको तीनों कालमें परमेश्वरीकी पूजा करताहै ॥ २१३ ॥

स गच्छति परं स्थानं यत्र देवी व्यवस्थिता ।
संक्रीडच तत्र सुचिरं राजा भवति भूतले ॥ २१४ ॥

वह मनुष्य देवीके अधिष्ठित परमस्थानमें जाताहै, और वह चिरकालक्रीडा करके फिर पृथ्वीमें राजा होकर जन्म लेता है ॥ २१४ ॥

स्नानत्रोपवासनियमः पूजाजागरमार्ज्जनैः ।

मङ्गलवार अमावस्या तिथिकी रात्रिमें मनुष्य शत्रुका नाम लिख-कर वामपादतलमें रक्खै ॥ ३० ॥

तत्पादोपरि देवेशि वाग्भवं प्रजपेत्सुधीः ॥
अष्टोत्तरशतं देवि तदा वादी वशो भवेत् ॥
अतिमूको भवेच्छत्रुर्विवादे व्यवहारके ॥
तार्क्ष्यं दृष्ट्वा यथा सर्पो जडो भवति कामिनि ॥
तथैव तत्समालोक्य जडो वादी न संशयः ॥ ३१ ॥

हे देवेशि ! बुद्धिमान् मनुष्य उस पदके ऊपरी भागमें वाग्भवबीज एकसौ आठवार जप करनेसे उस प्रतिद्वन्द्वी मनुष्यको वशीभूत करता है । विवाद (झगडे) और व्यवहार विषयमें शत्रु अतिशय मूक होता है । हे देवि ! गरुडके देखनेसे सर्प जिस प्रकार जड होते हैं, वादी उसको देखकर उसी प्रकार जड होता है, इसमें सन्देह नहीं ॥ ३१॥

तथान्यत्संप्रवक्ष्यामि वशीकरणमुत्तमम् ॥
येन योगप्रभावेन भुवनं वशमानयेत् ॥ ३२ ॥

अब अतिउत्तम अन्य वशीकरण कहता हूं । इस वश्य योगके प्रभा-वसे त्रिभुवनको वशीभूत करनेमें समर्थ होता है ॥ ३२ ॥

प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य सुन्दरी भैरवी तथा ।
योगिनीपदतो देवि राजा प्रजा महारथी ॥ ३३ ॥

प्रथम ॐकार उच्चारण, फिर सुन्दरी भैरवी तदनन्तर योगिनी, इस पदके अन्तमें राजा, प्रजा, महारथी ॥ ३३ ॥

वशङ्करी तथा प्रोच्य अं इं उं ॠं तथा वदेत् ।
षड्विंशत्यक्षरो मन्त्रः कथितः कल्पपादपः ॥ ३४ ॥

फिर वशंकरी, यह पद कहकर अं इं उं ॠं यह सब पद उच्चारण करै, यह मंत्र छब्बीस अक्षरका है, यह कल्पवृक्षकी समान फलदायक है ॥ ३४ ॥

अनेन मनुना देवि तैलञ्च चन्दनञ्च वा ।
शताष्टजप्तं तत्तैलं मुखे दद्याद्वरानने ॥ ३५ ॥

हे वरानने ! यह मंत्र तैल और चन्दनसे एकसौ आठ वार जपकर वह तैल मुखमें लगावे ॥ ३५ ॥

तच्चन्दनेन तिलकं भाले दद्यान्नगात्मजे ॥
जगद्वश्यक्रियामेतां कृत्वा साधकसत्तमः ॥ ३६ ॥
चेतु पश्यति यं देवि स वशो नात्र संशयः ॥
एवमेव विधानेन देवेन्द्रमपि मोहयेत् ।
किं पुनर्मानवान्देवि ! सार्वभौमान्नराधिपान् ॥ ३७ ॥

और वही चन्दन कपालमें तिलक करनेपर जगद्वशीकरणका कारण होताहै । इसप्रकार करके जिसको देखेगा, वही वशमें होगा,इसमें सन्देह नहीं । हे देवि ! साधारण मनुष्य और सार्वभौम राजाकी तो बात ही क्या कहूं, इसके द्वारा देवेन्द्रकोभी मोहित किया जासकता है॥ ३६॥ ३७॥

अथोच्यते महादेवि वशीकरणमुत्तमम् ।
सर्वेषां जगतां देवि मोहनं परमाद्भुतम् ॥ ३८ ॥

हे महादेवि ! अब अन्य उत्तम वशीकरण कहता हूं, इसके द्वारा संपूर्ण जगत्को परम अद्भुत रूपसे मोह होता है ॥ ३८ ॥

मन्त्रमादौ प्रवक्ष्यामि सर्वतन्त्रेषु गोपितम् ॥ ३९ ॥

सब तंत्रोंमें जो मंत्र गुप्त है, उसको प्रथम ही कहता हूं ॥ ३९ ॥

प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य वदेद्राजमुखीपदम् ।
पुना राजमुखी प्रोच्य मायाबीजद्वयं वदेत् ॥
कामबीजं ततः पश्चाद्देवि देवीपदद्वयम् ।
महादेविपदं पश्चाद्देवि देवाधिदेवि च ॥

सम्बोधनान्तं देवेशिपदमेतच्चतुष्टयम् ।
सर्वजनस्याभिमुखं मम वशं कुरु कुर्विति ॥
स्वाहान्तोयं महामन्त्रः सर्ववश्यप्रदो महान् ॥४०-४२

प्रथम ॐकार उच्चारण करके फिर 'राजमुखी' यह पद योजन करै। इसके पीछे राजमुखी यह पद कहकर दो मायाबिज (ह्रीं) मिलावे फिर कामबीज, फिर देवी यह दो पद कहकर इसके अन्तमें महादेवीपद, फिर देवाधिदेवी संबोधनान्त यह चारोंपद उच्चारण करै। सर्व जनाभिमुख मम वशं कुरु कुरु। इसके पीछे स्वाहा पद उच्चारण करै, यह सबको वशमें करनेवाला महामन्त्र है ॥ ४०-४२ ॥

इति मन्त्रेण शय्यास्थः प्रातः काले महेश्वरि ।
त्रिवारं दक्षहस्तेन मुखं समार्जयेत्कृती ॥ ४३ ॥
एवन्तु प्रत्यहं कुर्याज्जगद्वश्याय कामिनि ।
अवश्यं जायते वश्यं जगदेतच्चराचरम् ॥ ४४ ॥

हे महेश्वरि! साधक मनुष्य शय्यापर स्थित होकर प्रातःकालमें तीनवार दहिने हाथसे मुख मार्जन करै हे शिवे! जगत् वशीकरणके निमित्त नित्य इस प्रकारसे जो करता है इसके चराचर जगत् अवश्य उसको वशीभूत होगा. इसमें संदेह नहीं ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

श्रीदेव्युवाच ।

श्रुतमेतन्महादेव त्वत्प्रसादात्पुरातनम् ।
स्वप्नावती च या विद्या कथितावगता मया ॥ ४५ ॥
इदानीं श्रोतुमिच्छामि विशेषं यत्र यद्भवेत् ।
तद्वदस्व महादेव यदि तेऽनुग्रहो मयि ॥ ४६ ॥

श्रीदेवीजीने कहाः—हे महादेव! मैंने आपके प्रसादसे यह पुरातन कथा सुनी। आपने मुझसे जो स्वप्नावती विद्या कही, उसको जाना

किन्तु अब उसकी विशेष विधि सुनना चाहती हूं. यदि मुझपर आपका अनुग्रह हो, तो वर्णन कीजिये ॥ ४५ ॥ ४६ ॥

ईश्वर उवाच ।

कथयामि शृणु प्राज्ञि विद्यां स्वप्नावतीं पराम् ।
प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य वधूबीजं समुद्धरेत् ॥ ४७ ॥
स्वप्नावतीपदान्ते च स्वप्ने कथय चोद्धरेत् ।
मायाबीजं ततः स्वाहा मन्त्रमेतन्नगात्मजे ।
दिवा भुक्त्वा हविष्यान्नं रात्रौ जप्त्वा सहस्रकम् ॥४८

ईश्वर बोले–हे प्राज्ञि ! अति उत्तम स्वप्नावती विद्या कहता हूं. सुनो । प्रथम ओंकार उच्चारण फिर वधूबीज. फिर स्वप्नावती पदके अन्तमें स्वप्ने कथय यह पद उच्चारण करै तदनन्तर मायाबीज, फिर स्वाहा प्रयोग करै ! हे पर्वतनन्दिनि ! यही मन्त्र है, दिनमें हविष्यान्नभोजनपूर्वक रात्रिकालमें यह मंत्र हजारवार जपै ॥ ४७ ॥ ४८ ॥

ततः शुद्धायां शय्यायां तदा स्वप्ने हि पश्यति ॥
मनसा चिन्तितं यद्यत्तत्सर्वं परमेश्वरि ॥ ४९ ॥
अथापरं प्रवक्ष्यामि स्वप्नप्रबोधमुत्तमम् ॥
येन विज्ञानमात्रेण सर्वं जानाति निश्चितम् ॥ ५० ॥

तो शुद्ध शय्यापर स्वप्नमें वही देखता है. जो जो मनमें चिन्ता करता है वह सभी स्वप्नमें देखता है ॥ ४९ ॥ हे परमेश्वरि ! अब अन्य उत्तम स्वप्नप्रबोध कहता हूं, जिसके ज्ञानमात्रसे ही मनुष्य सब विषय जानसकता है, इसमें सन्देह नहीं ॥ ५० ॥

प्रणवं प्राक् समुच्चार्य ह्लिं ह्लूं शूलपाणये ॥
स्वाहान्तोऽयं महामन्त्रः प्रोक्तन्ते कमलेक्षणे ॥ ५१ ॥
विधानं पूर्ववत्सर्वं जपान्ते प्रार्थनां शृणु ॥ ५२ ॥

हे कमलेक्षणे ! प्रथम ओंकार उच्चारण करके फिर ' हिलिहूँ शूलपाणय ' इसके पीछे ' स्वाहा ' उच्चारण करे । हे देवि ! यह मैंने तुमसे महामंत्र कहा, इसका विधान पूर्वकी समान जानना, अब जपके अन्तमें प्रार्थना सुनो ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

ॐ नमो जगात्रिनेत्राय पिङ्गलाय महात्मने ॥
वामदेवस्वरूपाय स्वप्नाधिपतये ततः ॥
स्वप्ने कथय मे तत्त्वं सर्वं कार्यं शुभाशुभम् ॥ ५३ ॥

जगत्के आधिपति तीन नेत्रवाले पिंगलनेत्र महात्मा वामदेवस्वरूप स्वप्नके आधिपति आपके निमित्त प्रणाम है सब शुभ अशुभ स्वप्नमें मेरे निमित्त कथन कीजिये ॥ ५३ ॥

इति मन्त्रेण संप्रार्थ्य सर्वं जानाति तत्त्वतः ॥
एतत्ते कथितं देवि स्वप्नबोधमनुत्तमम् ॥ ५४ ॥
रहस्यं परमं रम्यं वशीकरणमुत्तमम् ॥
सर्वमेतन्महादेवि सर्वज्ञानप्रदायकम् ॥ ५५ ॥

इस मंत्रके द्वारा प्रार्थना करनेसे सभी जानसकता है । हे देवि ! यह मैंने तुमसे अतिउत्तम स्वप्नबोध और परम रहस्य मनोहर वशीकरण कहा हे महादेवि ! यह सब ज्ञानप्रदान करता है ॥ ५४ ॥ ५५ ॥

निरन्तरं महादेवि सेवितः सिद्धिशङ्करैः ।
मधुमत्याः प्रसादेन सर्वोक्तं सर्वयोनिषु ॥ ५६ ॥

सिद्धिशंकर गण इसकी सदाही सेवा करती हैं मधुमतीके प्रसादसे सर्व योनिका विषय सर्वथा कहा गया है ॥ ५६ ॥

यावन्तं परमेशानि तस्मात्त्वां समुपाश्रयेत् ।
स्वप्नावत्यादिविद्याया यो जपः कथितः प्रिये ॥ ५७ ॥

हे परमेशानि ! तुम्हारे पूछनेसे यह सब कहा है प्रिये ! स्वभावत्यादि विद्याके जपका जो प्रकार कहा गया है ॥ ५७ ॥

वर्षसंख्याक्रमेणैव सिद्धिकामस्य शाम्भवि ।
त्वं जपन्तु विना देवि फलसिद्धिः समीरिता ॥
सिद्धविद्याप्रभावेन तां सुसिद्धाः सुरासुरैः ॥ ५८ ॥

वह वर्षसंख्याके क्रमसे सिद्ध होता है । उस प्रकार जपके विना फलसिद्धीकी सम्भावना नहीं है । सुरासुर गण सिद्ध विद्याके प्रभावसेही सब विद्या सिद्ध कर सकते हैं ॥ ५८ ॥

इति ते कथितं सम्यग्रहस्यं परमाद्भुतम् ।
गोपनीयं खले दुष्टे पशुपामरसन्निधौ ॥ ५९ ॥

यह मैंने तुमसे परम अद्भुत संपूर्ण रहस्य कहा यह खल दुष्ट पशु और पामर मनुष्यके निकट सदा गुप्त रखनेयोग्य है ॥ ५९ ॥

अन्यथा कुरुते यस्तु स भक्ष्यो डाकिनीगणैः ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन गोपनीयं विशेषतः ॥ ६० ॥

जो इसके अन्यथा करता है. उसको डाकिनी भक्षण करती हैं. इस कारण यत्नपूर्वक इसको गुप्त रक्खै ॥ ६० ॥

दद्याच्छान्ताय दान्ताय सत्कुलीनाय योगिने ।
भक्ताय पापहीनाय साधकाय महात्मने ॥ ६१ ॥

शान्त, चतुर, कुलीन, योगी, भक्त, पापहीन, महात्मा, साधकको यह प्रदान करना चाहिये ॥ ६१ ॥

इति श्रीयोगिनीतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे देवीश्वरसम्वादे चतुर्विंशतिसाहस्रे भाषाटीकायां सप्तमः पटलः ॥ ७ ॥

श्रीदेव्युवाच ।

श्रुतं हि साधनं सर्वं त्वन्मुखाम्भोजनिर्गतम् ।
देवदानवगन्धर्वसिद्धचारणसेवितम् ॥ १ ॥
परमानन्दसन्दोहं सान्द्रानन्दविभूतिदम् ।
परं पारं परं पुण्यं पवित्रं परमं महत् ॥ २ ॥
योगिन्युत्पत्तिकथनं त्रैलोक्यस्यापि दुर्लभम् ।
कथयस्व महादेव केवलानन्दबृंहितम् ॥ ३ ॥

श्रीदेवीजीने कहा—हे देव ! मैंने आपके मुखकमलसे निकला देव, दानव, गंधर्व, सिद्ध, चारणगणसेवित परमानन्दके पात्र अनेक आनंद और विभूतिके देनेवाले आप परम पार स्वरूप हो । और परम पुण्य-स्वरूप पवित्र और परम महत् सर्वसाधन सुना, अब उपरोक्त गुण समूहयुक्त और त्रैलोक्यको भी दुर्लभ केवलानन्दवर्द्धन योगिनीगणोंकी उत्पत्ति वर्णन कीजिये ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥

ईश्वर उवाच ।

पूर्वं यदावयोर्वृत्तं सर्वं तद्विस्मृतं शिवे ।
अत्यन्तगुह्यं परमं देवासुरभयङ्करम् ॥ ४ ॥
प्राचीनमपि गोप्यं हि सारात्सारं परात्परम् ।
शृणु वक्ष्यामि चार्वाङ्गि समासेन शिवप्रिये ॥ ५ ॥
गोपनीयं त्विदं भद्रे योनिं परनरे यथा ॥ ६ ॥

ईश्वर बोले—हे शिवे ! पहले हम दोनोंके पक्षमें जो वृत्तान्त हुआ था वह क्या भूल गई हो ? जो हो, मैं अत्यन्त गुह्य, देवासुरोंको भयंकर अतिप्राचीन अतिगोपनीय सारसे भी सार, परेसे भी परे परम विषयका वर्णन करता हूं, हे चार्वङ्गि ! तुम वह सब सुनो । हे शिवप्रिये ! हे

कल्याणि ! पराये पुरुषसे जिस प्रकार योनि गुप्त रखनी चाहिये, इस को भी उसी प्रकार गुप्त रखने योग्य जानो ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥

ब्रह्माण्डस्यायुषः शेषे सर्वसत्वविवर्जितम् ।
भूम्यादिपञ्चतत्त्वं तु केवले संस्थितं शिवे ॥ ७ ॥

ब्रह्माण्डकी आयुके शेषमें संसार सर्वसत्त्वरहित होनेपर और भूमि आदि पञ्च तत्त्व मात्र केवल आत्मामें अवस्थित होनेपर ॥ ७ ॥

त्वां मां विना महेशानि नासीत्किञ्चिज्जगत्रये ।
एतस्मिन्नन्तरे त्वां वै पप्रच्छाहं प्रहासतः ॥ ८ ॥

हे महेशानि ! तुम्हारे और मेरे अतिरिक्त इन तीनों जगत्में और कुछ नहीं था, इस अवसरमें मैंने हँसकर तुमसे पूंछा ॥ ८ ॥

ममाधिका योग्यता वा तवापि वा महेश्वरि ।
इदानीं परमेशानि ! ततो ब्रह्माण्डमण्डलम् ॥ ९ ॥
स्थातुं स्थानं न कुत्रास्ति कुत्र स्थास्यामि भाविनि ।
यद्यन्मया कृतं सर्वं तत्सर्वं गतमेव हि ॥ १० ॥
विवक्तोऽहं सदा देवि भवसंसारकर्मणि ।
स्थातुं स्थानमिदानीं त्वं कल्पयश्व महेश्वरि ॥ ११ ॥

हे महेश्वरि ! बोध होता है-मेरी अपेक्षा तुम्हारी योग्यता अधिक है, यह देखो इस समय ब्रह्माण्डमण्डल शून्याकार है, कहीं भी रहनेका स्थान नहीं है हे भाविनि ! अब कहां रहेंगे ? मैंने जो जो किया था, वह सभी विगत हुआ है, तुम जानती हो कि, मैं संसारकर्ममें संस्पर्श शून्य रहनेकी सदा ही इच्छा करता हूं, हे महेश्वरि ! अब तुम रहनेके लिये स्थानकी कल्पना करो ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥

इति श्रुत्वा तदा देवि ! क्रोधेनारुणलोचना ।
उवाच मां निष्ठुरं च दुराचारादिदारुणा ॥ १२ ॥

हे देवि ! तुम जिसको सुनकर क्रोधसे लालनेत्रकर और दुराचारके कारण कठोर होकर मुझसे अतिनिष्ठुर वचन कहने लगीं ॥ १२ ॥

यद्यत्कृतं त्वया देव मामुपाश्रित्य सर्वदा ।
मां विना ते महादेव शवत्वमिति निश्चितम् ॥ १३ ॥

हे देव महादेव ! तुम जो करते हो, उसीमें सदा मेरे ऊपर निर्भर करते हो । मेरे विना तुम शव (मृतक) होते हो, इसमें सन्देह नहीं ॥ १३ ॥

योगे हि ते महेशान मया सर्वमिदं ततम् ।
कल्पितं वत्सरूपेण योग्यता का तवास्ति हि ॥१४॥

तुम्हारे योगमात्रसे मैंने यह संसार विस्तारित करके तुम्हारी वत्सरूपमें कल्पना करी है । तुम्हारी योग्यता क्या है ? ॥ १४ ॥

कारणावस्थयापन्ना सदाहं धात्रिरूपिणी ।
नाकार्यं मे हि यत्किञ्चित्सदाहं ह्यक्षरा परा ॥ १५ ॥

मैं सदाही कारणावस्थापन्ना (कार्यको उत्पन्न करनेवाली) विधातृरूपिणी हूं, मेरा कुछभी अकार्य नहीं है ॥ १५ ॥

कार्यभावमपापन्ना सदा प्रकृतिरूपिणी ।
तदा ब्रह्मादयः सर्वे सर्वेऽप्याविर्भवन्ति हि ॥ १६ ॥

मैं सदाहीकार्यभावसम्पन्न प्रकृति रूपिणी हूं, उस कालमें ब्रह्मादि सब ही आविर्भूत हुए ॥ १६ ॥

मम मायामयमिदं विश्वं देव चराचरम् ।
विक्षेपावरणे मासारंभो हे परमेश्वर ॥ १७ ॥

यह चराचर विश्व मेरीहीं मायासे निर्मित है ! हे परमेश्वर ! मेरी विपेक्षा और आदरण नामक दो शक्तियोंसे ही जगत्के सब कार्य साधित होते हैं ॥ १७ ॥

इति श्रुत्वा वचस्तेऽहं वज्रतुल्यं सुदारुणम् ।
नावोचं किञ्चित्त्वां देवि स्थिरत्वमभवत्तदा ॥ १८ ॥

तुम्हारे इस प्रकार वज्रतुल्य दारुण वचन सुन, उस समय मैं तुमसे कुछ न कहकर चुप रहा ॥ १८ ॥

परीतोऽहं सदा देवि दुःखेनान्तरजेन च ।
ततः स्थिरीकृत्य हृदि उपायं तव निग्रहे ॥ १९ ॥

हे देवि ! मैंने सदा आन्तरीक दुःखसे तापित होकर तुम्हारे निग्रहके निमित्त मनमें एक उपाय स्थिर किया ॥ १९ ॥

जगाम पश्चिमे भागे ब्रह्माण्डस्य वरानने ।
गत्वा तत्र महादेवि निर्जने दारुणं पुरा ।
स्वदेहभस्मना दैत्यं प्रागदृष्टं श्रुतं मुदम्
दानवेन्द्रं महाघोरं घोरनामानमद्भुतम् ॥ २० ॥

अनन्तर मैंने ब्रह्माण्डके पश्चिम भागमें जाकर निर्जनमें अपने देहकी भस्मद्वारा एक दारुण महाघोर घोरनामक अपूर्व अद्भुत दानवेन्द्रको उत्पन्न किया ॥ २० ॥ २१ ॥

कोटियोजनविस्तीर्णं द्वात्रिंशल्लक्षप्रस्थितम् ।
कोटिहस्तं महारौद्रं कोटिलोचनमुज्ज्वलम् ॥ २२ ॥

यह दैत्य लम्बाईमें करोड योजन, और चौडाईमें बत्तीस लाख योजन होगा । महाभयंकर करोड हाथ करोड उज्वल नेत्र ॥ २२ ॥

पञ्चाशल्लक्षवदनं ज्वालावलिसमाकुलम् ।
तस्मै दत्त्वा महासिद्धीरणिमाद्या महेश्वरि ॥ २३ ॥
सर्वभावे मत्सदृशं तं विधाय सुदारुणम् ।
उल्लासमनसा देवि ह्यागतोऽहं तवान्तिकम् ॥ २४ ॥

बदन पञ्चाशत् लक्ष (पचास लाख) और यह बदन ज्वालावलीसे आच्छन्न था उसको मैं अणिमादि अष्टसिद्धि प्रदानपूर्वक उस दारुण दैत्यको अपनी समान कर प्रसन्न मनसे तुम्हारे निकट आया २३॥२४

सोऽपि तस्थौ दानवेन्द्रोग्रासं कृत्वा जनार्णवम् ।
गण्डूषे द्वे विधायैव सुवेलवेलपर्वतौ ॥ २५ ॥

वह दानवेंद्र जनार्णव ग्राम और सुवेल तथा वेल पर्वतमें दो गण्डूष (कुल्ले) स्थापित करके रहा ॥ २५ ॥

तदा मम मनो ज्ञात्वा त्वमवादीश्च मां प्रति ।
इदानीं ब्रह्माण्डभाण्डं जीवहीनमजायत ॥ २६ ॥

तब तुमने मेरे मनका भाव जानकर मुझसे कहा था कि, हे महादेव! इस समय ब्रह्माण्डभाण्ड जीवहीन होगया है ॥ २६ ॥

आज्ञापय महादेव पश्यामि सकलं शिव ।
तदा विहस्य मनसा तवोत्कण्ठां विवर्द्धयन् । २७ ॥

हे शिव! आज्ञा करो मैं सब देखूं । तब मैंने मनमें हँसकर तुम्हारी उत्कण्ठा बढाकर ॥ २७ ॥

अवोचं त्वामहं भद्रे त्वागच्छ पश्चिमां दिशम् ।
सर्वत्रान्यत्र देवेशि दृष्ट्वा पश्चाद्गतं मयि ॥ २८ ॥

कहा हे भद्रे! आओ, पश्चिम दिशामें चलें । हे देवेशि! अन्यत्र सर्वत्र ही देखकर मेरे पीछे पीछे गमन किया था ॥ २८ ॥

स्त्रीणां स्वभावो देवेशि यत्रैवाधः स्थितो भवेत् ।
तत्रैव महती श्रद्धा दृष्ट्वा यातुं सदा भवेत् ॥२९ ॥

स्त्रियोंका स्वभाव सदा ही अधःस्थित (नीचे स्थित रहने वाला) होता है, वह स्थान देखकर उसमें [illegible] महत् श्रद्धा हुई ॥ २९ ॥

इति ज्ञात्वा मयोक्तं तन्निषेधवचनं शिवे ।
ततः प्रयोजनाभावात्तव स्वभावतः शिवे ॥ ३० ॥

मैंने यह जानकर वहां जानेमें तुमको निषेध किया फिर प्रयोजनाभाव और आपने स्वभाववश ॥ ३० ॥

न गतान्यत्र देवेशि स्थित्वा त्वं च ममान्तिके ।
महद्धाम्नि च कान्तारे यत्र केदारकेश्वरः ॥ ३१ ॥

अन्यत्र गमन न करके तुम मेरेही निकट स्थितरही थी। कुछ काल स्थितिकरके फिर जिस महत् कान्तार स्थानमें केदारकेश्वर हैं ॥ ३१ ॥

तत्र गत्वा महादेवी जगन्मोहनकारिणी ।
विव्याध दैत्यराजेन्द्रं कामबाणैः सहस्रशः ॥ ३२ ॥

जगन्मोहनकारिणी तुमने उस स्थानमें जाकर उस दैत्यराजको सहस्र सहस्र कामबाणसे विद्ध किया था ॥ ३२ ॥

अत उत्थाय दैत्येन्द्रः कामबाणेन विह्वलः ।
करान्प्रसार्य सकलानाह चाटुवचो भृशम् ॥ ३३ ॥

यह दैत्य कामबाणसे विह्वल और उत्थित होकर सब हाथ पसार अनेक चाटु वचन (खुशामदके वचन) कहनेलगा ॥ ३३ ॥

वीर उवाच ।

मम क्रोड़े त्वं समागच्छ भव सर्वेश्वरी मुदा ।
त्राहि मां कामजलधौ निमग्नं स्वाङ्गदानतः ॥ ३४ ॥
किञ्चित्कालं न जीवामि त्वां विनाहं कथंचन ।
आलिंग्य पतिभावेन [illegible] रक्ष सुन्दरि ॥ ३५ ॥
इत्यादि चाटुवाक्यैस्त्वां [illegible] मुहुर्जगाद च ।
ततः सा त्वमवादीश्च [illegible] शुचिस्मिता ॥ ३६ ॥

घोरने कहा–तुम मेरी गोदीमें आनकर आनन्दसे सर्वेश्वरी होओ मैं काममागरमें निमग्न हुआ हूं, इस समय तुम अपना. अंगदान करके मेरी रक्षा करो ॥ ३४ ॥ हे तन्वाङ्गि ! मैं तुम्हारे विना कभी क्षणमात्र भी जीवित नहीं रहसकता । हे सुन्दरी! तुम मुझको पतिभावसे आलिंगन करके मेरा जीवित रक्षा करो ॥ ३५ ॥ इस प्रकार अनेक चाटु-वचन (प्रेमके खुशामदी वचन) तुमसे वारंवार कहने लगा । तब तुमने उससे कटाक्षसहित मुसकुराकर कहा था ॥ ३६ ॥

त्वं सर्वदैत्येन्द्र समस्तभोक्ता
त्वं वै बली देवनिकाय एव ।
त्वं वीर्यवान्सर्वविनाशनश्च
त्वां वै वरामो यदि तत्करोपि ॥ ३७ ॥

श्रीदेवीजीने कहा तुम सब दैत्योंके इन्द्र तुम्हीं सर्वभोगी तुम्हीं देवताओंसे भी बलवान्, तुम्हीं वीर्यवान् और सबके विनाश करनेवाले हो यदि तुम मेरा वह कार्य साधन करसको तो मैं तुमको वरूंगी ॥ ३७ ॥

मदीयवृत्तान्तमिह शृणुष्व
नावास्थितिः क्वापि भवेन्न यस्मात् ।
पुरा प्रतिज्ञा हि मया कृता या
तां पालय त्वं यदि मां ग्रहीतुम् ॥ ३८ ॥

तुम मेरा वृत्तान्त सुनो । वह कार्य पूरा न होनेसे मैं कहीं भी स्थिति नहीं करसकती ! यदि मुझको ग्रहण करनेकी तुम्हारी अभिलाषा हो, तो मैंने पूर्वमें जो प्रतिज्ञा की है, उसको पालन करो ॥३८॥

मनस्तु चैवं खलु दैत्यराज
यो मां विनिर्जित्य रणे स्थितः स्यात् ।

दक्षिणेन च तस्याग्रं किंचिदुच्चे च संस्थिता ।
या ख्याता ललिता कान्ता ब्रह्महत्यापहारिणी॥ ३५ ॥

उसके पूर्व उत्तर देशमें शतइक्षुक्षेप (जितने स्थानमें सौ गन्ने रक्खे जा सके) के अन्तरमें आकाशगंगाचिह्नित जो सुरदीर्घिका शिला है, दक्षिणमें उसका अग्रभाग कुछेक ऊंचेमें स्थित रहताहै उस मनोहर ब्रह्महत्याका पाप निवारण करनेवाली शिलाका नाम ललिता है॥३४॥३५॥

अश्वत्थं नन्दिरूपञ्च मूले कूर्माकृतिः शिला ।
दृष्ट्वा नरश्च तं देवं न पश्यत्येव पातकम् ॥ ३६ ॥

वहां नन्दिरूप अश्वत्थ है उनके मूलमें कूर्माकृति शिला अवस्थित है मनुष्यगण उन देवका दर्शन करनेपर सब पातकोंसे छूट जाते हैं॥३६॥

तत्र योनिगतं लिङ्गं चतुर्हस्तप्रमाणतः ।
ततः प्रदीपिकाकारं कुण्डं सर्वाघनाशनम् ।
तत्र व्यासेश्वरं देवं दृष्ट्वा निर्याति पातकम् ॥ ३७ ॥

वहां चार हस्त प्रमाण योनिगत लिङ्ग और प्रदीपाकार सब पापोंका नाश करनेवाला एक कुण्ड है, वहां व्यासेश्वर देवका दर्शन करनेपर मनुष्य पापोंसे छूटजाता है ॥ ३७ ॥

व्यासतीर्थे नरः स्नात्वा ललिता योभिपूजयेत् ।
अश्वमेधसहस्रस्य तत्फलं लभते महत् ॥ ३८ ॥

जो मनुष्य व्यासतीर्थमें स्नान करनेके पीछे ललिताकी पूजा करताहै वह हजार अश्वमेधके महाफलको प्राप्त होताहै ॥ ३८ ॥

विंशद्धन्वन्तरे प्राच्यां वनदो नाम दाडिमः ।
पद्मपत्राकृतिदलो निर्यासेनोपचिह्नितः ॥ ३९ ॥
तस्य मूले स्थिता देवी उच्चावरणरूपिणी ।
तस्याः सम्पूजनादेव ग्रहदोषैर्न लिप्यते ॥ ४० ॥

स मे तु भर्ता हि न चान्य एव
तदादितो युद्धमितः श्रयस्व ॥ ३९ ॥

मेरी प्रतिज्ञा यही है कि, जो मनुष्य रणमें स्थित होकर मुझको पराजित कर सकेगा अर्थात् जीतलेगा. वही मेरा भर्ता है दूसरा कोई मेरा भर्ता नहीं हो सकेगा। अत एव हे दैत्यराज ! पहिले मुझसे युद्ध करो ॥३९॥

ईश्वर उवाच ।

एवं ब्रुवाणां त्वां देवि क्रोधेन महता युतः ।
उच्चैर्निर्भर्त्सयामास प्रलयाम्भोधिघर्घरम् ॥ ४० ॥

ईश्वर बोले—हे देवि ! जब तुमने यह कहा तब वह भयंकर दैत्य प्रलयपयोधिकी समान महाभयंकर घर्घर शब्दसे तुम्हारी भर्त्सना करनेलगा ॥ ४० ॥

ततः समुत्थितो घोरः कालरुद्रं च न्यकृतः ।
समाहर्तुं तदा दैत्यो धावतिस्माखिलं जगत् ॥ ४१ ॥

इसके उपरान्त महाघोरतर वह घोर दैत्य महाकाल रुद्रको धिक्कार देकर संपूर्ण जगत्का संहार करनेके लिये उठकर दौडा ॥ ४१ ॥

तथापि त्वां गृहीतुं स क्षमो नाभूत्कथञ्चन ।
तदा वेगेन महता स गत्वा दानवेश्वरः ॥ ४२ ॥

तोभी वह तुमको पकडनेमें किसी प्रकार समर्थ न हुआ । तब वह दानवेन्द्र वेगसे दौडने लगा ॥ ४२ ॥

हस्तामर्षवशात्ते च पर्वताश्चूर्णतां गताः ।
पदाघातादुपरता मग्ना हि स्युर्जलार्णवे ॥ ४३ ॥

उसके हस्तस्पर्शसे सब पर्वत चूर्ण होनेलगे । पदाघातसे प्रक्षिप्त होकर जलार्णव (समुद्र) में डूबनेलगे ॥ ४३ ॥

उसके पूर्वकी ओर बीसधनुके अन्तरमें वनदा नामक त्रियोन्सपारि-विहित (अर्थात् किसी अमोघा चिह्नविशेषसे युक्त) पद्मपत्राकृति पत्र युक्त एक दाडिम्ब वृक्ष है उसके मूलदेशमें उच्चारणरूपिणी देवी स्थित है, उनकी पूजा करनेसे मनुष्य ग्रहदोषसे लिप्त नहीं होता ॥३९॥४०॥

वृक्षं स्पृष्ट्वा भक्तिमती वन्ध्या गर्भधरा भवेत् ।
छिन्नहस्तो लभेद्धस्तं कालेनाङ्गं लभेत्पुनः ॥ ४१ ॥

वंध्या स्त्री भक्तिमती होकर उस वृक्षका स्पर्श करनेसे गर्भवती होती है, छिन्नहस्तको हस्तलाभ और कालक्रमसे अन्य हीनाङ्ग भी लाभ कर सकता है ॥ ४१ ॥

दाडिमस्य च पूर्वे तु नातिदूरे प्रतिष्ठितम् ।
नवहस्तामितं रन्ध्रं तद्देवं भुवनेश्वरम् ।
पूजयेत्कामबीजेन विजयी जायते नरः ॥ ४२ ॥

दाडिम्बकी पूर्वदिशामें थोडी ही दूर नव हाथकी बराबर रंध्र प्रति-ष्ठित है वहां भुवनेश्वर देव अवस्थित हैं, कामबीज मंत्रसे उनकी पूजा करनेपर मनुष्य विजय प्राप्त करते हैं ॥ ४२ ॥

तस्य वायव्यभागे तु अगस्त्यस्याश्रमे शुभे ।
देवं गदाधरं तत्र पूजयेत्कुसुमादिना ॥ ४३ ॥

उसके वायुकोणमें अगस्त्यके शुभकर आश्रममें गदाधर देव अव-स्थित हैं कुसुमादि द्वारा उनकी पूजा करै ॥ ४३ ॥

नातिदूरे तु देवस्य या शिलाश्वेतमुज्ज्वलम् ॥
जल्पेशं तं महालिङ्गं पूजयेत्तावदुच्चरन् ॥ ४४ ॥
सौभाग्ये विधिवत्स्नात्वा जल्पेशं यस्तु पूजयेत् ।
अग्निष्टोमफलं तस्य भविष्यति मम प्रिये ॥ ४५ ॥

तदङ्गभ्रमवातेन प्रोच्छलज्जलमण्डलम् ।
ऊर्द्धाधश्च कटाहान्तं महाभीमतरंगकम् ॥ ४४ ॥
ब्रह्माण्डं परिसंव्याप्य भ्रमते स निरन्तरम् ।
धर्तुकामो महामाये त्वां धर्तुं न क्षमोऽभवत् ॥ ४५ ॥

उसके अंगकी पवनके भ्रमसे जलधिमण्डल उछलकर महाभयंकर तरंगोंके सहित ब्रह्माण्डके ऊर्ध्वार्द्ध (ऊपरके अर्ध) कटाहपर्यन्त (आधे भाग पर्यन्त) निरन्तर परिभ्रमण करनेलगा । हे महामाये ! वह तुम्हारे पकडनेकी इच्छासे दौडनेपर भी नहीं पकडसका ॥ ४४॥४५॥

अग्रेऽग्रे त्वां पश्यति स्म केवलं दैत्यपुंगवः ॥
यद्यद्युद्धं कृतं तेन कथितुं नैव शक्यते ॥ ४६ ॥

तुमको केवल आगे आगे जाता देखने लगा । उसने जैसा जैसा युद्ध किया, उसका वर्णन नहीं होसकता ॥ ४६ ॥

यद्यत्क्षितं त्वयि शिवे तत्सर्वं भस्मसाद्गतम् ।
तत्तेजसा महेशानि तत्रापि क्रोधमूर्च्छितः ॥ ४७ ॥
भवेन्निरन्तरं दैत्यो घोरो घोरपराक्रमः ।
आश्चर्यं शृणु देवेशि युद्धवृत्तं महोज्ज्वलम् ॥ ४८ ॥

हे शिवे ! तुम्हारे ऊपर उसने जो जो निक्षेप किया वह सबही भस्मसात् होगया । हे महेशानि ! तोभी तेजोयुक्त क्रोधमूर्च्छित हो वह घोर दैत्य क्रमक्रमसे घोर पराक्रम प्रकाश करनेलगा । हे देवेशि ! आश्चर्य सुनो ॥ ४७ ॥ ४८ ॥

जलजातात्कटाहात्तु धूलिरुत्पद्यते भृशम् ।
एवमेकाहतो युद्धं कोटिवर्षमभूत्तदा ॥ ४९ ॥

उस महा तुमुल (भयंकर) युद्धकालमें जलजात कटाहसे ढेर ढेर धूलि उठने लगी यह युद्ध एक दिनसे आरंभ करके करोड वर्ष हुआ था ॥ ४९ ॥

एवं तत्र महेशानि युद्धकाले भयातुरः ।
अहं योगं समाश्रित्य अतिसूक्ष्मतरं वपुः ॥
विधाय परमेशानि त्वामाश्रित्य स्थितः सदा ॥ ५० ॥

हे महेशानि! मैं ऐसे युद्धकालमें भयातुर होकर योग अवलम्बन पूर्वक सूक्ष्मतर शरीर धारण करके तुम्हारे ही सहारेसे स्थित रहा ॥ ५० ॥

कथञ्चिदपि न प्राप्य त्वां धर्तुं दैत्यराट् तदा ॥
चिन्तयामास च खलु त्वां हन्तुं विविधक्रमम् ॥ ५१ ॥

तब दैत्यराज तुमको किसी प्रकार न पकडसकनेसे तुम्हारे हनन करनेके लिये अनेक उपाय विचारने लगा ॥ ५१ ॥

वर्द्धयित्वा शरीरं स्वं घर्षयित्वा च बाहुना ।
कटाहे मारयिष्यामि महादुष्टां हि त्वामहम् ॥ ५२ ॥

वह अपना शरीर बढाकर और बाहुद्वारा उसको घर्षणकर चिन्ता करनेलगा मैं महादुष्टस्वभाव नारीको इस कटाह (एक आकार) में डालकर वध करूंगा ॥ ५२ ॥

इति सञ्चिन्त्य मनसा वर्द्धयित्वा कलेवरम् ।
पूरितं तेन ब्रह्माण्डं घोरो हर्षमुपागमत् ॥ ५३ ॥

इस प्रकार मनमें चिन्ता करके कलेवर बढाने लगा । अपने द्वारा ब्रह्माण्ड परिपूरित हुआ देखकर घोर दैत्य अत्यन्त हर्षित हुआ ॥ ५३

उवाच त्वां तदा दैत्यो हता यास्यसि कुत्र वा ।
भवती भृशमालोक्य दैत्यं ब्रह्माण्डपूरितम् ॥ ५४ ॥

तब दैत्यराजने तुमसे कहा—अब अपने आपको हतप्राय देखकर कहां भागोगी? तुमने दैत्यको निजकलेवरसे ब्रह्माण्डपरिपूरित करता देखकर ॥ ५४ ॥

त्वयोक्तोऽसौ घोरदैत्यास्तिष्ठ तिष्ठ सुदुर्मते ।
कथं व्यस्तो भवाञ्जातो निहन्मि त्वामह मुदा ॥५५॥

तुमने कहा था—रे दुर्मति घोर दैत्य ! तू ठहर २ घबराता क्यों है? मैं अभी तुझको लीलापूर्वकही मारतीहूं ॥ ५५ ॥

अधुनैव महादुष्ट जानासि न हि मां कदा ।
मत्तः सृष्टिः समुत्पन्ना मय्येव प्रविलीयते ॥ ५६ ॥

रे महादुष्ट ! अबभी तू मुझको क्यों नहीं जानसका ? मुझसेही सृष्टि उत्पन्न और मुझमेंही लय होती है ॥ ५६ ॥

मयैव पाल्यते सर्वं मम मायामयं जगत् ॥
मत्तो नान्यत्किञ्चिदस्ति ब्रह्मैवाहं सनातनः ॥ ५७ ॥

मैंही इस सब संसारको पालती हूं यह जगत् मेरीही मायामय है मेरे अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं है, मैंही सनातनब्रह्म हूं ॥ ५७ ॥

शृणु मूढवरास्माकं परमं मङ्गलं महत् ।
दुष्टभावेन वा दैत्य शिष्टभावेन वा पुनः ॥ ५८ ॥

रे मूढमति ! मेरा परममहत् मंगलभाव सुन रे दैत्य ! दुष्टभावसे हो वा शिष्टभावसे हो ॥ ५८ ॥

भजन्ते मां यथा ये हि तथा कामं ददामि ते ।
निदानन्तु प्रयच्छामि महाफलमनुत्तमम् ॥ ५९ ॥
त्वयाहं सेविता दैत्य बहुकालं न संशयः ।
समाप्तमेकाचित्तेन ममैषा त्वकरोद्यतः ॥ ६० ॥
शिवोऽसि नात्र सन्देहो मत्कृते यच्छ्रमस्तव ।
इदानीं पश्य मद्रूपं ब्रह्मानन्दं परं पदम् ॥ ६१ ॥

मुझको जो जिस भावसे भजता है, मैं उसकी वही कामना पूर्ण करती हूं मैं ही अनुत्तम महाफलका निदान स्वरूप ब्रह्मनिर्वाण प्रदान

करती हूं हे दैत्य ! तैंने मेरी बहुत काल सेवा करी है, इसमें संदेह नहीं। तैंने मेरा प्रति एकान्त चित्त होकर मुझको प्राप्त करनेकी वासना करी है अतएव तू निःसन्देह शिव है । क्यों कि, तैंने मेरे लिये बहुत श्रम किया है । अब तू मेरा परम पद ब्रह्मानन्दरूप देख ॥५९॥६०॥६१

यद्दृष्ट्वान्पुनः कोऽपि कदाप्याविर्भवेत्किल ।
ध्यात्वा यत्परमं रूपं शिवं नूनमिति प्रभो ॥ ६२ ॥
तद्रूपं परमं धाम कालीरूपमिति शृणु ।
इतः परतरं रूपं ब्रह्मणो नास्ति कुत्रचित् ॥ ६३ ॥

इस शिवमय परमपदका ध्यान करके भी कोई नहीं देखसकता । वह तू शीघ्र देख क्योंकि, उसको देखनेके लिये और भी कोई प्रगट होसकता है । इस प्रकार परमधाम उस कालीरूपको जानना चाहिये । परब्रह्ममें इसकी अपेक्षा उत्कृष्टतर रूप और कहीं भी नहीं है॥६२॥६३॥

इत्युक्त्वा त्वं तदा देवि भवानी भवमोचनी ।
ध्यात्वा यत्परमं रूपमहं कालीति वादिनी ॥ ६४ ॥
असकृत्परमेशानि जाता त्वं कालिका तदा ।
कृष्णवर्णा महाघोरा महाकालोपरि स्थिता ॥ ६५ ॥
मुण्डमालावली रम्या मुक्तकेशी स्मितानना ।
ललज्जिह्वा रक्तघोरा लोचनत्रयराजिता ॥ ६६ ॥

हे देवि ! तब भवमोचनी भवानी तुमने यह सब वचन कहकर परमरूप ध्यानपूर्वक 'मैं काली मैं काली' यह वाक्य कहते कहते बारंवार काली मूर्ति धारण करी थी. वह काली कृष्णवर्ण, महाघोररूप महाकालके ऊपर स्थित, मुण्डमालावलीसे मनोहर, मुक्तकेशी स्मितानन ललज्जिह्वा और रक्तवर्ण तीन नेत्रोंसे विराजित ॥ ६४ ॥ ६५ ॥६६॥

अमाकलासमुल्लासा किरीटोज्ज्वलविग्रहा ।
शिवाकोटिसहस्रैस्तु तेजोमण्डलसम्भवैः ॥ ६७ ॥
महारावैश्चतुर्दिक्षु यतो घोरपराक्रमैः ।
रश्मिवृन्दसमुद्भूता योगिन्यः कोटिकोटिशः ॥ ६८ ॥
समन्ताद्धोररूपस्था महायुद्धमहोत्सुकाः ।
प्रतिलोमे कूपमध्ये ब्रह्माण्डं कोटिकोटिशः ।
भासन्ते सततं देवि सर्वाः सूर्यमयाः पुनः ॥ ६९ ॥

किरीट द्वारा उज्ज्वल शरीर और अमाकलाकी समान उल्लासित (प्रफुल्ल) तेजोमण्डलसंभूत, घोररव, घोर पराक्रम करोड सहस्र गीदडियोंसे वेष्टित। उस महाकालीके रश्मिबिन्दुसे घोर रूपवाली, महायुद्धमें उत्सुक करोड करोड योगिनी चारों ओरमें उत्पन्न हुई । हे देवि ! वह सब योगिनी सूर्यमयरूपमें दीप्ति पानेलगीं । महाकालीके प्रतिलोम कूपमें करोड करोड ब्रह्माण्ड प्रकाश पाने लगे ॥ ६७ ॥ ६८ ॥६९॥

एवं तां कालिकां दृष्ट्वा मूर्छितो दानवेश्वरः ।
प्रतीतोऽसौ महाकाल्या दृष्ट्वा श्रीमुखमण्डलम्॥७०॥

वह दानवेश्वर इस प्रकार उस कालीको देखकर मूर्छित हुआ । महाकालीका श्रीमुखमण्डल देखनेसे इस दानवको प्रीति प्राप्त हुई ॥ ७०॥

तत्क्षणाद्दानवाधीशो ब्रह्मज्ञानमवाप्तवान् ।
ततस्तं दानवाधीशं ज्ञानं भक्तं सुनिर्मलम् ॥
जिह्वया लोलया काली चकर्ष च रणान्तरे ॥ ७१ ॥

वह दानवाधीश्वर तत्काल ब्रह्मज्ञानको प्राप्त हुआ फिर महाकालीने उस निर्मल भक्त ब्रह्मज्ञानवान् दानवराजको रणमें लोलजिह्वाद्वारा आकर्षण किया ॥ ७१ ॥

ब्रह्माण्डसहितं माता चर्वयित्वा मृतं क्षणात् ।
चकार लीलया काली घोरवाद्यमहोत्सुका ।
नानायन्त्रस्य बृहतः पताकाव्यापिका तदा ॥ ७२ ॥

और जगन्माताने ब्रह्माण्डके सहित उसको चाबकर क्षणमात्रमेंही वध करडाला । अनन्तर महाकालीने लीलापूर्वक बृहत् बृहत् यन्त्रोंका घोर वाद्य महोत्सव किया और आकाशव्यापी (ध्वजाको उठाकर) आन्दोलित किया ॥ ७२ ॥

इति श्रीयोगिनीतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे देवीश्वरसम्वादे चतुर्विंशतिसाहस्रे भाषाटीकायां अष्टमः पटलः ॥ ८ ॥

ईश्वर उवाच ।

तद्दृष्ट्वा तु महाश्चर्यं भयविह्वलमानसः ।
अहं त्वगच्छं सहसा तत्र कान्तारमुत्तमम् ॥ १ ॥

ईश्वर बोले–यह महाआश्चर्य बात देखकर मैं भयविह्वल चित्तसे उस उत्तम कान्तारमें सहसा गया ॥ १ ॥

सुषुम्नावर्त्मना देवि तत्र गत्वा मया किल ।
समुद्दिष्टं श्रुतं यद्यत्कथितुं नैव शक्यते ॥ २ ॥

हे देवि ! सुषुम्नावर्त्म द्वारा उस स्थानमें जाकर मैंने जो जो सुना; उसके प्रकाश करनेको मैं समर्थ नहीं हूं ॥ २ ॥

सर्वाश्चर्यमयं देवि न दृष्टं न श्रुतं क्वचित् ।
अतीव बृहदाकारा ब्रह्माण्डाः कोटिकोटिशः ॥ ३ ॥

हे देवि ! वह सर्वाश्चर्यमय है, उस प्रकार न कहीं देखा और न कहीं सुना । अत्यन्त बृहदाकार करोड करोड ब्रह्माण्डमण्डल ॥ ३ ॥

चरन्ति सर्वदा देवि कः संख्यातुं क्षमो भवेत् ।
कोटिकोटिमुखा देवि ! कोटिकोटिभुजास्तथा ॥ ४ ॥

सदा विचरण करते हैं, उनकी कौन संख्या करसकताहै ? हे देवि! वहां करोड करोड मुख और करोड करोड भुजायुक्त ॥ ४ ॥

एवं च विविधाकारा ब्रह्मविष्णुशिवादयः ।
महदैश्वर्यसम्पन्नाः प्रतिब्रह्माण्डवासिनः ॥ ५ ॥

विविधप्रकार आकारधारी प्रतिब्रह्माण्डनिवासी ब्रह्मा विष्णु शिवादि महदैश्वर्यसम्पन्न होकर विचरते हैं ॥ ५ ॥

सर्वाश्चर्यमयं देवि दृष्ट्वा कुशलमानसः ।
सर्वं मे विस्मृतं जातं कोऽहं चिन्तापरायणः ॥ ६ ॥

हे देवि ! यह सर्वाश्चर्यमय व्यापार देखकर मेरा मन विह्वल होगया मैं सब भूलगया, तब 'मैं कौन हूं ?' यह चिन्ता मेरे मनमें उदय हुई ॥ ६ ॥

अहं कः कुत्र चायातः केन पृच्छति कुत्रचित् ।
एवं नानाविधं देवि भुवने विस्मृतः सदा ॥ ७ ॥

मैं कौन हूं ? कहांसे आयाहूं. कोई, कहींभी कुछ नहीं पूछता, इस प्रकार मैं भुवनको समस्तही भूलगया ॥ ७ ॥

नानास्थानसंभ्रमश्च नास्ति स्मर्यश्च मे कदा ।
ततश्च कोटिवर्षान्ते प्राप्तं ते हृदयाम्बुजम् ॥ ८ ॥

मैं अनेक स्थानोंमें भ्रमण करने लगा । मुझको कुछभी स्मरण नहीं हुआ, फिर करोड वर्ष पीछे तुम्हारे हृदयाम्बुजको प्राप्त होकर तृप्त हुआ ॥ ८ ॥

तत्र गत्वा मया सर्वं दृष्टमाश्चर्यमुत्तमम् ।
तत्सर्वं परमेशानि कथितुं नव शक्यते ॥ ९ ॥

हे परमेशानि ! मैंने उस स्थानमें जाकर जो जो परम सुन्दर, जो जो आश्चर्य देखा वह मैं वर्णन नहीं करसकता ॥ ९ ॥

यद्भावार्थोदयं शास्त्रं कारणं सुखमोक्षयोः ।
परमात्मागमो वेदा जीवो दर्शनमिंद्रियम् ॥ १० ॥

कुछेक वर्णन करताहूं सुनो, सुख और मोक्षका कारण धमार्थमय शास्त्र, परमात्मा, आगम, वेद, जीवात्मा, दर्शन, इन्द्रिय ॥ १० ॥

देहः पुराणमङ्गानि स्मृतयो नियमानि च ।
तत्रैव सर्वशास्त्राणि लोमादीनि वरानने ॥ ११ ॥

देह पुराणके सब अंग, संपूर्ण स्मृति शास्त्र व लोमादि सर्वशास्त्र वहां देखे ॥ ११ ॥

जीवात्मनोर्यथा भेदस्तथा वेदागमेष्वपि ।
पत्राग्रे पत्रमध्ये च पत्रान्ते हृदयाम्बुजे ॥ १२ ॥

समस्त वेदागममें जिस प्रकार जीवातमाका भेद है, वह हृदयाम्बुजमें, पत्राग्रमें, पत्रमध्यमें और पत्रान्तमें ॥ १२ ॥

दृष्ट्वा वर्णावली या तु तीव्रतेजोमयी शुभा ।
शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्द एव वा ॥१३॥

देखनेके पीछे तीव्र तेजोमयी शुभकरी वर्णावली देखी । शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द ॥ १३ ॥

अन्यानि सर्वशास्त्राणि क्षुद्राणि यानि कानि च ।
किन्तु पूर्णावलोकेन ज्ञातोऽहं कथितं तव ॥ १४ ॥

ज्योतिष और अन्यान्य क्षुद्र क्षुद्र संपूर्ण शास्त्र अवलोकन किये । फिर मैं पूर्णावलोकसे ज्ञात हुआ, सो तुमसे कहताहूं ॥ १४ ॥

ततो मया श्रुतं देवि कर्णिकान्तर्महोज्ज्वलम् ।
कोटिकोटिदिवानाथनिशानाथसमुज्ज्वलम् ॥ १५ ॥
कोटिकोटिमहावह्नितेजोमण्डलमाण्डितम् ।

तन्मध्ये तु मया दृष्टं वर्णपुंजं महोज्ज्वलम् ॥ १६ ॥
सूर्यकोटिसमाभासं चन्द्रकोटिसुशीतलम् ।
वह्निकोटिमहोज्ज्वालं परं ब्रह्ममयं ध्रुवम् ॥ १७ ॥
सर्वज्ञानमयं देवि सर्वाश्चर्यमयं सदा ।
सर्वयज्ञमयं देवि सर्वतीर्थमयं सदा ॥ १८ ॥
सर्वपुण्यमयं देवि सर्वधर्ममयन्तथा ।
ब्रह्मज्ञानमयं देवि ब्रह्मानंदमयं तथा ॥ १९ ॥
प्रमाणं सर्वशास्त्राणां वेदादीनां महेश्वरि ।
प्रमाणं सर्वसत्त्वानां ब्रह्मतेजः परं हि तत् ॥ २० ॥
सर्वमायाबहिर्भूतं सर्वमायानिकृन्तनम् ।
सर्वानन्दमयं देवि ब्रह्मानंदमयं सदा ॥ २१ ॥
पूर्णानन्दमयं देवि ब्रह्मनिर्वाणमुत्तमम् ।
सर्वमायामयं देवि सर्वविद्यामयं पुनः ॥ २२ ॥
सर्वतपोमयं देवि सर्वसिद्धिमयन्तथा ।
सर्वमुक्तिमयं देवि सर्ववेदमयं तथा ॥ २३ ॥
सर्वलोकमयं देवि सर्वभोगमयं तथा ।
सर्वशास्त्रमयं देवि सर्वयोगमयं तथा ॥ २४ ॥
दृष्ट्वागममिमं तत्र मम ज्ञानान्धसागरे ।
गता शर्वर्यथोऽद्राक्षं यथा सूर्योदयोज्ज्वलम् ॥ २५ ॥
अभ्यस्तं हि मया सर्वं महाकालीप्रसादतः ।
दृष्ट्वाभ्यस्तं मया सर्वं तत्क्षणान्नात्र संशयः ॥ २६ ॥

जिस कर्णिकामें करोड करोड दिवानाथ और निशानाथकी समान समुज्ज्वल एवं करोड करोड महावह्नि तेजोमण्डलसे मण्डित महोज्ज्वल वर्णपुंज मैंने देखा । हे महेश्वरि ! उसमें करोड सूर्यकी समान दीप्तिशाली करोड चन्द्रमाकी समान शीतल, करोड अग्निकी समान महोज्ज्वल, नित्य परब्रह्ममय, सर्वज्ञानमय, सर्वाश्चर्यमय, सर्वयज्ञमय, सर्वतीर्थमय, सर्वपुण्यमय, सर्वधर्ममय ब्रह्मज्ञान, ब्रह्मानन्दमय वेदादि सब शास्त्रोंका प्रमाण और सर्वविधिसत्वका ब्रह्मतेजमय परम और हितकर प्रमाण देखकर आनन्द प्राप्त किया । सर्वमायाबहिर्भूत, सर्वमायाका निवर्त्तक, सर्वानन्दमय, ब्रह्मानन्दमय, पूर्णानन्दमय उत्तम ब्रह्मनिर्वाण और सर्वमायामय, सर्वविद्यामय, सर्वतपोमय, सर्वसिद्धिमय, सर्वमुक्तिमय, सर्व वेदमय सर्वलोकमय, सर्वभोगमय, सर्वशास्त्रमय, सर्वयोगमय आगम अवलोकन किया । इससे मेरी अज्ञानान्धसागरकी घोर रात्रि विगत होगई । मैंने सूर्योदयोज्ज्वल ज्ञानका दर्शन किया । मैंने महाकालीके प्रसादसे उन समस्त शास्त्रादिका अभ्यास किया । वह सब देखकर मैंने तत्काल सबका अभ्यास किया । इसमें सन्देह नहीं ॥ १९–२६ ॥

ततः किञ्जल्कपुञ्जेषु गत्वा दृष्टं मया किल ।
वर्णपुञ्जमयं देवि सूर्यकान्तिसमप्रभम् ॥ २७ ॥
न्यायो मीमांसकं सांख्यं पातञ्जलं कथा पुनः ।
वैशेषिकं यथापूर्वं मया ज्ञातं हि तत्क्षणात् ॥ २८ ॥

फिर किंजल्कपुञ्जमें जाकर देखा कि, सूर्यकान्तिकी समान प्रभासम्पन्न वर्णपुंजमय न्याय, मीमांसा, सांख्य, पातंजल, वैशेषिक समस्त शास्त्रसे मैं तत्काल पूर्वकी समान ज्ञात हुआ ॥ २७ ॥ २८ ॥

ततो वर्णावलीं दृष्ट्वा कर्णिकाप्रान्तदेशतः ।
शतसूर्यसमाभासां सर्वरञ्जनकारिणीम् ॥ २९ ॥
आयुर्वेदभिषग्वेदौ मयाभ्यस्तौ तदैव हि ।
तदन्तरे महादेवि दृष्टा वर्णावली शुभा ॥ ३० ॥

सहस्रादित्यसंकाशा शुद्धवर्णा महोज्ज्वला ।
स्मृतीतिहासो देवेशि पुराणानि मया पुनः ॥ ३१ ॥

तदनन्तर कर्णिकाके प्रान्तदेशमें सौ सूर्यके समान दीप्तिशालिनी सर्वरञ्जनकारिणी वर्णावली देखनेपर आयुर्वेद और भिषग्वेदका अभ्यास किया हे महादेवि ! वर्णावली देखनेके पीछे सहस्रादित्यसङ्काश अर्थात् सहस्रों सूर्यकी सदृश महोज्ज्वल शुद्ध समस्त वर्ण देखनेपर स्मृति, इतिहास ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥

मयाभ्यस्तं हि तत्सर्वं तत्क्षणान्नात्र संशयः ।
तथापि भ्रमदेहो मे न शुद्ध्यति कदाचन ॥ ३२ ॥
तदन्तरे मया दृष्टं सूर्यकोटिसमप्रभम् ।
ब्रह्मज्ञानं मया देवि ब्रह्मतेजःपरीवृतम् ॥ ३३ ॥
वेदान्तमिति विख्यातं वर्णपुञ्जं महत्प्रभम् ।
मयाभ्यस्तं तत्क्षणात्तु तन्महद्भयश्च मोहतः ॥ ३४ ॥

और समस्त पुराणोंका अभ्यास किया, इसमें सन्देह नहीं तथापि मेरे मनका भ्रम शांत नहीं हुआ । तदनन्तर करोड सूर्यकी समान प्रभासम्पन्न ब्रह्मतेजःपरिवृत ब्रह्मज्ञानसम्पन्न वर्णपुंज महाप्रभायुक्त 'वेदान्त' इस नामसे विख्यात महाशास्त्रका मैंने तत्काल अभ्यास किया ॥ ३२–३४ ॥

तदन्तरे मया दृष्टं वर्णपुंजसमुज्ज्वलम् ।
कोटिसूर्यप्रतीकाशं चन्द्रकोटिसुशीतलम् ॥ ३५ ॥
सर्वज्ञानमयं देवि सर्वतीर्थमयं सदा ।
सर्वयज्ञमयं देवि सर्वधर्ममयं तथा ॥ ३६ ॥
प्रमाणं सर्वसत्त्वानां शास्त्रादीनां महेश्वरि ।
वेदचतुष्टयं सामाथर्वऋग्यजुरुत्तमम् ॥ ३७ ॥

मयाभ्यस्तं हि तत्सर्वं तत्क्षणान्नात्र संशयः ।
तथापि न च तृप्तिर्मे जायते न च तत्क्षणात् ॥ ३८ ॥

तदनन्तर वर्णपुंजसे समुज्ज्वल, करोड सूर्यकी समान दीप्तिमान्, करोड चन्द्रमाकी समान शीतल, सर्वज्ञानमय, सर्वतीर्थमय, सर्वयज्ञमय सर्वधर्ममय, सर्वसत्त्व और सर्वशास्त्रका प्रमाणस्वरूप साम, अथर्व, ऋक् और यजुः इन अनुत्तम चारों वेदका मैंने तत्काल अभ्यास किया तोभी उनसे मेरी तृप्ति न हुई ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

सर्वज्ञानसर्वसत्त्वसर्वसिद्धिमयो ह्यहम् ॥ ३९ ॥

तदनन्तर मैंने सर्वज्ञानमय सर्वसत्त्वमय और सर्वसिद्धिमय होकर ॥ ३९ ॥

तदा नमस्कृतां देवि तस्त्वां कालीं सनातनीम् ।
शिवाभिर्योगिनीभिश्च नृत्यन्तीं ब्रह्मरूपिणीम् ॥ ४० ॥
स्थित्वा स्थित्वा संमुखे मे दृष्ट्वा श्रीमुखमण्डलम् ।
ततउड्डीनमासाद्य द्विदले चागतं मया ॥ ४१ ॥

वेदवेदान्तादिद्वारा नमस्कृत उन सनातनी ब्रह्मरूपिणी महाकाली देवीको शिवागण (गीदडी) और योगिनीगणोंके संग नर्तनशील अर्थात् नाचता हुआ देखा । वह रुक रुककर मेरे सामने नृत्य करने लगीं । फिर उनका श्रीमुखमण्डल देखकर मैं उडताहुआ द्विदलपद्ममें आया ॥ ४० ॥ ४१ ॥

आज्ञाचक्रभ्रुवोर्मध्ये महाकाल्या महेश्वरि ।
तदा मम स्मृतिर्जाता ब्रह्मविष्णुकृते पुनः ॥ ४२ ॥

हे देवि ! दोनों भौओंके मध्यस्थित महाकालीके आज्ञाचक्रके (इशारा करनेवाले) अवस्थितिकालमें ब्रह्मा और विष्णुका मुझको स्मरण हुआ ॥ ४२ ॥

तन्नृत्यसमये काल्या द्वयोश्चिबुकयोश्च्युतौ ।
स्वेदविन्दू महेशानि ताभ्यां जातौ गुणान्वितौ ॥४३॥

हे देवि ! उन देवीके नृत्यकालमें कालीकी चिबुक (ठोडी) से दो बूंदें पसीनेकी गिरीं । उन दोनों बूंदोंसे गुणयुक्त ब्रह्मा और विष्णु उत्पन्न हुए ॥ ४३ ॥

ब्रह्मा विष्णुश्च तौ दृष्ट्वा भयकम्पितविग्रहौ ।
तदा तौ च गतौ तूर्णं नासिकारन्ध्रयोर्द्वयोः ॥ ४४ ॥

ब्रह्मा और विष्णुका शरीर इन दोनोंको देख कर भयसे कांपने लगा वह तत्काल नासिकाके दोनों छिद्रोंद्वारा बाहर होगये ॥ ४४ ॥

कल्यास्तदा ततो धाता पिङ्गलायां महेश्वरि ।
इडायाञ्च ततो विष्णुस्तत्र गत्वा च तौ शुभौ ॥४५॥
महाविडम्बितौ भूतौ दृष्ट्वाश्चर्यमनेकशः ।
रुदन्तौ सततं देवि विस्मृतं किं भविष्यति ॥ ४६ ॥

फिर विधाता कालीकी पिंगला और विष्णु इडा नाडीमें गये । तब उन दोनोंने महाविडम्बित भूतद्वय (दो प्राणियोंकी महातिरस्कार की हुई आकृतियें) और अनेक आश्चर्य देखे । तदनन्तर ब्रह्मा और विष्णु रुदन करने लगे । हे महादेवि ! तुम यह बातें कैसे भूलती हो ॥ ४५ ॥ ४६ ॥

एवमादि रुदन्तौ तौ प्रधावितावितस्ततः ।
तावीश्वरौ महेशानि महादुःखेन दुःखितौ ॥ ४७ ॥

इस प्रकार महादुःखसे दुःखित होकर दोनों रोतेहुए इधर उधर दौडने लगे ॥ ४७ ॥

ज्ञात्वा मया महेशानि प्रागतं विष्णुमन्दिरम् ।
तस्मै दत्तं मया ज्ञानं मन्त्रं परममङ्गलम् ॥ ४८ ॥

हे महेशानि ! मैंने यह जानकर प्रथम विष्णुके मन्दिरमें जाय उनको परम मंगल ज्ञानमन्त्र दिया ॥ ४८ ॥

तत्क्षणान्मम तुल्योऽसौ वामाङ्गे केवलो मम ।
तस्मै दत्तं सर्वशास्त्रं वाङ्मात्रेणागमं विना ॥ ४९ ॥

यही वह तत्काल मेरे तुल्य होकर वामाङ्गमें रहे मैंने उनको आगम-के अतिरिक्त समस्त शास्त्र वाङ्मात्र अर्थात् कथनसेही प्रदान किये॥४९॥

गरुडस्थो महाविष्णुर्हृष्टपुष्टो बभूव ह ।
तमादाय गतस्तत्र ब्रह्माण्डे परमेश्वरि ॥ ५० ॥
गत्वा तस्मै मया दत्तं मन्त्रं परममद्भुतम् ।
महाज्ञानी महादेवि तत्क्षणात्सपितामहः ॥ ५१ ॥

वह विष्णु गरुडपर स्थित होकर हृष्ट पुष्ट होने लगे । हे परमेश्वरि ! मैंने विष्णुको ग्रहणकर ब्रह्माण्डमें प्रवेशपूर्वक ब्रह्माजीको परम अद्भुत मंत्र दिया । हे महादेवि ! उससे वह पितामह तत्काल महाज्ञानी हुए ॥ ५० ॥ ५१ ॥

मम तुल्यो जायतेऽसौ क्षणाङ्गे मम केवलः ।
स विधिः परमेशानि मम शासनतस्तदा ।
दत्त्वा तस्मै सर्वशास्त्रं वेदशास्त्रञ्च विष्णुना ॥ ५२ ॥

ब्रह्माजी मेरी समान होकर दक्षिण अंगमें स्थित रहे हे परमेशानि ! तब विष्णुने मेरी आज्ञासे विधाताको सर्वशास्त्र और वेदशास्त्र प्रदान किया ॥ ५२ ॥

गतव्यथस्तदा ब्रह्मा हृष्टः पुष्टः सदैव हि ।
अत आदिगुरुस्त्वं हि वर्त्तते मम सर्वदा ॥ ५३ ॥

फिर व्यथा दूर होनेपर ब्रह्माजी बराबर हृष्ट पुष्ट होने लगे । अतएव तुम सदाही मेरे आदिगुरु हो ॥ ५३ ॥

तदङ्गीकृत्य तज्ज्ञानं सह ताभ्यां महेश्वरि ।
परं कालं मया यातं तेन तेन यथा खलु ॥ ५४ ॥

हे महेश्वरि ! ब्रह्माजीके उस ज्ञानको अंगीकार करनेपर मैंने उनके सहित कालीके पीछे उस उस मार्गद्वारा गमन किया ॥ ५४ ॥

शिवाभिर्योगिनीभिश्च महानृत्यपरायणा ।
शतकोटिदिव्यवर्षं नृत्यंति स्म परात्मिका ॥ ५५ ॥

महाकाली शिवा और योगिनीयोंके सहित सौ करोड दिव्य वर्ष महानृत्यमें आसक्त रहीं ॥ ५५ ॥

नानावाद्यमहोल्लासा नानालङ्कारगाथिका ।
चन्द्रसूर्यवह्निसौम्यैर्विचित्रैश्च प्रसूनकैः ॥ ५६ ॥
उत्थितैः पतितैः पुष्पैर्दिव्यगन्धैर्म्महोत्सुका ।
वीक्षणागोचरैर्देवि सदा नृत्यपरा रहः ॥ ५७ ॥

वह परात्मिका काली अनेक प्रकारके बाजोंकी सहायतासे आनन्दका प्रकाश करने लगी । चन्द्र, सूर्य और अग्निकी समान विचित्र दिव्य गंध (अतिशय सुगन्धित) और पतित तथा जो दृष्टिगत न होसके, उन कुसुमसमूहद्वारा क्रीडाशालिनी और अनेक प्रकारके गहनोंसे अलंकृत हो निर्जनमें निरन्तर नृत्य करनेलगीं ॥ ५६ ॥ ५७ ॥

शतब्रह्माण्डसङ्काशैः पताकाभिश्च रञ्जिता ।
विचित्राभिश्च बहुभिर्दृष्ट्वा कान्ताभिरेव च ॥ ५८ ॥

शत शत ब्रह्माण्डकी समान विचित्र अनेक पताकाओंके द्वारा शोभित होकर शोभा पाने लगी ॥ ५८ ॥

अतः स्तोतुं समारब्धा वयं कालीं करालिकाम् ॥
साश्रुप्लुता गद्गदोक्त्या नतशीर्षाः पुटैः करैः ॥ ५९ ॥
तदादौ विधिरस्तौषीत्सर्वशास्त्रेण भक्तितः ।
कोटिवर्षं महेशानि तमुवाच तदा परा ॥ ६० ॥

इसके उपरान्त हम नेत्रोंमें जल भर गद्गद् वचनसे हाथ जोड शिर नवायकर कालीकी स्तुति करने लगे । पहिले ब्रह्माजीने भक्तिपूर्वक सर्वशास्त्रद्वारा स्तुति करी । तब महाकालीने करोड वर्ष पीछे ब्रह्माजीसे कहा ॥ ५९ ॥ ६० ॥

यद्गुणस्त्वमहो धातः सर्वशास्त्रार्थविद्यतः ।
अनुसन्धानवेत्तासि सृजकस्त्वं सदा भव ॥ ६१ ॥

हे धातः ! तुम अनुसन्धानवेत्ता अर्थात् मर्मके जाननेवाले और समस्त शास्त्रोंका अर्थ जाननेवाले हो. इस कारण तुम सृष्टि करो॥६१

इत्याज्ञप्तस्ततो धाता कृतकृत्योऽभवत्तदा ।
ततोऽस्तोषीन्महाविष्णुः सर्ववेदेन शाम्भवि ॥ ६२ ॥

ब्रह्माजी इस प्रकार आज्ञाको प्राप्त होकर कृतकृत्य हुए फिर महाविष्णु सर्ववेदद्वारा उन परमा महाकालीकी स्तुति करने लगे ॥ ६२ ॥

दशकोटच्यमानां च ततस्तमब्रवीच्छिवा ।
वेदज्ञोऽसि महाविष्णो मद्भक्तोऽसि गुणालयः ।
धर्मज्ञोऽसि च लोकं त्वं भव सृष्टेर्विवर्द्धकः ॥ ६३ ॥

हे महेशानि ! दश करोड वर्ष पीछे शिवाने उनसे कहा हे महाविष्णो ! तुम वेदज्ञ मेरे भक्त, गुणालय और धर्मके जाननेवाले हो, अतएव तुम पालक होकर सृष्टिको बढाओ ॥ ६३ ॥

इत्याज्ञाञ्च शिरे कृत्वा कृतार्थोऽसौ जगद्धितः ।
ततोऽहं परमां नित्यां कालीं ब्रह्मसनातनीम् ॥ ६४ ॥
तुष्टाव परया भक्त्या आगमेन महेश्वरि ।
विंशत्कोटिवत्सराणां मामुवाच तदा तु सा ॥ ६५ ॥

इस जगत्के हितकारी विष्णु कालीकी यह आज्ञा मस्तकपर धारण करके कृतार्थ हुए। इसके उपरान्त मैं उन परमा, नित्या ब्रह्म सनातनी कालीकी आगमनद्वारा परम भक्तिसहित स्तुति करने लगा बीस करोड वर्ष पीछे उन महाकालीने मुझसे कहा ॥ ६४ ॥ ६५ ॥

काल्युवाच ।

आगमज्ञो महाप्राज्ञो निर्म्मायोऽसि सदाशिव ।
सगुणस्त्वं महायोगी सृष्टिसंहारको भव ॥ ६६ ॥

महाकालीने कहा–हे सदाशिव ! तुम आगमज्ञ, महाप्राज्ञ, निर्माय (मायारहित) सगुण और महायोगी हो इस कारण तुम सृष्टिके संहारक होओ ॥ ६६ ॥

एवमाज्ञां शिरे कृत्वा पुनस्तुष्टाव तामहम् ।
पञ्चकोटिदिव्यवर्षं मामुवाच ततस्तु सा ॥ ६७ ॥
आगमे संस्तुता तेऽहं तुष्टातेऽस्मि सदाशिव ।
किं प्राथ्यते महादेव ददामि नात्र संशयः ॥ ६८ ॥

मैं यह आज्ञा मस्तकपर धारण करके फिर उनकी स्तुति करने लगा-पांच करोड दिव्यवर्षके पीछे मुझसे कहा। मैं तुमसे आगमद्वारा स्तुतिको प्राप्त हुई हूं, हे सदाशिव ! तुम क्या प्रार्थना करते हो, मैं तुमको वही दूंगी, इसमें सन्देह नहीं ॥ ६७ ॥ ६८ ॥

ईश्वर उवाच ।

तिष्ठामि सततं मातस्त्वदीये चरणाम्बुजे ॥ ६९ ॥

ईश्वरने कहा–हे माता ! मैं तुम्हारे चरणकमलोंमें सदा स्थितरहूं यही मेरी वासना है ॥ ६९ ॥

श्रीकाल्युवाच ।

घोरनाम्ना दानवेन यादृग्युद्धं कृतं मया ।
तत्कोटिकोट्यंशयुद्धं करिष्यत्येव यो मया ॥ ७० ॥
महिषीगर्भसंभूतस्तव रेतःसमुद्भवः ।
भविष्यति स देवेश महिषासुरनामधृक् ।
आसुरं भावमासाद्य महायुद्धं करिष्यसि ॥ ७१ ॥

श्रीमहाकालीने कहा—मैंने घोर नामक दानवके संग जिस प्रकार युद्ध किया है, तुम्हारे शुक्रसंभूत, महिषीके गर्भसे उत्पन्न जो असुर इस युद्धका करोड करोड अंश युद्ध करेगा, महिषासुरनामधारी वही असुर होगा ॥ ७० ॥ ७१ ॥

तदा तं नाशयित्वाहं भद्रकालीस्वरूपतः ।
वामाङ्गुष्ठं पदाब्जस्य स्थापयिष्यामि ते हृदि ॥७२॥

तब मैं उसको भद्रकालीरूपसे मारकर चरणकमलका बांया अँगूठा तुम्हारे हृदयपर रक्खूंगी ॥ ७२ ॥

इदानीं च महादेव मम पादतले सदा ।
तिष्ठ त्वं शवरूपेण मम ह्यासनतां व्रज ॥ ७३ ॥

हे महादेव ! अब तुम शवरूपसे मेरे आसनस्वरूप होओ और मेरे चरणोंके नीचे स्थित रहो ॥ ७३ ॥

इत्याज्ञप्तो महादेव्या पतितः पदसान्निधौ ।
दण्डवत्प्रणिपातेन लक्षवर्षं गतस्तदा ॥ ७४ ॥

देवीकी इस प्रकार आज्ञा पाकर मैं देवीके पदतलमें पडा रहा । दण्डवत् प्रणाममें लाख वर्ष बीत गये ॥ ७४ ॥

तत्रैवान्तरगात्काली चिद्रूपा ब्रह्मनिष्कला ।

इत्येवं कथितं तुभ्यं योगिन्युत्पत्तिविस्तरम् ।
गोपनीयं प्रयत्नेन सर्वेषां साधनोत्तमम् ॥ ७९ ॥

तदनन्तर चित्स्वरूपा ब्रह्मविग्रहा काली उसी स्थानमें अन्तर्धान होगई । हे देवि ! यह मैंने तुमसे योगिनीकी उत्पत्तिका वृत्तान्त विस्तार-सहित कहा । सर्व प्रयत्नसे इसको सदा गुप्त रखना चाहिये ॥ ७९ ॥

इति श्रीयोगिनीतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे देवीश्वरसम्वादे चतुर्विंशतिसाहस्रे भाषाटीकायां नवमः पटलः ॥ ९ ॥

ईश्वर उवाच ।

उत्थाय च पुनर्देवी न सा दृष्टा मया पुनः ।
कथयन्भृशदुःखार्त्तो निमग्नः शोकसागरे ॥ १ ॥

ईश्वर बोले—हे देवि ! हमने उठकर फिर उन महाकालीको नहीं देखा तब शोकसागरमें निमग्न होगये ॥ १ ॥

हा मातस्ते मुखाम्भोजं कोटिचन्द्रार्कन्यक्कृतम् ।
कीदृक् चरणराजौ ते कृपासागरसम्भवम् ॥ २ ॥
विस्तृतं परमं रूपं महामायाविमोहनम् ।
किम्भूतं नखचन्द्राणां ज्योतिः परममंगलम् ॥ ३ ॥
कोटिकोटिनिशानाथविगलन्मुखमण्डलम् ।
किम्भूतं किं भवेन्मातः क्व यातमिदमद्भुतम् ॥ ४ ॥
हा हा मातरिदं रूपं सच्चिदानन्दमव्ययम् ।
अस्माकं मातृभावेन न पश्यामः पुनश्च ताम् ॥ ५ ॥

(और अत्यन्त दुःखार्त्त होकर उनसे कहने लगे) हा मातः ! आपका मुखकमल करोड करोड चंद्रमाका तिरस्कार करता है, तुम्हारे चरण करुणाके सागर और विस्तारित हैं. महामायाकेभी विमोहन और

परमरूपसम्पन्न हैं, आपके नखचन्द्रका मंगलकर ज्योतिः अनिर्वचनीय है, हे मातः ! क्या हुआ ? क्या होगा ? वह अद्भुतरूप कहां गया ? हा हा मातः ! तुम्हारा वह रूप सच्चिदानन्द और अव्यय है, हम मातृभावसे अब उसको नहीं देखते ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥

मातृतातविहीनाश्च भ्रमन्ति बालका यथा ।
रुदित्वा च रुदित्वा च वयं सर्वे तथाह्वयन् ॥ ६ ॥
इत्यादिविविधैर्देवि विलापैः परमेश्वरि ।
नीता वयं पञ्चलक्षं वर्षाणामम्बुजेक्षणे ॥ ७ ॥
रुदित्वा पुनरुत्थाय रुदन्तो भृशमुच्चकैः ।
मातर्माता क्व याता त्वमस्माकं किं भविष्यति ॥८॥

पितामाता हीन बालक जिस प्रकार रोते फिरते हैं, हमारी भी वही अवस्था हुई है, हे परमेश्वरि ! हे देवी ! हे कमलेक्षणे ! इस प्रकार अनेक विलापोंमें हमारे पांच लाख वर्ष बीतगये । एक बार रोतेहुए गिरें और फिर उठकर हे मातः ! तुम कहां गई ? हमारी क्या दशा होगी ? इस प्रकार चिल्लाकर रोने लगे ॥ ६-८ ॥

वयन्ते कथमुत्पाद्य निक्षिप्ता दुस्तरार्णवे ।
दया नास्ति ह्यहो मातर्वयन्ते दीनबालकाः ॥ ९ ॥
न पालयसि चेदस्मान्कोवास्मान्पालयिष्यति ।
त्वां विना जननी नास्ति नास्माकं तात एव च ॥ १० ॥
त्वामदृष्ट्वा मरिष्यामः सत्यमेव सुनिश्चितम् ।
मातृतातविहीनस्य बालकस्य च जीवनम् ॥ ११ ॥
कथं भवति हे मातर्ज्ञायतां स्वयमेव हि ।
निरुत्सुका ह्यदस्माकं कृपा तस्यास्तदा भवेत् ।
सोवाच योगिनी वाणीं महामृतप्रवर्षिणीम् ॥ १२ ॥

आपने हमको उत्पन्न करके दुस्तर दुःखसागरमें क्यों फेंक दिया? अहो मातः! हम तुम्हारे दीन बालक हैं, तुमको क्या कुछभी दया नहीं है यदि आप हमारा पालन नहीं करेंगीं, तो हमारा प्रतिपालन और कौन करेगा? तुम्हारे अतिरिक्त हमारे माता पिता कोई नहीं है, तुमको न देखनेसे हम सत्यही मरजाँयगे। इसमें सन्देह नहीं। हे मातः! आप स्वयं ही विचार करके देखिये कि, मातापिताहीन बालकका जीवन किस प्रकार हो सकता है? हमारा हृदय इस प्रकारसे शोकसंतप्त और निरुत्सुक देखकर वह योगिनी (महाकाली) महामृतवर्षिणी वाणी कहने लगे ॥ ९-१२ ॥

श्रीकाल्युवाच ।

मा भयार्त्ता महेशानब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ।
तिष्ठामि सततं देवा नित्याहमहमव्यया ॥ १३ ॥

श्रीकालीने कहा—हे ब्रह्मन्! हे विष्णो! हे महेश्वर! तुम भयसे दुःखी मत होओ। मैं सदा ही स्थित रहती हूं। मैं नित्या और अव्यया हूं ॥ १३ ॥

सच्चिदानन्दरूपाहं ब्रह्मैवाहं स्फुरत्प्रभम् ।
मम नाशो नास्ति कदा निःसन्देहास्तु तिष्ठत ॥१४॥

मैंही सच्चिदानन्दरूप और मैंही प्रकाशित कान्तियुक्त ब्रह्म हूं. मेरा नाश कभी नहीं है, मैं सदा स्थित रहती हूं, इसमें सन्देह नहीं ॥१४॥

यद्रूपं दृष्टमस्माकं युष्माभिः परमं मतम् ।
ध्यात्वा यद्रूपममलं जपं कुरुत मे मनुम् ॥ १५ ॥

तुमने मेरा जो परम निर्मल रूप देखा है, उसी रूपका ध्यान करके मेरा मंत्र जपते रहो ॥ १५ ॥

तदेव मंगलं लाभं भविष्यति महाप्रभम् ।
इदानीं ब्रह्मणो देहे विश विष्णो स्थिरो भव ॥ १६ ॥

तो तुमको परम मंगल प्राप्त होगा, अब हे विष्णो ! तुम ब्रह्माजीके देहमें प्रवेश करके स्थिर रहो ॥ १६ ॥

अहो महेश देवेश ब्रह्मदेहे प्रविश्य तु ।
यावत्सृष्टिं कुरुष्वेश चेमां ज्ञानक्रियामयीम् ॥ १७ ॥

अहो महेश देवेश ! तुमभी ब्रह्माजीके शरीरमें प्रवेश करो । जबतक ईश्वर ज्ञान क्रियामयी सृष्टिका आरम्भ न करें, तबतक इनके देहमें वास करो ॥ १७ ॥

ईश्वर उवाच ।

इत्युक्त्वा सा महाकाली ददावस्मासु शाम्भवि ।
इच्छाज्ञानक्रियाशक्तीः सर्वकार्यार्थसाधिनी ॥ १८ ॥

ईश्वरने कहा—हे शाम्भवि ! उन महाकालीने यह कहकर हमको सर्व कार्योंकी साधन करनेवाली इच्छा ज्ञान और क्रियामयी शक्ति दी॥१८॥

इच्छा तु विष्णवे दत्ता क्रियाशक्तिस्तु ब्रह्मणे ॥
मह्यं दत्ता ज्ञानशक्तिः सर्वशक्तिस्वरूपिणी ॥ १९ ॥
तदोवाच महाकाली शृणुध्वं परमेश्वरि ॥
अहं विशामि युष्मासु पूर्णरूपेण शंकरे ॥ २० ॥
अयमेव गुरुर्देवः श्रीशिवः परमेश्वरः ॥
अयं हि वक्ता शास्त्राणां नाप्यन्योऽपि विधिर्हरिः॥२१॥

विष्णुको इच्छा शक्ति ब्रह्माको क्रिया शक्ति, और मुझको ज्ञान शक्ति देकर हे देवी ! उन सर्वशक्तिरूपिणीने हमसे कहा—हे परमेश्वरगण ! मैंने तुम सबहीमें प्रवेश किया है, किन्तु महादेवमें पूर्णरूपसे प्रवेश किया यह शंकरही गुरुदेव श्रीशिव और परमेश्वर हैं । यही सब शास्त्रोंके वक्ता हैं विधाता वा हरि दूसरा कोई नहीं ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥

श्रोत्रियाहं हि युष्माकं सर्वेषां नात्र संशयः ।
मोहयिष्यामि ब्रह्माणं विष्णुं वापि महेश्वरम् ॥ २२ ॥

मैं तुम सबकाही श्रोत्रिया अर्थात् वेदपाठिका हूं इसमें सन्देह नहीं मैं ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वरको मोहित करूंगी ॥ २२ ॥

ईश्वर उवाच ।

इत्युक्त्वा सा महाकाली ह्यस्मासु च विवेश ह ।
अहञ्च माधवे देहे प्रविष्टो ब्रह्मणस्तदा ॥ २३ ॥

ईश्वर बोले—यह कहकर वह महाकाली हममें प्रविष्ट हुई । तब मैंभी माधव और विधाताके देहमें प्रविष्ट हुआ ॥ २३ ॥

ततस्तं मोहयामास ब्रह्माणं ब्रह्मविग्रहम् ।
ततो ब्रह्मा स्वयं ज्ञात्वा स्वयं जुहोति चाव्ययाम् २४॥
स्वयम्भूरिति विख्यातं तदा प्रोक्तो न संशयः ।
किं करोमि क्व गच्छामि इति चिन्तासमाकुलः ॥२५॥
एवमेव विधाता सा व्युषित्वा परिवत्सरम् ।
जलमेव ससर्जादौ व्यापकं परमं महत् ॥ २६ ॥

फिर ब्रह्माजीने ज्ञानको प्राप्त होकर स्वयं अव्यया महाकालीका होम किया, इसी कारण ब्रह्मा ' स्वयम्भू ' नामसे विख्यात हुये हैं, इसमें सन्देह नहीं । फिर ब्रह्माने ' कहां जाऊं ? क्या करूं ? ' इसी चिन्तासे आकुल हो संवत्सर इसी प्रकार वासकर प्रथम सर्वव्यापक परम महत् जलकी सृष्टि करी ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥

गुणाभिमानं तत्तोयं कारणार्णवमुल्बणम् ।
तत्र स्थित्वाहिमरूपमसृजद्वीर्यसञ्चयम् ॥ २७ ॥

वह जल गुणाभिमानसम्पन्न और वह जलही महोद्धत कारणार्णव है उस कारणार्णवमेंही ब्रह्माने हेमरूप वीर्यसंचय सृजन किया ॥ २७ ॥

तद्वीर्यं बुद्बुदं भावदनीकं जातमन्तिके ।
तत्तद्ब्रह्माण्डमाख्यातं प्लवते कारणार्णवे ॥ २८ ॥

वह वीर्य बुद्बुदाकारमें (जलके फेनकी आकृतिमें) उत्पन्न हुआ वही 'ब्रह्माण्ड' नामसे विख्यात होकर कारणार्णवमें प्लवमान (कारण रूप सागरमें तैरनेवाला) हुआ ॥ २८ ॥

तत्तद्ब्रह्माण्डरक्षार्थं ब्राह्मणानां वियोगताम् ।
करोमि सततं देवि रुद्रमूर्तिधरः स्वयम् ॥ २९ ॥

हे देवि ! मैं स्वयं रुद्रमूर्ति धारणपूर्वक ब्रह्माण्डका रक्षण और वियोग कार्य सदा संपादन करता हूं ॥ २९ ॥

शूलपाणिर्महादेवि प्रतिब्रह्माण्डपार्श्वतः ।
एकैकरुद्ररूपेण तिष्ठामि सततं शिवे ॥ ३० ॥

हे शिवे महादेवि ! मैं प्रतिब्रह्माण्डके पार्श्वमें एक एक रुद्रमूर्ति धारणपूर्वक शूलपाणि होकर सदा वास करता हूँ ॥ ३० ॥

यथा ब्रह्माण्डयोश्चापि संयोगो जायते न हि ॥
तथा करोमि सततं स्थित्वा तत्कारणार्णवे ॥ ३१ ॥

और उस कारणार्णवमें अवस्थान करके जिससे दो ब्रह्माण्डोंका संयोग न हो सदा वही करता हूँ ॥ ३१ ॥

एवमेव वयं सर्वे ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ।
प्रतिब्रह्माण्डमध्ये तु प्रातिष्ठन्नात्र संशयः ॥ ३२ ॥
ततो ब्रह्मा जगद्धाता प्रतिब्रह्माण्डमध्यतः ।
प्रविश्यैकैकरूपेण ह्यन्यतत्त्वचतुष्टयम् ॥ ३३ ॥

ब्रह्मा विष्णु और महेश्वर हम सर्व प्रतिब्रह्माण्डमें इसीप्रकार अवस्थान करते हैं इसमें सन्देह नहीं । फिर जगद्धाता ब्रह्माजी प्रतिब्रह्माण्डमें प्रवेशपूर्वक एक एक रूपमें अन्य चार तत्त्व ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

भूमिमग्निं तथा वायुमाकाशञ्च ससर्ज्ज सः ।
एतैस्तु पञ्चभिस्तत्त्वैः सर्व्वां सृष्टिमकारयत् ॥ ३४ ॥
ततस्तु भगवान्विष्णुः स्वेच्छया ब्रह्मणस्तदा ।
ब्रह्मदेहात्समुद्भूय पालयामास त्वां सदा ॥ ३५ ॥

अर्थात् भूमि, अग्नि, वायु और आकाश सृजन करते हैं इन पांच तत्त्व अर्थात् पंच परमाणुद्वारा वह समस्त सृष्टिकार्य सम्पन्न होता है। तदनन्तर भगवान् विष्णु अपनी इच्छासे ब्रह्मदेहसे उत्पन्न होकर उस सृष्टिका सदा पालन करते हैं ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

सृष्टिर्ब्रह्माज्ञया देवि प्रतिब्रह्माण्डमध्यतः ।
पृथक् पृथक् समास्थाय विष्णुरूपं महाभुजम् ॥३६॥
प्रतिब्रह्माण्डमध्ये तु संहरामि पुनः पुनः ।
अहं हि परमेशानि ब्रह्मदेहं समाश्रितः ॥ ३७ ॥

हे देवि ! ब्रह्माकी आज्ञासे सृष्टि हुई । मैं प्रति ब्रह्माण्डमें पृथक् पृथक् महाभुज विष्णुरूपसे अवस्थान करके पालन और रुद्र रूपसे वारम्बार संहार करता हूं । हे परमेशानि ! मैंही ब्रह्मदेहका आश्रय करता हूँ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

एवं किञ्चिन्न स्मरसि त्वं हि किञ्चिन्महेश्वरि ।
सर्वकार्यं ममैवैतज्जानाति हि जगन्निधिः ॥ ३८ ॥

हे महेश्वरि ! क्या तुमको कुछभी स्मरण नहीं है ? हे देवि ! यह सब कार्य मेरेही जानने चाहिये । मुझमेंही जगत् अवस्थित है ॥ ३८ ॥

जलादिसकलं तत्त्वं ब्रह्माण्डादिकविस्तरम् ।
देवादिसकलं देवि दिग् विदिक्च चराचरम् ॥ ३९ ॥
कार्यञ्च कारणं देवि तथा विष्णोः समुद्भवः ।
सर्वं जानाति हि ब्रह्मा मत्कृतं मायया पुनः ॥ ४० ॥

सब जलादि तत्त्व और ब्रह्माण्डादि समस्त विस्तार संपूर्ण देवादि दिशा विदिशा एवं चराचर कार्य और कारण, तथा विष्णुकी उत्पत्ति यह समस्तही ब्रह्माजीको मेरी मायासे अवगत है ॥ ३९ ॥ ४० ॥

किन्तु सर्वं हि मिथ्यैव मातुर्माया हि केवलम् ।
तां मायां हि भजन्ते ये तत्परं यान्ति ते नराः ॥४१॥

किन्तु हे देवि ! यह सभी मिथ्या है । केवल शक्तिमाताकी माया जाने । जो मनुष्य उस मायाको भजता है. वह इस मायाके पार हो सकता है ॥ ४१ ॥

तुष्टा सा परमा माया मुक्तिमात्रं प्रयच्छति ।
रुष्टा सा परमा माया भूमियोगं प्रयच्छति ॥४२॥

यदि परमा माया संतुष्ट हों तो वह निःसन्देह मुक्ति पाता है । यदि वह माया रुष्ट हो तो भूमियोग अर्थात् योनियोग प्रदान करती हैं॥४२॥

तस्याः पादाम्बुजे देवि वश्या मुक्तिः समाश्रिता ।
यस्य तुष्टा महादेवी मम माता महेश्वरी ॥ ४३ ॥
ददौ तस्यै च तां मुक्तिं महामाया च शाङ्करि ॥४४॥

उनके चरणकमलोंमें मुक्ति वश्या रहकर उनको आश्रय कर रही है, वह महामाया मेरी माता महाकाली जिसपर संतुष्ट होती है, उसीको वह मुक्ति देती है ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

श्रीदेव्युवाच ।

श्रुतं हि सकलं देव त्वत्प्रसादान्महेश्वर ।
अश्रुतं परमं तत्त्वं ब्रह्मादीनामगोचरम् ॥ ४५ ॥
इदानीं श्रोतुमिच्छामि यत्प्रोक्तं कारणार्णवम् ।
किमाधारं महादेव तदाधारञ्च किं वद ॥ ४६ ॥
सीमानं वद देवेश यदि स्नेहोऽपि मां प्रति ॥ ४७ ॥

श्रीदेवीने कहा—हे महेश्वर ! मैंने आपके प्रसादसे सबही सुना अब जो ब्रह्मादिककोभी ज्ञात नहीं, वह सब अश्रुत वृत्तान्त सुननेकी इच्छा करती हूं । आपने जिस कारणार्णवकी कथा कही, वह किसके आधारसे विद्यमान है वह आधार और उसकी सीमाका वर्णन कीजिये । हे देव ! यदि मुझपर स्नेह हो तो वह सब कहकर मेरा कौतूहल चरितार्थ कीजिये ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥

ईश्वर उवाच ।

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि गुह्याद्गुह्यतरं शुभम् ।
अतिगोप्यं सुगोप्यं हि ब्रह्मविष्ण्वाद्यगोचरम् ॥४८॥

ईश्वर बोले—हे देवि ! ब्रह्मादिके अगोचर गुह्यसेभी गुह्य अतिगोप्य सुगोप्य शुभकर विषय कहता हूं सुनो ॥ ४८ ॥

महार्णवो भवेद्देवि महाकालो महेश्वरः ॥
शून्यरूपं हि क्रीडार्थं भर्त्तारं पर्य्यकल्पयत् ॥ ४९ ॥
सैव काली जगन्माता महाकालतुला तु सा ॥
भूत्वार्द्धतेजसीरूपा महाकालश्च बिभ्रति ॥ ५० ॥

हे देवि ! महार्णवमें महाकाल महेश्वरका स्वरूप उन जगन्माता कालीने क्रीडाके लिये भर्त्ताकी शून्यरूपमें कल्पना की । उन जगन्माताने ही महाकालकी समान होकर अर्द्धतेजोरूपसे महाकालको धारण किया है ॥ ४९ ॥ ५० ॥

शून्यरूपा कृष्णवर्णा मता स्यादूर्ध्वतेजसी ।
सीमा पृष्टा त्वया देवि सैव ब्रह्मैव केवलम् ॥ ५१ ॥

वही शून्यरूपा, कृष्णवर्ण और ऊर्ध्वतेजसी कही है । हे देवि ! तुम सीमा पूछती हो सीमा केवल ब्रह्मकोही जानो ॥ ५१ ॥

तेजोरूपं ब्रह्मतेजः प्रकाशरूपकन्तथा ।
तत्प्रकाशं महादेवि व्याप्यव्यापकवर्जितम् ॥ ५२ ॥

तेजोरूप, ब्रह्मतेज और प्रकाशस्वरूप वह प्रकाश व्यापक तथा अव्यापकवर्जित है ॥ ५२ ॥

नाधेयश्चैव नाधारमद्वितीयं निरन्तरम् ।
इदं हि सकलं देवि सर्वं मायामयं पुनः ॥ ५३ ॥

उस प्रकाशका आधेय और आधार नहीं है, वह निरन्तर अद्वितीय है, हे देवि ! यह सभी मायामय है ॥ ५३ ॥

मिथ्यैव सकलं देवि सत्यं ब्रह्मैव केवलम् ।
इदं हि कथितं तुभ्यं सारात्सारं परात्परम् ॥ ५४ ॥
गुह्याद्गुह्यतरं गुह्यं गुह्याद्गुह्यं महेश्वरि ।
इदं हि परमं ज्ञानं सर्वमायानिकृन्तनम् ॥ ५५ ॥

हे देवि ! सभी मिथ्या है, केवल ब्रह्म ही सत्य है हे महेश्वरि ! यह मैंने तुमसे सारसे भी सार, परसे भी पर, गुह्यसेभी गुह्यतर सर्व मायानिकृन्तन परम ज्ञानका विषय कहा ॥ ५४ ॥ ५५ ॥

सर्वज्ञानमयं भेदं महामार्त्तण्डविग्रहः ।
कोटिकोटिमहादानात्कोटिकोटिमहातपात् ॥ ५६ ॥
कोटिकोटिमहाज्ञानात्कोटिकोटिमहाव्रतात् ।
कोटिकोटिमहातीर्थादवगाहेन चेश्वरि ॥ ५७ ॥
बहुजन्मव्यतीते तु शृणोति यदि कर्हिचित् ।
तदा मुक्तो भवेद्देवि संसारे न पुनर्भवेत् ॥ ५८ ॥

महामार्तण्डविग्रह सब ज्ञानमय भेदमात्र अर्थात् देदीप्यमान सूर्यकी समान और ज्ञानद्वारा जिसका भेद प्रतीत हो हे महेश्वरि ! करोड करोड महादानसे करोड करोड महातपसे, करोड करोड महाज्ञानसे करोड करोड महाव्रतसे करोड करोड महातीर्थावगाहनसेभी इस

ज्ञानको उत्तम जानना चाहिये । बहुत जन्म बीतनेपर यदि कोई सुने, तो वह मुक्त होता है उसको फिर संसारमें जन्म लेना नहीं होता ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ ५८ ॥

इत्येवं कथितं तुभ्यं गोपयस्व स्वयोनिवत् ।
यथान्यो लभते नैव तथा कुरु प्रयत्नतः ॥ ५९ ॥

यह मैंने तुमसे सब वर्णन किया । इसको अपनी योनिकी समान गुप्त रक्खे । जिससे इसको कोई दूसरा न ले सके, अत्यन्त यत्नपूर्वक वही करै ॥ ५९ ॥

गोपनीयं गोपनीयं गोपनीयं प्रयत्नतः ।
गोपनीय प्रयत्नेन मम सर्वस्वमुत्तमम् ॥ ६० ॥

इसको यत्नपूर्वक गोपनीय, गोपनीय गोपनीय जानना । मेरा यह उत्तम सर्वस्वधन गोपनीय है ॥ ६० ॥

दद्याच्छान्ताय धीराय योगिने कुलयोगिने ।
ज्ञानिने देवदेवेशि अन्यथा नरकं व्रजेत् ॥ ६१ ॥

शान्त, धीर, योगी, कुलयोगी, ज्ञानि, इन सब मनुष्योंको देना चाहिये । इसके अन्यथा होनेसे नरकमें जाता है ॥ ६१ ॥

कथितं सारभूतं ते खेलत्खञ्जनलोचने ।
ब्रह्मज्ञानं मया देवि किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ ६२ ॥

हे खेलतखंजनलोचने ! हे महादेवि ! हे देवदेवेशि ! मैंने सारभूत ब्रह्मज्ञान तुमसे कहा । अब अधिक और क्या सुनना चाहती हो?॥ ६२॥

नातः परतरं किञ्चिद्विद्यते मम मानसे ।
गोपनीयं सदा भद्रे पशुपामरसन्निधौ ॥ ६३ ॥

इसकी अपेक्षा उत्कृष्टतर अन्य कुछभी मेरे हृदयमें नहीं है, इसको पशु और पामरसे छिपावे ॥ ६३ ॥

इति श्रीयोगिनीतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे देवीश्वरसम्वादे चतुर्विंशतिसाहस्रे भाषाटीकायां दशमः पटलः ॥ १० ॥

श्रीदेव्युवाच ।

देवदानवगन्धर्वसुरेशपरिपूजित ॥
गणेशनंदिचन्द्रेशगोविन्दविधिवन्दित ॥ १ ॥

श्रीदेवीने कहा–हे देवदानवगधर्वसुरेशपूजित ! हे गणेशनन्दिचन्द्रेश गोविन्दविधिवन्दित ! ॥ १ ॥

योगीन्द्रवन्दितपद सर्वलोकगुरो हर ।
या प्रोक्ता परमा विद्या काली कलुषनाशिनी ॥ २ ॥
यद्यन्मन्त्रं साधनं च पूजनं च पुरस्क्रियाम् ।
मुद्रां बलिं तथा होमं भावं स्थानं तथैव च ॥ ३ ॥
ध्यानं स्तोत्रं च कवचं श्रुतमस्याः पुरा मया ।
इदानीं श्रोतुमिच्छामि स्थानभेदं महेश्वर ॥ ४ ॥

हे योगीन्द्रवन्दितपद, सर्वलोकगुरो, परमेश्वर, शंकर, हर ! आपने जो कलुषनाशिनी परमा कालीविद्या और जो जो मंत्रसाधन पूजन, पुरस्क्रिया, मुद्रा, बलि, होम और भाव एवं स्थान ध्यान स्तोत्र और कवच इत्यादि कहा, वह मैंने सब सुना । अब हे महेश्वर ! मैं स्थानभेद सुननेकी इच्छा करती हूं ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥

कुत्र वा प्राप्यते मोक्षः कुत्र वा सिद्धिरुत्तमा ।
झटित्येवं महादेव कृपया वद शङ्कर ॥ ५ ॥

कहां मुक्ति प्राप्त हो जाती है, कहां तत्काल उत्तमा सिद्धि लाभ होती है. हे महादेव शंकर ! यह आप कृपा पूर्वक कहिये ॥ ५ ॥

यदाश्रितो द्रुतं लोकः स्वकार्यफलभाग्भवेत् ।
प्रयासस्य च बाहुल्यं हित्वा हि परमेश्वर ॥ ६ ॥

हे परमेश्वर ! मनुष्य अत्यन्त परिश्रमके विनाही जिसका आश्रय करके शीघ्र स्वकार्यका फल भोगें, वह वर्णन कीजिये ॥ ६ ॥

ईश्वर उवाच ।

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि स्थानं परमदुर्लभम् ।
द्रुतसिद्धिकरं देवि महामोक्षफलप्रदम् ॥७॥

ईश्वरने कहा—हे देवि ! शीघ्रसिद्धिकर, महामोक्षफलप्रद, परम दुर्लभ स्थानका वर्णन करता हूं सुनो ॥ ७ ॥

कालिकायाः श्मशानाद्धि नान्यत्स्थानं प्रशस्यते ।
तत्र यद्यत्कृतं कर्म तदनन्तफलं लभेत् ॥ ८ ॥

कालिकाका श्मशानसे श्रेष्ठ दूसरा कोई स्थान नहीं है, वहां जो जो कर्म किया जाता है वह अनन्त फल देनेवाला होता है ॥ ८ ॥

तत्र चैका पुरश्चर्य्या कृता चेत्परमेश्वरि ।
न तु मैवं महादेवि भावयुक्तः सशक्तिकः ॥ ९ ॥
अवश्यं मन्त्रसिद्धिः स्यान्नात्र चित्रं कथंचन ।
अनन्तफलदा पूजा सर्वत्रैव जले स्थले ॥ १० ॥

हे परमेश्वरि ! हे महादेवि ! वहां भावयुक्त और भक्तियुक्त होकर पुरश्चरण करने पर उसकी समान अन्य कार्य नहीं हैं उसके द्वारा अवश्यही मंत्रसिद्धि होती है, इसमें कुछ संदेह नहीं । जलमें वा स्थलमें सर्वत्रही ॥ ९ ॥ १० ॥

दिव्यभावेन वा देवि वीरभावेन चेद्भवेत् ।
शाक्तं वा वैष्णवं वापि शैवं वान्यं तथा पुनः ॥११॥
वाराणस्यां जपेद्यावन्मासमात्रं वरानने ।
प्रातः कालं समारभ्य यावन्मध्यन्दिनं भवेत् ॥ १२ ॥
अवश्यं मन्त्रसिद्धिः स्यात्सत्यमेव सुसिद्धिदे ।
निर्वाणं तस्य देवेशि त्ववश्यं जायते शिवे ॥ १३ ॥

दिव्यभाव वा वीरभावसे पूजा करनेपर वह अनन्त फलप्रदान करती है । हे सुसिद्धिप्रदे शंकरि ! शाक्त हो वा वैष्णव मंत्र हो, वाराणसीमें प्रातः समयसे आरंभ करके मध्य दिनपर्यंत केवल एक महीने जप करनेपर अवश्यही मंत्रसिद्धि होती है यह निःसन्देह सत्य जानना । हे देवेशि शिवे ! उसको अवश्यही निर्वाणमुक्ति होती है ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥

महाश्मशानं देवेशि आनन्दकाननं तथा ।
अविमुक्तं महादेवि तथा गौरीमुखं पुनः ॥ १४ ॥

हे अमरेश्वरि ! महादेवी ! महाश्मशान, आनंदकानन, अविमुक्त और गौरीकानन ॥ १४ ॥

वाराणसी महाक्षेत्रं कालीरूपं परात्परम् ।
तत्र यद्यत्कृतं देवि किं तस्य कथयामि ते ॥ १५ ॥

तथा वाराणसी, यह परात्पर कालीरूप महाक्षेत्र है. वहां जो जो कर्म किया जाता है उसका फल प्रकाश करनेकी मुझमें सामर्थ्य नहीं है ॥ १५ ॥

कामरूपे महापूजा सर्वसिद्धिफलप्रदा ।
नेपालस्य कांचनाद्रिं ब्रह्मपुत्रस्य सङ्गमम् ॥ १६ ॥

कामरूपमें महापूजा करनेसे सर्वप्रकारकी सिद्धि और सर्व फल प्राप्त होता है । नेपालका कांचनगिरि, ब्रह्मपुत्र संगम ॥ १६ ॥

करतोयां समाश्रित्य यावद्दिक्करवासिनी ।
उत्तरस्यां कञ्जगिरिः करतोयास्तु पश्चिमे ॥ १७ ॥

करतोयासे दिक्करवासिनीपर्यन्त और उत्तरमें कञ्जगिरि और तीर्थश्रेष्ठ करतोयाके पश्चिममें ॥ १७ ॥

तीर्थश्रेष्ठा दिक्षु नदी पूर्वस्यां गिरिकन्यके ।
दक्षिणे ब्रह्मपुत्रस्य लाक्षायाः सङ्गमावधि ।
कामरूप इति ख्यातः सर्वशास्त्रेषु निश्चितः ॥ १८ ॥

इक्षुनदीपर्यन्त, पूर्वदिशामें गिरिकन्यकापर्यन्त और दक्षिणमें ब्रह्मपुत्र और लाक्षा नदीके संगमपर्यन्त स्थान कामरूपके नामसे सब शास्त्रोंमें निश्चित है ॥ १८ ॥

ऋणानि त्रीण्यपाकर्तुं यस्य चित्तं प्रसीदति ।
स गच्छेत्परया भक्त्या कामाख्यायोनिसन्निधिम् १९॥

पितृऋण, ऋषिऋण और देवऋण यह तीनों ऋण चुकानेमें जिसका मन प्रसन्न होता है, वह परम भक्तिसहित कामाख्याकी योनिके समीप गमन करेगा ॥ १९ ॥

तीर्थयात्रां समासाद्य यदेकोऽप्यत्र गच्छति ॥
पदे पदेऽश्वमेधस्य फलं प्राप्नोति मानवः ॥ २० ॥

तीर्थयात्रा अवलम्बन करके जो कोई मनुष्य इस तीर्थमें गमन करता है, पद पदमें उसको अश्वमेधका फल प्राप्त होता है ॥ २० ॥

त्रिंशद्योजनविस्तीर्णं दीर्घेण शतयोजनम् ॥
कामरूपं विजानीहि त्रिकोणाकारमुत्तमम् ॥ २१ ॥

हे देवि ! इस उत्तम कामरूपको त्रिकोणाकार दैर्घ्यमें सौ योजन और विस्तारमें तीस योजन जाने ॥ २१ ॥

ईशाने चैव केदारो वायव्यां गजशासनः ।
दक्षिणे सङ्गमे देवि लाक्षाया ब्रह्मरेतसः ॥ २२ ॥

ईशानमें केदार, वायुकोणमें गजशासन और दक्षिणमें ब्रह्मरेतः अर्थात् ब्रह्मपुत्रकी लाक्षा नदीका संगम है ॥ २२ ॥

त्रिकोणमेवं जानीहि सुरासुरनमस्कृतम् ।
तत्र ये मानवाः सन्ति ते देवा नात्र संशयः ॥ २३ ॥

कामरूपको इस प्रकार त्रिकोण जानना चाहिये, यह स्थान सुरासुर सभीका नमस्कृत है, वहां जो मनुष्य हैं वह देवता हैं इसमें सन्देह नहीं ॥ २३ ॥

तत्र यद्यज्जलं देवि तत्सर्वं तीर्थमेव हि ।
उपवीथिश्च वीथिश्च उपपीठं च पीठकम् ॥ २४ ॥

वहां जो जो जल है, वह सभी तीर्थ है, हे महादेवि ! वहां उपवीथि, वीथि, उपपठि, पीठ ॥ २४ ॥

सिद्धपीठं महापठिं ब्रह्मपीठं तदन्तरम् ।
विष्णुपीठं महादेवि रुद्रपीठं तदन्तरम् ॥ २५ ॥
नवयोनिरिति ख्याता चतुर्दिक्षु समन्ततः ।
तत्र तत्र महापूजोत्तरोत्तरफलाधिका ॥ २६ ॥

सिद्धपीठ, महापीठ, ब्रह्मपीठ विष्णुपीठ, और रुद्रपीठ, यह नव पीठ नव योनि कहकर विख्यात है और इसके चारों ओर अवस्थित हैं । हे महादेवि ! वह वह महापूजा उत्तरोत्तर सब स्थानोंमें अधिक अधिक फल देती है ॥ २५ ॥ २६ ॥

द्विगुणं द्विगुणं भद्रे फलमेवं सुनिश्चितम् ।
सर्वासाञ्चैव विद्यानां सर्वमन्त्रस्य शाम्भवि ॥ २७ ॥
पूजने जपने चैव द्विगुणं द्विगुणं फलम् ।
नवयोनिः समाख्याता कामाख्यायोनिमण्डलम् ॥ २८ ॥

इन सबमें क्रमानुसार दूना दूना फल अवधारित (निश्चयकियाहुआ) है । वहां सर्वविध विद्या और सर्वविध मंत्रकी पूजा एवं जप करनेसे

दूना दूना फल प्राप्त होता है । हे भद्रे ! हे शाम्भवि ! कामाख्या योनिमण्डल नवयोनिद्वारा विख्यात होताहै ॥ २७ ॥ २८ ॥

आयोनिर्मह्दिपर्यन्तं या विद्यागन्धमादनम् ।
पञ्चक्रोशामिदं देवि सर्वेषामेव दुर्लभम् ॥ २९ ॥

योनिसे मह्दिपर्यन्त और विद्यासे गन्धमादनपर्यन्त यह पांच कोश स्थान सबकोही दुर्लभ है ॥ २९ ॥

ब्रह्मविष्णुसुरेशाद्यैः सेवितं परमाद्भुतम् ।
देवा मरणमिच्छन्ति का कथा मानुषेषु च ॥ ३० ॥

परम अद्भुत और ब्रह्मा, विष्णु सुरेश्वरादिसे सेवित है, मनुष्योंकी बात तो क्या कहूं देवताभी उस स्थानमें मरनेकी इच्छा करतेहैं ॥३०॥

योनिपीठे महेशानि पञ्चक्रोशमिते शिवे ।
ये गच्छन्ति शिवाकारा ये मृतास्तेऽपुनर्भवाः ॥३१॥

हे महेशानि ! पांचकोशपरिमित योनिपीठमें जो मनुष्य गमन करता है, वह शिवतुल्य होताहै और मरनेके पीछे फिर जन्म लेना नहीं पडता ॥ ३१ ॥

ते च सूर्य्याकरं क्लेशं न प्राप्नुवन्ति कर्हिचित् ।
योनिपीठे च निष्पापा ये वसन्ति नरोत्तमाः ।
ते सर्वे शङ्करा जातास्त्रिनेत्राश्चन्द्रमूर्द्धजाः ॥ ३२ ॥

वेह मनुष्य किंचित् मात्र भी सूर्यात्मज शनिके क्लेशको प्राप्त नहीं होता । जो नरोत्तम योनिपीठमें वास करते हैं, वह चन्द्रशेखर और त्रिनेत्र शंकरतुल्य होते हैं ।

सर्वासाञ्चैव विद्यानां सर्वमंत्रस्य चेश्वरि ।
पूजनं जपनञ्चैव कुरुते साधकोत्तमः ।
अणिमाद्यष्टसिद्धीनामाश्रयो जायते नरः ॥ ३३ ॥

हे ईश्वरि ! साधकोत्तमगण सर्वविध विद्या एवं सर्वविध मंत्रकी पूजा और जप करते हैं । मनुष्यगण इस स्थानमें अणिमादिक आठ प्रकारकी सिद्धि प्राप्त करते हैं ॥ ३३ ॥

तन्मध्ये च महादेवि गिरिर्नीलाभिधोज्ज्वलः ।
ब्रह्मविष्णुशिवाकारः सर्वशक्तिमयः पुनः ॥ ३४ ॥

हे महादेवि ! उस योनिपीठमें ब्रह्मा विष्णु शिवाकार सर्वशक्तिमय नीलनाम उज्ज्वलगिरि विद्यमान है ॥ ३४ ॥

तन्मध्ये परमेशानि मनोभवगुहा परा ।
मनोभवगुहामध्ये रक्तपानीयरूपिणी ॥ ३५ ॥

हे परमेशानि ! तिसमें परमोत्तम मनोभवगुहा है मनोभवगुहामें रक्तपानीयरूपिणी ॥ ३५ ॥

कोटिलिङ्गसमाकीर्णा कामाख्या कल्पवल्लरी ।
तत्तेजसा तु संदीप्ता मनोभवगुहा सदा ॥ ३६ ॥

कोटिलिंग समाकीर्ण कामाख्या नामक कल्पलता विद्यमान है, यह मनोभवगुहा उसके तेजसे सदा दीप्तिमान् रहती है ॥ ३६ ॥

अस्याः स्पर्शनमात्रेण लोहो याति सुवर्णताम् ।
चतुर्हस्तप्रमाणानि समन्तात्पर्वतात्मजे ॥ ३७ ॥
अस्याः स्पर्शनमात्रेण शिवत्वमेति मानवः ।
निष्पापो जायते देवि तत्क्षणान्नात्र संशयः ॥ ३८ ॥

उसके स्पर्शमात्रसेही लोहा सुवर्ण होता है. हे पर्वतात्मजे ! वह चारोंओरमें चार हाथ परिमित होगा । उसके स्पर्श मात्रसेही मनुष्य शिवत्वको प्राप्त होता है और तत्काल निष्पाप होता है इसमें सन्देह नहीं ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

अत्र यद्यत्कृतं कर्म तदनन्तफल लभेत् ॥ ३९ ॥

इसमें जो जो कर्म किये जाते हैं, वह सभी अनन्तफलदायक होते हैं ॥ ३९ ॥

तन्मध्ये परमेशानि समन्ताद्वादशांगुलम् ।
आपातालाद्ध्रदं देवि प्रोच्छलज्जलमण्डलम् ॥ ४० ॥

हे परमेशानि देवि ! उसमें चारोंओर द्वादशांगुलपरिमित पाताल पर्यन्त विस्तृत प्रोच्छालित (उमडतेहुए) जल मण्डल ह्रद (तालाव) विद्यमान है ॥ ४० ॥

तज्जलं परमेशानि ब्रह्मविष्णुशिवात्मकम् ।
ईश्वरं तज्जलं देवि कारणार्णवसंज्ञकम् ॥ ४१ ॥

हे परमेशानि ! वह जल ब्रह्म, विष्णु, शिवात्मक है । हे देवि ! वह जल ऐश्वरीय और कारणार्णवके नामसे विख्यात है ॥ ४१ ॥

बहु किं कथ्यते देवि तज्जलं परमामृतम् ।
शङ्कितेनैव कथितं मातर्जानीहि सुन्दरि ॥ ४२ ॥

हे देवि ! बहुत कहनेसे क्या है, वही जल परमामृत है । हे सुन्दरि ! मैंने यह शंकित होकरही कहा है तुम जानो ॥ ४२ ॥

कांक्षंति सततं देवि तज्जलं सचराचरम् ।
तज्जलस्पर्शमात्रेण तद्ध्रदस्पर्शनेन च ॥ ४३ ॥
तत्क्षणान्मानवो देवि देवो भवति निश्चितम् ।
पुण्यपापविनिर्मुक्तो जीवन्मुक्तो भवेद्ध्रुवम् ॥ ४४ ॥

सचराचर अखिल ब्रह्माण्डमण्डल उस जलकी आकांक्षा करता है, उस जल और उस ह्रदके स्पर्श करतेही मनुष्य देवता होता है और पाप पुण्यसे छूटकर जीवन्मुक्त होता है, इसमें सन्देह नहीं ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

तद्ध्रदे पूजयेद्यो हि तज्जलेन महेश्वरि ।

जिह्वाकोटिसहस्रैस्तु वक्त्रकोटिशतैरपि ॥ ४५ ॥
वर्णितुं नैव शक्नोमि तत्फलं गिरिनन्दिनि ।
ह्रदे हस्तं विनिक्षिप्य जलमध्ये महेश्वरि ॥ ४६ ॥
अष्टोत्तरशतजपान्महासिद्धीश्वरो भुवि ।
मन्त्रसिद्धिर्भवेत्तस्य तत्क्षणान्नात्र संशयः ॥ ४७ ॥

हे पर्वतनन्दिनी! जो मनुष्य उस ह्रदकी उसीके जलसे पूजा करता है, उसका जितना फल है. वह मैं करोड हजार जीभ और सौ करोड मुख प्राप्त होनेपरभी वर्णन करनेमें समर्थ नहीं होसकता। हे महेश्वरि! उस ह्रदके जलमें हाथ डालकर एकसौ आठवार जप करनेपर वह मनुष्य पृथ्वीतलमें महासिद्धीश्वर होता है और तत्काल उसके मंत्रकी सिद्धि होती है, इसमें सन्देह नहीं ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥

शैवो वा वैष्णवो वापि शाक्तो नान्यो महेश्वरि ।
जप्यते यैस्तु मन्त्रो हि तत्क्षणं सिद्धिमृच्छति ।
अष्टोत्तरशतेनापि नात्र कार्या विचारणा ॥ ४८ ॥

हे देवेशि! शाक्त वैष्णव वा शैवही क्यों न हो. अथवा अन्य जो कोई हो, वहां जो एक सौ आठवार मंत्र जपता है, तो तत्काल उसकी मंत्रसिद्धि होती है इसमें सन्देह नहीं ॥ ४८ ॥

कुशाग्रोत्थितं तद्देवि पितृभ्यो यः प्रयच्छति ।
गयाश्राद्धं कृतं तेन नियुताब्दं महेश्वरि ॥ ४९ ॥

जो मनुष्य वहां कुशाग्रद्वारा वह जल पितरोंको प्रदान करता है उसके द्वाराही उसको नियुताब्दव्यापी अर्थात् लक्ष वर्ष पर्यन्त गया-श्राद्ध करनेका फल होता है ॥ ४९ ॥

एतत्ते कथितं देवि कामाख्यायोनिमण्डलम् ।
संक्षेपेण महेशानि वक्ष्याम्येवं विशेषतः ॥ ५० ॥

हे देवि! यह मैंने तुमसे कामाख्या योनिमण्डल कहा । हे महेशानि! अब संक्षेपसे उसका माहात्म्य कहता हूं ॥ ५० ॥

किन्त्वस्य कथ्यते देवि माहात्म्यं च यशस्विनि ।
तत्रः कोटियोगिनीभिः काली वसति तारिणी ॥५१॥

हे परमैश्वर्यसम्पन्न देवी! अब हम उसके माहात्म्यका वर्णन करते हैं, तुम श्रवण करो । वहां करोड करोड योगिनियोंके सहित जगत्तारिणी कालिका वास करती है ॥ ५१ ॥

छिन्नमस्ता भैरवी सा सप्त सप्त विभेदिता ।
धूमा च भुवनेशानी मातङ्गी कमलालया ॥ ५२ ॥
भगाक्लिन्ना भगधारा तथा चैव भगन्दरी ।
दुर्गा च जयदुर्गा च तथा महिषमर्दिनी ॥ ५३ ॥

सप्त सप्त विभेदमें छिन्नमस्ता, भैरवी, धूमावती, भुवनेश्वरी, मातंगी कमलालया, भगाक्लिन्ना, भगधारा, भगन्दरी दुर्गा जयदुर्गा महिषमर्दिनी ॥ ५२ ॥ ५३ ॥

उपविद्याश्च याः प्रोक्ताः सर्वाभिस्ताभिरेव च ।
ब्रह्मविष्णुमहेशाद्यौ महाकाली वसेत्सदा ॥ ५४ ॥

और जो सब उपविद्या हैं, उन सबके सहित एवं ब्रह्मा, विष्णु और महेशादि देवताओंके सहित महाकाली निरंतर वहाँ वास करती है ॥ ५४ ॥

ब्रह्ममुखाश्रयं पीठमुग्रताराधिदैवतम् ।
तत्पीठं द्विविधं प्रोक्तं गुप्तं व्यक्तं महेश्वरि ॥ ५५ ॥

हे देवी! उग्रतारा जिसकी अधिदेवता है, वहाँ ब्रह्ममुखाश्रयपीठ विद्यमान है वह पीठ दो प्रकार कहा गया है गुप्त और व्यक्त ॥ ५५ ॥

व्यक्ताद्गुप्तं पुण्यतरं दुरापं साधकोत्तमैः ।
सर्वत्र लभ्यते देवि कुलद्वयविशारदैः ॥ ५६ ॥

व्यक्तकी अपेक्षा गुप्तपीठ साधकको अधिकतर पुण्य प्रदान करती है यह गुप्तपीठ दुर्लभ है किन्तु दोनों कुलविशारद अर्थात् दिव्यावीर-भावापन्न मनुष्यगण सर्वत्रही उसको लाभ कर सकते हैं ॥ ५६ ॥

मनोभवगुहावह्नौ देवीशिखरमुन्नतम् ।
तन्महोग्रमिति ख्यातं पीठं परमदुर्लभम् ॥ ५७ ॥

मनोभवगुहाकी अग्निमें देवीका शिखर उन्नत (ऊंचा) रहता है वह पीठ महोग्रनामसे विख्यात और परमदुर्लभ है ॥ ५७ ॥

सिद्धिकाली ब्रह्मरूपा देवता भुवनेश्वरी ।
निवसेत्तत्र या काली घोरदैत्यविनाशिनी ॥ ५८ ॥

उस पीठमें घोरदैत्य विनाशिनी, ब्रह्मरूपा भुवनेश्वरी देवता सिद्धिकाली वास करती है ॥ ५८ ॥

तत्पीठोपरि संविश्य दशधा च जपेन्मनुम् ।
तदा मन्त्रविशुद्धिः स्यात्तद्देहेन शिवो भवेत् ॥ ५९ ॥

उस पीठके ऊपर बैठ दशवार जप करनेपर उसके मंत्रकी सिद्धि होती है और उस देहके अन्तमें शिवतुल्य होता है ॥ ५९ ॥

यत्फलं ते मया प्रोक्तं ह्रदमध्ये सुलोचने ।
पादहीनं तत्फलं स्यात्पूर्णं शिवजपार्चने ॥ ६० ॥

हे सुलोचने ! मैंने तुमसे ह्रदमें जिस फलका होना कहा है वह फल पादहीन होता है और शिवके जप तथा अर्चनासे संपूर्ण होता है ॥ ६० ॥

अर्धं जालन्धरे ज्ञेयमुड्डीयाने तदर्द्धकम् ।
अवश्यं मन्त्रसिद्धिः स्यान्नेपाले तिथिवासरे ॥ ६१ ॥

नीलकण्ठसमीपे तु नात्र कार्या विचारणा ।
जपेन देवदेवेशि कथितं ते मया मुदा॥ ६२ ॥

हे देवि ! जालंधरमें उससे आधा फल, और उड्डीयानमें उससे आधा जाने, नेपालमें नीलकंठके समीप तिथिवासरमें मंत्र जपनेसे मंत्र सिद्धि होती है इसमें सन्देह नहीं इस प्रकार जप करनेसे सिद्धि होती है सो मने तुम्हारे प्रति वर्णन करके सुनाई ॥ ६१ ॥ ६२ ॥

त्रयोदशाहे महासिद्धिरेकाम्रकानने तथा ।
दशलक्षेण गङ्गायां सिद्धिरावश्यकं शिवे ॥ ६३ ॥

हे देवी देवेश्वरि ! एकाम्रकाननमें तेरह दिन जप करनेसे महासिद्धि प्राप्त होती है । हे शिवे ! गंगामें दशलाख जप करनेसे अवश्यही सिद्धि लाभ करता है ॥ ६३ ॥

राढायां विकटाक्षायां द्रुतञ्च पर्वतात्मजे ।
लक्षत्रयेण सिद्धिः स्यात्सत्यमेव सुसिद्धिदे ॥ ६४ ॥

हे पर्वतात्मजे ! हे सुसिद्धिदे ! राढा और विकटाक्षामें तीन लाख जपसे तत्क्षणसिद्ध होता है, इसमें सन्देह नहीं ॥ ६४ ॥

पुष्कराख्ये च लक्षेण प्रयागे विंशलक्षतः ।
कोटिजपाद्द्रोणगिरौ ज्वालायाञ्च द्विलक्षतः ॥ ६५ ॥

पुष्करमें लक्ष जपसे और प्रयागमें वीस लाख जपसे, द्रोणगिरीमें करोड जपसे, ज्वालामुखीमें दोलाख जपसे ॥ ६५ ॥

तथैव विरजे क्षेत्रे लक्षद्वादशतः शिवे ।
हिमालये त्रिलक्षेण केदारे पञ्चलक्षतः ॥ ६६ ॥
कैलासे दशलक्षेण जयन्त्यां पञ्चलक्षतः ।
उज्जयिन्यां दशाहेन मासेन मन्दराचले ॥ ६७ ॥
अवश्यं मन्त्रसिद्धिः स्याज्जपनात्पूजनाच्छिवे ॥६८॥

विरज क्षेत्रमें बारह लाख जपसे हिमालयमें तीन लाख जपसे केदारमें पांच लाख जपसे कैलासमें दशलाख जपसे जयन्तीमें पांचलाख जपसे उज्जयनीमें दशाह (दश दिनपर्यन्त) जपसे मन्दराचलमें मासमात्र जपसे और पूजासे अवश्यही सिद्धिलाभ होता है ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ ६८ ॥

इत्येवं कथितं तुभ्यं यत्पृष्टं गिरिसम्भवे ।
मातृजारसमं देवि सर्वदा परिगोपयेत् ॥ ६९ ॥

हे शिवे ! यह मैंने तुम्हारे पूछनेके विषयका उत्तर दिया । यह मातृजारके समान सदा गुप्त रखने योग्य है ॥ ६९ ॥

इति श्रीयोगिनीतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे देवीश्वरसम्वादे चतुर्विंशति साहस्रे भाषाटीकायामेकादशः पटलः ॥ ११ ॥

श्रीदेव्युवाच ।

भोः स्वामिन्परमानन्द योगिनामभयप्रद ।
कामाख्यायोनिमाहात्म्यं यदुक्तं मे त्वया शिव ॥ १ ॥

श्रीदेवीजीने कहा-भोः स्वामिन् ! परमानन्दविग्रह ! योगियोंका अभयदेनेवाले शिव ! आपने जो कामाख्यादेवीकी योनिका माहात्म्य वर्णन किया ॥ १ ॥

सत्यं सत्यं न सन्देहो ह्याश्चर्यं सर्वमेव हि ।
तत्त्वेन तन्मया ज्ञातं कलौ किं न सुसिद्धिदम् ॥ २ ॥

वह सत्य और परमाश्चर्ययुक्त है, उसका तत्त्व वास्तवमें मुझे अवगत होगया । हे करुणामय ! कलियुगमें किस कारण वह सिद्धि दायक नहीं होता ॥ २ ॥

न पश्याम शिवज्ञानं मन्त्रसिद्धिस्तथैव च ।
किमेतत्कारणं नाथ वद मे करुणामय ॥ ३ ॥

एक कालमें शिवज्ञान और मन्त्रसिद्धि यह दोनों क्यों दिखाई नहीं दे सकते ? हे नाथ ! इसका कारण वर्णन करके मुझको कृतार्थ कीजिये ॥ ३ ॥

ईश्वर उवाच ।

नरकासुरनामा तु विष्णुवीर्यसमुद्भवः ।
पृथिवीगर्भसम्भूतो दानवानामधीश्वरः ॥४ ॥
तस्मै विष्णुर्ददौ राज्यं कामरूपं महाफलम् ।
पृथिवीवचनात्सोऽपि दानवो युद्धदुर्द्धरः ॥ ५ ॥

ईश्वरने कहा–हे देवि ! पृथ्वीके गर्भसे उत्पन्न विष्णुवीर्यप्रादुर्भूत नरकासुर नामक एक दानव था, विष्णुने उसको महाफल युक्त कामरूप राज्य प्रदान किया । पृथ्वीके वचनसे युद्धदुर्द्धर वह दानव ॥ ४॥५॥

किरातैर्घटितं जित्वा रणे कामनृपोऽभवत् ।
पुनश्च भगवांस्तस्मै निवासाय ददौ मुदा ॥ ६ ॥

किरातके युद्धमें जय लाभ करके नृपतिश्रेष्ठ हुआ था. फिर भगवान् विष्णुने प्रसन्न होकर उसको वास करनेके निमित्त ॥ ६ ॥

प्राग्ज्योतिषपुरं ख्यातं कामाख्यायोनिमण्डलम् ।
राज्ञे प्राप्ताभिषेकाय विष्णुः शक्तिं ददावपि ॥ ७ ॥

प्राग्ज्योतिषपुर नामसे विख्यात कामाख्यायोनिमण्डल प्रदान किया । उसमें अभिषिक्त हो जानेपर विष्णुने उस राजाको शक्ति दी ॥ ७ ॥

ततस्तु दर्शयामास मनोभवगुहां हरिः ॥
सुस्नातं नरकं तत्रद्विधेयामास वै तदा ॥ ८ ॥

अनन्तर हरिने उसको मनोभवगुहा दिखाई, नरकासुर उसमें स्नान करके पापरहित हुआ ॥ ८ ॥

विष्णुरुवाच ।

कामाख्यायाश्च माहात्म्यं सर्ववेदार्थसम्मतम् ।
ब्रह्मत्वं ब्रह्मणा प्राप्तं विष्णुत्वं च मया पुनः ॥ ९ ॥
शिवत्वं च शिवेनैव कामाख्यायाः प्रसादतः ।
पूजनीया योनिरियं यत्नात्सर्वात्मभिस्त्वमुम् ॥ १० ॥

विष्णुने कहा—कामाख्याका माहात्म्य सर्ववेदार्थसम्मत है। कामाख्याके प्रसादसे ब्रह्मा ब्रह्मत्व विष्णु विष्णुत्व और शिव शिवत्वको प्राप्त हुए हैं; अतएव सार्वात्मामें सर्व प्रयत्नसे योनिपूजा करनी चाहिये ॥ ९ ॥ १० ॥

यदा ते सुमुखी माता तदा ते सर्वसम्पदः ।
यदा ते विमुखी माता तदा ते न शुभं ध्रुवम् ॥ ११ ॥

जब कामाख्या माता तुम्हारे प्रति प्रसन्न होकर सुमुखी हों, तब तुमको सम्पत्तिलाभ और जब वह विमुखी हों तब अपना अमंगल जानना इसमें सन्देह नहीं ॥ ११ ॥

तदैवाहं च त्यक्ष्यामि पुत्रत्वं वेद्म्यहं पुनः ॥
इति ज्ञात्वा पूजयस्व विशेषेण वदामि किम् ॥ १२ ॥

तब मैंभी त्याग करूंगा। मैं समस्तही पुत्रभावको अवगत हूं, यह जानकर उनकी पूजा कर अधिक और क्या कहूं ॥ १२ ॥

ईश्वर उवाच ।

इत्युक्त्वा स ययौ विष्णुर्वैकुण्ठं स्वं निकेतनम् ।
नरकः पालयामास विष्णूक्तं यद्यदेव हि ॥ १३ ॥

ईश्वर बोले—वह विष्णुदेव यह कहकर अपने स्थान वैकुण्ठपुरमें चलेगये विष्णुने जिस प्रकार आज्ञा दी नरकासुर वह सब प्रतिपालन करने लगा ॥ १३ ॥

एतस्मिन्नन्तरे देवि वृत्तान्तं शृणु दारुणम् ॥ १४ ॥

हे देवि ! इसी समयमें एक दारुण दुर्घटना उपस्थित हुई वह सुनो ॥ १४ ॥

ब्रह्मणो मानसः पुत्रो वसिष्ठोऽतीव सद्यतिः ।
तारामाराधयामास तदा नीलाचले मुनिः ॥ १५ ॥

ब्रह्माके मानसपुत्र वसिष्ठजी अतिशय यती हैं, वह मुनि उस नीलाचलके ऊपर ताराकी आराधना करनेके लिये आये ॥ १५ ॥

तत्रैवैकदिने देवि यजितुं स सुरेश्वरीम् ।
कामाख्यामण्डले तारां पुरद्वारे समागतः ।
तत्र तं वारयामास नरको ब्रह्मसम्भवम् ॥ १६ ॥

हे देवि ! एक दिन वही मुनि उस कामाख्या मण्डलमें सुरेश्वरी ताराकी पूजा करनेके निमित्त पुरद्वारमें उपस्थित हुए, वहां नरकासुरने उन ब्रह्मसंभव मुनिवरको निवारण किया, अर्थात् रोका ॥ १६ ॥

नरक उवाच ।

इदानीं तिष्ठ विप्र त्वं नायाहि मण्डलान्तरे ।
एषा हि पूज्यते देवी पूजान्ते त्वं गमिष्यसि ॥ १७ ॥

नरकने कहा—हे विप्र ! तुम इसी स्थानमें ठहरो, मण्डलके भीतर मत आना, यह देखो. हम देवीकी पूजा करते हैं पूजाके पीछे तुम आना ॥ १७ ॥

इत्युदीरितमाकर्ण्य नरकस्य मुनीश्वरः ।
द्वादशादित्यसङ्काशो बभूव क्रोधमूर्छितः ।
उवाच नरकं विप्रो वसिष्ठस्ताम्रलोचनः ॥ १८ ॥

मुनीश्वर नरकके इस प्रकार वचन सुनकर क्रोधसे बारह सूर्यकी समान जाज्वल्यमान हुए । और लाल नेत्र करके नरकासुरसे कहने लगे ॥ १८ ॥

वसिष्ठ उवाच ।

रे पापिष्ठ किमुक्तन्ते ह्ययोग्योऽहं सुदुर्म्मते ।
कामाख्यापूजने काले मालभेम गृहान्तरे ॥ १९ ॥

वसिष्ठजी बोले—रे पापिष्ठ ! तैंने क्या कहा ? रे दुर्मते ! मैं अयोग्य हूं, कामाख्याके पूजनको मैं यथासमय गृहान्तरमें नहीं जा सकता १९

गन्तुं योन्यन्तरे मूढ भूत्वापि ब्रह्मसम्भवः ।
इदानीं पश्य वीर्य्यं मे तव नाशकरं महत् ॥ २० ॥
इत्युक्त्वा च वसिष्ठोऽसौ जग्राह पाणिना जलम् ।
कमण्डलोर्महादेवीं शशाप दारुणं मुनिः ॥ २१ ॥

रे मूढ ! मैं ब्रह्मनन्दन ऋषि होकर अन्ययोनिमें पूजाके लिये नहीं जा सकता ? अब तू मेरा वीर्य देख । यह महत् वीर्य अवश्यही तेरा विनाश साधन करेगा । यह कहकर महर्षि वसिष्ठजीने कमण्डलुसे कर द्वारा जल ग्रहण करके महादेवीको दारुण शाप दिया ॥ २० ॥२१॥

वसिष्ठ उवाच ।

अहञ्च ब्राह्मणो मातः कामाख्यो ब्रह्मसम्भवः ।
हित्वा त्वां हि व्रजाम्यद्यान्यथाचेत्क्रियते त्वया ।
ब्रह्मवधोद्भवं पापं सत्यं तेऽद्य भविष्यति॥ २२ ॥
एवमत्र महापीठे जपनात्पूजनादपि ।
सिद्धिर्न जायते कर्हि काले मद्वचनात्पुनः ॥ २३ ॥

वसिष्ठने कहा—हे मातः कामाख्ये ! मैं ब्राह्मण और ब्रह्माका पुत्र हूं, मैं तुमको त्याग कर जाता हूं, तुमने मेरी पूजाका अन्यथा (परित्याग) किया, अत एव अब तुमको ब्रह्मवधका पाप होगा और मेरे

वचनसे इस महापीठमें जप और पूजा करनेपर किसी समयमी वह सिद्धि नहीं होगी ॥ २२ ॥ २३ ॥

ईश्वर उवाच ।

दत्त्वेमं दारुणं शापं त्यक्त्वा तज्जलमुत्तमम् ।
नीलाचलं परित्यज्य गतोऽसौ खाण्डवं गिरिम् ॥ २४ ॥

ईश्वरने कहा—वह मुनि यह दारुण शाप दे, उस पुण्यजलको छोड खाण्डव गिरिमें चले गये ॥ २४ ॥

ततः सा परमा विद्या कामाख्या विश्ववन्दिता ।
महाज्योतिर्मयी देवी सर्वप्रकाशरूपिणी ॥ २५ ॥
ताप्यत्यऽहर्निशं देवि सर्वं हि स्वाङ्गतेजसा ॥
तत्क्षणात्परिसंदह्य गता कैलासमन्दिरम् ॥ २६ ॥

तदनन्तर वह विश्ववन्दिता, महाज्योतिर्मयी, सर्वप्रकाशरूपिणी परमा विद्या कामाख्या अपने अंगके तेजसे निरन्तर प्रदीप्त हुई और तत्काल उस तेजसे दग्ध होकर कैलास मन्दिरमें गई ॥ २५ ॥ २६ ॥

तदैव परमेशानि मनोभवगुहा पुनः ।
महान्धकारपटलैरावृता तद्वियोगतः ॥ २७ ॥

हे परमेशानि देवि ! उनके वियोगसे वह मनोभवगुहा अन्धकार-मण्डलसे ढक गई ॥ २७ ॥

हाहाकारं सर्वलोके मूर्च्छितो दानवेश्वरः ॥
ततस्तां परमां मायां विषण्णवदनां पुनः ॥ २८ ॥
दृष्ट्वाहं परिपप्रच्छ कामाख्यां परिसादरम् ॥
कथं शिवे समायाता त्यक्त्वा तद्योनिमण्डलम् ॥ २९ ॥

सर्व लोक हाहाकार करने लगे और वह दानवेश्वर मूर्च्छित होगया। तदनन्तर मैंने उन परमा माया कामाख्या देवीको दुःखितमन देखकर

आदरपूर्वक पूँछा–हे शिवे ! तुम वह योनिमण्डल त्यागकर क्यों आई हो ॥ २८ ॥ २९ ॥

विषण्णवदना भूत्वा कामाख्ये वद कारणम् ॥
त्वं देवि परमाराध्या स्थीयतां मे हृदि त्वयम् ॥
सर्वं प्रतिकरोम्येव विषण्णवदने कथम् ॥ ३० ॥

हे कामाख्ये देवि ! तुम्हारा मुख मण्डल दुःखित देखता हूं, इसका कारण प्रकाश करो । हे देवि ! तुम परमाराध्या हो, तुम मेरे हृदयमें अवस्थान करो, तुम दुःखितमन क्यों हुई हो, मैं सबकाही प्रतीकार करता हूं ॥ ३० ॥

कामाख्योवाच ।

वसिष्ठो ब्रह्मणः पुत्रस्तारामाराधितुं मुनिः ।
मद्योनिमण्डले नाथ द्वारं मे समुपागतः ॥ ३१ ॥

कामाख्याने कहा–हे नाथ ! ब्रह्माके पुत्र वशिष्ठ ताराकी आराधनाके लिये मेरे योनिमण्डलमें आये थे ॥ ३१ ॥

प्रातस्तस्मिन्ब्राह्मणो मां यजते मानवेश्वरः ।
द्वारपालोऽभवद्राजा यावन्मे पूजनं भवेत् ।
तावत्कोऽपि न क्षमो हि गन्तुं मद्योनिमण्डलम् ॥ ३२ ॥
एवं नित्यं नियमितं नरकेणासुरेण च ।
ततस्तं वारयामास नरको ब्रह्मनन्दनम् ॥ ३३ ॥

प्रातःकालमें ब्राह्मण मेरी पूजा करनेको आया, तब मेरे योनिमण्डलमें कोईभी जानेको समर्थ नहीं होता, जबतक मेरी पूजा होती है, तबतक राजा नरकासुर द्वारपालके रूपसे स्थित रहता है । नरकासुरने इस प्रकार नित्य नियम कर रक्खा है, नरकासुरने उन आये हुए ब्रह्मनन्दन ऋषीको निवारण किया था ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

ततस्तेनैव मुनिना शापो दत्तः सुदारुणः ।
शापं शृणु महादेव कथने रोदनं मम ॥ ३४ ॥

इसी कारण उन मुनिने दारुण शाप दिया है, हे महादेव ! कहते मुझको रोना आता है, तुम मेरा शाप सुनो ॥ ३४ ॥

ब्रह्मविष्णुसुरेशाद्यैः कांक्ष्यते यत्परं स्थलम् ।
तन्मया विहितं देव को वा पापोऽस्ति मे वद ॥ ३५॥

ब्रह्मा, विष्णु इन्द्रादि सभी जिस परम स्थलकी आकांक्षा करते हैं, मैंने उस परमस्थलकी कामना करके विहित कार्यही किया है, इसमें मेरा क्या दोष होसकता है ? सो कहो ॥ ३५ ॥

त्वां परित्यज्य गच्छामि ह्यन्यथा क्रियते त्वया ।
ब्रह्मघ्ने यद्भवेत्पापं सत्यं तेऽद्य भविष्यति ॥ ३६ ॥

मैं यह स्थान छोडकर जाता हूं, इस समय मेरी पूजाको अन्यथा किया, अतएव आज तुमको ब्राह्मणके वध करनेका पाप लगेगा३६॥

एवमत्र महापीठे जपनात्पूजनादपि ।
सिद्धिर्न जायते कर्हि काले मद्वचनात्पुनः ॥ ३७ ॥

और मेरे वचनसे इस महापीठमें जप पूजा करनेपर भी वह किसी कालमें सिद्धि नहीं होगी ॥ ३७ ॥

एवमेव मुनेः शापादागताऽहं तवान्तिकम् ।
कमुपायं करिष्यामि वद मे करुणामय ॥ ३८ ॥

मुनिके इस प्रकार शाप देनेपर मैं तुम्हारे पास आई हूं, हे करुणामय ! इसका क्या उपाय करोगे, कहो ॥ ३८ ॥

ईश्वर उवाच ।

एवमुक्त्वा रुदन्तीं तामाश्वास्य च पुनः पुनः ।
आगत्याहं योनिपीठे जजाप कालिकामनुम् ॥ ३९ ॥

शापोद्धाराय देवेशि तस्माच्छापाद्विमोचिता ।
कामाख्यां स्थापयामास पूर्ववद्योनिमण्डले ॥ ४० ॥

ईश्वर बोले-वह यह सब बातें कहकर रोने लगी । मैं वारंवार उनको आश्वासन (तसल्ली) प्रदान करके योनिपीठमें आया और शापोद्धारके लिये कालिकामंत्र जपने लगा हे देवेशि ! उसके द्वारा उस शापसे छुडाकर कामाख्या देवीको पाहिलेकी समान उस योनि-मण्डलमें स्थापन किया ॥ ४० ॥

ततः सा परमा माया महाहर्षमुपागता ।
कलौ किन्तु महेशानि वर्षाणाञ्च शतत्रयम् ।
ब्रह्मशापो महेशानि फलिष्यति सुनिश्चितम् ॥४१॥

तब वह परमा माया महाहर्षयुक्त हुई किन्तु हे महेशानि ! कालि-युगमें तीनसौ वर्ष ब्रह्मशाप फलेगा, इसमें सन्देह नहीं ॥ ४१ ॥

श्रीदेव्युवाच ।

वशिष्ठेन पुरा शप्ता कामाख्या कामवासिनी ।
नरकस्य प्रसङ्गेन तत्सर्वं कथितं त्वया ॥ ४२ ॥
इदानीं श्रोतुमिच्छामि शापोद्धारस्य ते कथा ।
कथं शापश्च ज्ञातव्यस्तस्यापि लक्षणं वद ।
यच्छ्रुत्वा साधवः सर्वे दयामेष्यन्ति सर्वदा ॥ ४३ ॥

देवीने कहा-पूर्वकालमें वशिष्ठ ऋषिने कामवासिनी कामाख्या देवीको शाप दियाथा, वह तो आपने नरकासुरके प्रसंगमें सब कहा । अब मैं तुम्हारे शापोद्धारकी कथा सुनना चाहती हूं, किस प्रकार शाप जाना जाता है, उसका लक्षण कहिये । साधुजन उसको सुनकर सदा दया युक्त हों ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

ईश्वर उवाच ।

कुमतेः पुरभूपस्य राज्यनाशो यदा भवेत् ।
तद्दिनात्परमेशानि ब्रह्मशापः प्रवर्तते ॥ ४४ ॥

ईश्वरने कहा–जब दुर्मति पुरभूपका राज्य नाश होता है, उस दिनसेही ब्रह्मका शाप प्रवृत्त हुआ है ॥ ४४ ॥

ततोऽतीव दुराचारो कामरूपे भविष्यति ।
प्रजापीडा रोगकृत्या बहुदोषो भविष्यति ॥ ४५ ॥

इसी कारण कामरूपमें अत्यन्त दुराचार संघटित होगा और प्रजा पीडा, रोग कृत्या इत्यादि अत्यन्त दोषपूर्ण व्यापार उपस्थित होगा ॥ ४५ ॥

सदा युद्धं महामाये यदा दुर्वृत्तमेव च ।
देवदानवगन्धर्वाः सदा पीडापरायणाः ॥ ४६ ॥

हे महामाये ! निरन्तर युद्ध और दुर्वृत्तता प्रवर्तित होगी, देवता दानव और गंधर्व सदा पीडाको प्राप्त होंगे ॥ ४६ ॥

कुपूर्वेकुलचन्द्रेण मिते शाके दिवानिशम् ।
सौमारैश्च कुवाचैश्च यवनैर्युद्धमुल्बणम् ॥ ४७ ॥
भविष्यति कामपृष्ठे बहुसैन्यसमाकुलम् ।
ततो रणे च सौमारं जित्वा यवन ईप्सितम् ॥ ४८ ॥
वर्षमेवाकरोद्राज्यं मकारादिर्म्महीपतिः ॥ ४९ ॥

कुपूर्व कुलचंद्रमिते शके (अर्थात्–२१२) कामरूप पृष्ठमें सौमार गणोंके सहित कुवाच और यवनोंका बहुसैन्यसंकुल घोरतर युद्ध होगा उस समरमें मकारादि महीपति यवन सौमारगणोंको पराजित करके एक वर्ष राज्य करेंगे ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ ४९ ॥

तत्सहायं समासाद्य कुवाचः स्वीयराज्यभाक् ॥
वर्षान्ते यवनं जित्वा सौमारो राज्यनायकः ॥ ५० ॥

कुवाच राज उसकी सहायताको प्राप्त होकर अपना राज्य भोगेंगे फिर एक वर्षके पीछे सौमार गण यवनोंको पराजयपूर्वक दूर भगाकर राज्यनायक होंगे ॥ ५० ॥

कुमारीचन्द्रकालेन्दौ गते शाके महेश्वरि ।
कामरूपे पुनर्युद्धसंयोगः सम्भविष्यति ॥ ५१ ॥

हे महेश्वरि! कुमारी कालेन्दु शाके (९०१) बीतने पर कामरूपमें फिर युद्ध संयोग संघटित होगा ॥ ५१ ॥

कामरूपे तथा राज्यं द्वादशाब्दं महेश्वरि ।
कुवाचसंगतो भूत्वा यवनश्च करिष्यति ॥ ५२ ॥
षष्ठवर्गपञ्चमादिस्ततः शरीरमिच्छति ।
शामितव्यं कामरूपं सौमारैश्च कुवाचकैः ॥ ५३ ॥

तदनन्तर कुवाचके सहित मिलित होकर यवनगण बारह वर्ष कामरूपमें राज्य करेंगे । फिर कुछ काल पीछे सौमार और कुवाच गणोंमें संधि (मिलाप) संघटित होकर कामरूपमें शान्ति स्थापन होगी ॥ ५२ ॥ ५३ ॥

यवनश्च कुवाचश्च सौमारश्च तथा प्लवः ।
कामरूपाधिपो देवि शापमध्ये न चान्यकः ॥ ५४ ॥

शाप कालमें यवन, कुवाच, सौमार और प्लव कामरूपके अधिपति होकर राज्यका अधिष्ठान करेंगे ॥ ५४ ॥

एवमेव बहुविधं वक्ष्ये लक्षणमीश्वरि ।
क्रियते सकलं स्पष्टं प्रत्येकं परमेश्वरि ॥ ५५ ॥

हे देवेशि! इस प्रकार बहु प्रकारके लक्षण कहता हूं, सुनो । हे परमेश्वरि! यह सभी विषय तुम्हें जानना चाहिये ॥ ५५ ॥

वशिष्ठस्य तपोदाववह्निः शाम्यति कामिनि ।
भविष्यन्ति च तरवः शालाख्यपर्वतोपरि ॥ ५६ ॥

तदनन्तर वशिष्ठकी तपोदाववह्नि (तपके प्रतापसे प्रादुर्भूत हुई अग्नि) शान्त होगी। शालाख्य पर्वतके ऊपर तरुगणोंकी उत्पत्ति होगी ॥५६॥

स्वर्गद्वारे शिलापाते तत्र वै पुरसन्निधौ ।
कामाख्याकमठे भग्ने उर्वश्या सहसङ्गमः ॥ ५७ ॥
ब्रह्मपुत्रस्य देवेशि सूक्ष्मधारा तु तस्य च ।
षोडशाब्दे गते शाके भूमहीरिपुचुल्वके ।
विगतो भविता न्यूनं सौमारे कामपृष्ठयोः ॥ ५८ ॥

उस पुरके समीप स्वर्गद्वारमें शिलापात होकर कामाख्याका मठ टूटेगा। उर्वशीके सहित ब्रह्मपुत्रका संगम होकर उस नदकी धारा सूक्ष्म होगी। षोडशाब्दशाक (सोलहवर्ष) बीतने पर राजा गण सौमार और कामरूप पृष्ठसे भूमहीरिपुचुल्वकमें जायंगे, इसमें सन्देह नहीं ॥ ५७ ॥ ५८ ॥

षण्मासं तत्र संस्थाय उत्तराकालकोषयोः ।
गमिष्यन्ति च राजानः सर्वे युद्धविशारदाः ॥ ५९ ॥
कुवाचैर्यवनैश्चान्द्रैर्बहुसैन्यसमाकुलैः ।
त्रिभिर्म्लेच्छैः समाकीर्णं महायुद्धं भविष्यति ॥६०॥

वहां छः मास स्थित रहकर बहुसैन्यसमाकुल चान्द्र, यवन और कुवाच गणोंके सहित युद्धविशारद राजा गण उत्तरकाल और कोष देशमें जायंगे वहां तीन म्लेच्छोंके सहित एक (संघटित) तुमुल युद्ध होगा ॥ ५९ ॥ ६० ॥

अश्वमुण्डैर्नरमुण्डैर्गजमुण्डैर्विशेषतः ।
लौहित्यो रक्तपूर्णश्च भविष्यति न संशयः ॥ ६१ ॥

उस युद्धमें अश्वमुण्ड नरमुण्ड और गजमुण्ड कर्तित होकर पृथ्वी लोहितशोणितसे पूर्ण होगी इसमें संदेह नहीं ॥ ६१ ॥

तदैव परमा माया योगिनीगणवन्दिता ।
कामाख्या वर्णकश्यामा बलिहस्ता हसन्मुखी ॥ ६२॥
ललज्जिह्वा मुण्डमाला दिग्वस्त्रा परमास्थिता ।
पर्वताग्रं समाश्रित्य रक्तपानं करिष्यति ॥ ६३ ॥

तब योगिनीगणवन्दिता, श्यामवर्णा, दिग्वस्त्रा, लोलजिह्वा, बलिहस्ता और हसन्मुखी परमा माया कामाख्या पर्वताग्रका आश्रय करके रक्तपान करेंगीं ॥ ६२ ॥ ६३ ॥

ततः कुवाचो यवनं हित्वा सौम्यविनाशितः ।
करतोयानदी यावत्करिष्यति महद्रणम् ॥ ६४ ॥

फिर कुवाचगण सौम्यगणको नष्ट करके यवनगणको परित्याग पूर्वक करतोयानदीपर्यन्त भूभागमें महायुद्ध करेंगे ॥ ६४ ॥

दशाहं तत्र सं स्थाय यास्यन्ति पुनरालयम् ।
ततो विप्रो नृपो भूत्वा कामरूपनिवासिनः ॥
करिष्यति जनान्देवि जपपूजादितत्परान् ॥ ६५ ॥

वहां दश दिन वास करके फिर अपने घर जायंगे तदनन्तर कामरूप निवासी विप्रगण राजा होकर जनोंको जप पूजादिमें तत्पर करेंगे॥६५॥

एवं वर्षत्रयं राज्यं कृत्वा दण्डी द्विजो नृपः ।
भविष्यति महामाये योनिमण्डलसन्निधौ ॥ ६६ ॥

दण्डी विप्र राजा होकर इस प्रकार तीन वर्ष राज्य करके योनिमण्डलके समीप स्थित होंगे ॥ ६६ ॥

ततो द्वादशदले नाभिः कल्पते पूर्वभूमिपः ।
ऐशानीमागतः कामानेकच्छत्रं करिष्यति ।
तद्राज्यं सकलं देवि धर्मेण पालयिष्यति ॥ ६७ ॥

अनन्तर पूर्व भूमिपति ईशानदिशासे आनकर द्वादशदलमें नाभि-कल्पना और कामरूपको एक क्षत्रके अन्तर्गत करेंगे । हे देवि! तब वह इस सब राज्यको धर्मानुसार पालन करेंगे ॥ ६७ ॥

तत्पत्नी श्यामवर्णा स्यात्सदाराधितपार्वती ।
विनीतं तनयं साध्वी राजानं राजपुत्रकम् ॥ ६८ ॥

उनकी पत्नी श्यामवर्णा साध्वी होकर सदाही पार्वतीकी आराधना करेगी । वह सती एक विनीति राजपुत्र उत्पन्न करेगी ॥ ६८ ॥

तज्जन्मदिवसाद्देवि यावत्स्याद्द्वादशं दिनम् ।
तावत्स्पर्शाचले स्पर्शमणिराविर्भविष्यति ॥ ६९ ॥

हे देवि ! उसके जन्मदिनसे बारहवें दिन स्पर्शाचलमें स्पर्शमणिका आविर्भाव होगा ॥ ६९ ॥

तेनैव धनिनः सर्वे कामरूपनिवासिनः ।
भविष्यन्ति तदैव स्याद्वसिष्ठशापमोचनम् ॥ ७० ॥

हे देवि ! उसके द्वारा सब कामरूपनिवासी धनवान् होंगे । तब वशिष्ठका शापमोचन होगा ॥ ७० ॥

ततस्तेजांसि भूयांसि कामाख्यायोनिमण्डले ।
कामाख्यासन्निधाने च भविष्यति कलौ युगे ॥ ७१ ॥
मन्त्रसिद्धिश्च भविता तदैव योनिमण्डले ।
यथोक्तफलदा देवि कामाख्या हि भविष्यति ॥ ७२ ॥
जडीभूता ब्रह्मशापाद्वर्षाणांच शतत्रयम् ।
कामाख्या देववन्द्याद्भिक्मला लज्जिता स्वयम् ।
पूर्ववत्सकलं देवि ततस्तु संभविष्यति ॥ ७३ ॥

तदनन्तर कामाख्याके योनिमण्डलमें प्रभूततेजका आविर्भाव होगा कलियुगमें तब कामाख्याके समीप योनिमण्डलमें मन्त्रसिद्धि होगी और कामाख्यामें यथोक्तफलदायक होगी। देवता जिसके चरणकमलोंकी वन्दना करते हैं वह कामाख्या देवी ब्रह्मशापसे तीनसौ वर्ष जडीभूत (जिसमें देवशक्ति कुछ न हो) रह कर आपही लज्जित होंगी। अनन्तर हे देवि ! सभी पूर्ववत् फल सिद्धिके देनेवाले होंगे ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ ७३ ॥

एवं कामपरित्राणं संक्षेपात्कथितं मया ।
किं श्रोतव्यमितो देवि गिरिजे कथ्यतां त्वया॥ ७४॥

हे गिरिजे देवि ! यह मैंने तुमसे कामरूपके परित्राण (रक्षा) की कथा संक्षेपसे वर्णन करी अब यदि तुम कुछ और सुनना चाहती हो वह कहो ॥ ७४ ॥

इति श्रीयोगिनीतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे देवीश्वरसम्वादे चतुर्विंशतिसाहस्रे भाषाटीकायां द्वादशः पटलः ॥ १२ ॥

श्रीदेव्युवाच ।

देवेश परमेशान सर्वज्ञ सर्व्वपूजित ।
क्व गच्छसि मुहुर्नाथ कृपया वद शंकर ॥ १ ॥

श्रीदेवीने कहा–हे परमेशान सर्वज्ञ सर्वपूजित शंकर ! तुम कहां कहां जाते हो ? कृपा करके यह मुझसे कहो ॥ १ ॥

ईश्वर उवाच ।

कोचाख्याने च देशे च योनिगर्त्तसमीपतः ।
साध्वी सती ब्राह्मिका हि रेवती जलविस्मृता ॥ २ ॥
म्लेच्छदेहोद्भवा या तु योगिनी सुन्दरी मता ।
तत्कुचौ कठिनौ द्वन्द्वौ योनौ तस्याश्च पनिता ॥ ३ ॥

भिक्षाचारप्रसङ्गेन गच्छामि च दिवानिशम् ।
तत्सन्निधौ महेशानि त्वया मे मरणं महत् ॥ ४ ॥

ईश्वर बोले—योनिगर्तके समीप कोच नामक देश है; वहां ब्राह्मिका साध्वी सती जलविस्मृता म्लेच्छदेहोद्भवा रेवती, योगिनी नामक सुन्दरी स्त्री थी । उसके दोनों कुच कठिन एवं योनिमण्डल पीन और मनोहर था मैं भिक्षाचार प्रसंगमें दिन रात उसके निकट जाता हूं । हे महेशानि । उसके समीप मेरा यह सब महत् मरण तुल्य बोध होता है ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥

श्रीदेव्युवाच ।

कुत्रासीत्किं तपस्तप्तं कथं प्राप्तं महीतलम् ।
त्वया सार्द्धं रतिर्यस्य नाल्पस्य तपसः फलम् ॥ ५ ॥
तथापि च कृपा तस्यां लक्ष्यते महती मया ।
इदानीं किमभूत्सा हि कृपया परया वद ॥ ६ ॥

श्रीदेवीजीने कहा—वह स्त्री कहां थी ? उसने कैसी तपस्या की थी ? वह किस प्रकार महीतलको प्राप्त हुई ? हे देव ! तुम्हारे संग जिसकी रतिक्रिया है उसके तपका फल थोडा नहीं है उसपर आपकी महत् कृपा दिखाई देती है अब वह कैसी हुई है ? हे नाथ ! कृपाप्रकाश-पूर्वक यह मुझसे कहो ॥ ५ ॥ ६ ॥

ईश्वर उवाच ।

नगेन्द्रतनये बाले शृणु मत्प्राणवल्लभे ।
तत्साध्वीचरितं किंचित्कथयामि शुचिस्मिते ॥ ७ ॥

ईश्वर बोले—हे मेरी प्राणप्यारी ! हे बाले नगेन्द्रनंदिनि शुचिस्मिते! उस साध्वीका चरित्र कुछेक कहताहूं सुनो ॥ ७ ॥

रासक्रीडा कृता सार्द्धमेकाम्रकानने मुदा ।
वेदाङ्गसम्भवा साध्वी योगिनी सासुरी मता ॥ ८ ॥

उसने प्रसन्नचित्तसे आम्रवनमें मेरे संग रासक्रीडा करीथी वह वेदाङ्गसम्भवा योगिनी देवी थी ॥ ८ ॥

नाभूत्तस्याः सुतृप्तिर्मे मत्क्रियायां नगात्मजे ।
मामाप्तुमुत्कटं तप्तं त्वियं मे क्षेत्रकामदा ॥ ९ ॥

हे नगनन्दिनी ! मेरे सहित रतिक्रियामें उसकी तृप्ति नहीं हुई । मेरे लिये उसने उत्कट तपस्या करीथी यह योगिनी मेरी क्षेत्रकामदायिनी थी ॥ ९ ॥

एकाम्रगहने देवि पर्वते तीर्थसङ्कुले ।
तत्रैको ब्राह्मणो यातो भिक्षार्थं तामुवाच ह ॥ १० ॥

हे देवि ! एकाम्रवनके तीर्थसंकुल पर्वतमें वह तपोनिरत हैं इसी समय भिक्षाके निमित्त एक ब्राह्मणने वहां आनकर उससे भिक्षा मांगी ॥ १० ॥

न दत्तमुत्तरं तस्मै भिक्षा तिष्ठतु दूरतः ।
ततः शशाप विप्रस्तां म्लेच्छतां याहि दुर्मदे ॥ ११ ॥

भिक्षा तो दूर रही, उसने उसको उत्तरतकभी नहीं दिया । तब इस ब्राह्मणने उसको शाप दिया, रे दुर्मते ! तूं म्लेच्छ हो ॥ ११ ॥

इत्युक्त्वा स ययौ विप्रो म्लेच्छत्वं प्राप योगिनी ।
अतोऽर्थिनं समर्थश्चेद्याचितं न ददाति चेत् ॥ १२ ॥
स दुर्गतिमवाप्नोति समर्थो विनयं चरेत् ।
तस्यास्तु तपसा देवि क्रीतोऽहमभवं सदा ॥ १३ ॥

ब्राह्मण यह वचन कहकर चला गया । योगिनी म्लेच्छत्वको प्राप्त हुई, अतएव हे देवि ! समर्थव्यक्तिसे याचना करनेपर वह यदि याचकको यथाशक्ति नहीं देता तो उसको अवश्य दुर्गति प्राप्त होती है । समर्थव्यक्ति याचकसे विनीतभावका आचरण करै, हे देवि ! मैं उसकी तपस्यासे सदाही क्रीत (दास) रहताहूं ॥ १२ ॥ १३ ॥

अतस्तया रतिर्याता मम कामिनि सर्वदा ।
तस्याः पुत्रो वेनुसिंहो मदुरसा समुद्भवः ॥ १४ ॥

इसी कारण उसके संग मेरा सदा रतिभाव संबंध रहता है । उसके गर्भ और मेरे औरससे वेनुसिंह नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ १४ ॥

एकेन जितवान्कामान्सौमारान्गौडपञ्चमान् ।
विनिर्ज्जित्य नृपान्सर्वानेकः श्रीमान्महामतिः ॥ १५ ॥

वह महामति वेनुसिंह अकेलेही सौमारगण और गौड पंचमगण तथा समस्त राजाओंको जीतकर एक प्रधान श्रीमान् राजा हुए थे १५ ॥

तस्यापि बहवः पुत्राः पृथिवीपरिपालकाः ।
कुवाचा धार्मिकाः सर्वे राजानो युद्धदुर्मदाः ॥ १६ ॥

उस वेनुसिंहके पृथ्वीपालक बहुत पुत्र उत्पन्न हुए उनमें सब कुवाच गणही धार्मिक राजा और युद्धदुर्मद हुए थे ॥ १६ ॥

तेऽपि सर्वे वेनुसिंहे योगमाश्रित्य विह्वले ।
तिष्ठन्तो व्यक्तरूपेण पदमाकल्पमम्बिके ॥ १७ ॥

वह वेनुसिंह विह्वलतासे योग आश्रय करके आकल्पपर्यन्त व्यक्त-रूपमें अवस्थान करते हैं ॥ १७ ॥

कालात्सा माधवी देवि मद्देहे लीनतां गता ॥ १८ ॥

हे अम्बिके ! वह माधवी कालवशात् मेरे देहमें लीन हुई थीं ॥ १८ ॥

यथा जाया नन्दिमाता तथेयं योगिनी मता ।
यथा पुत्रो भृङ्गरीटस्तथा वेनुर्ममात्मजः ॥ १९ ॥

जिस प्रकार नन्दिमाता मेरी जाया है इस योगिनीकोभी उसी प्रकार जानना चाहिये भृंगरीट जैसे मेरा पुत्र है इस वेनुसिंहकोभी उसी प्रकार जानो ॥ १९ ॥

वेनुसिंहोऽपि कल्पान्ते परां सिद्धिमवाप्स्यति ॥ २० ॥

वेनुसिंहभी कल्पान्त कालमें परमा सिद्धिको प्राप्त होंगे ॥ २० ॥

तद्वंशजास्तु राजानः सर्वे कैलासवासिनः ।
भविष्यंति महात्मानो गणेशाः सर्वेशालिनः ॥ २१ ॥
रूपयौवनसम्पन्नैर्देवकन्यागणैः सह ।
विहरन्ति सदा देवि क्रीडन्ते भैरवा यथा ॥ २२ ॥

उसके वंशोत्पन्न सभी कैलासवासी महात्मा राजा और सर्व समृद्धिशाली गणेश्वर होंगे और वह रूपयौवनसम्पन्न देवकन्याओंके सहित भैरवगणोंकी समान आनंदसे विहार करेंगे ॥ २१ ॥ २२ ॥

यदा यदा ब्रह्मशापः कामाख्यायां भवेत्पुनः ।
तदा तदावतीर्यासौ स्वस्य कामस्य पालकः ।
तथा तद्वंशजाः सर्वे भवेयुः कामपालकाः ॥ २३ ॥

जब जब कामाख्यामें ब्रह्मशाप होगा, तब तबही इन (वेनुसिंह) का अवतार होकर अपने कामरूपका पालन करेंगे उसके वंशवाले सभी कामरूपके पालक होंगे ॥ २३ ॥

कल्पान्तमेवं देवेशि यावच्छापो विमुच्यते ।
तावदेव महामाये तद्वीर्य्ये क्रीडिता ध्रुवम् ॥ २४ ॥
कल्पमेवं महेशानि कलौ वर्षशतत्रयम् ।
प्राणेश्वरि परेशानि भुङ्क्ते शापं परात्मिका ॥ २५ ॥
कामाख्या हि महामाये तदन्ते सफलं भवेत् ।
एवं ते कथितं देवि ब्रह्मशापविमोचनम् ॥ २६ ॥

और कल्पान्त पर्यन्त जबतक शापविमोचन नहीं होगा, तबतक हे महामाये ! तुम्हारेही प्रभावसे वह क्रीडा करेंगे । हे महेशानि! कालिमें तीन सौ वर्षमें इस प्रकार कल्प होता है । हे प्राणेश्वरि ! हे परमेश्वरि ! महा-

माये शंकरि ! परमात्मिका कामाख्या ब्रह्म शाप भोगती हैं, शापके अन्तमें उसका सभी सफल होगा । हे देवि ! यह मैंने तुमसे कामाख्याका शापविमोचनका सब वृत्तान्त वर्णन किया॥२४॥२५॥२६॥

कामाख्या या महेशानि साकल्येन मया ध्रुवम् ।
तावद्यस्य ब्रह्मशापो निष्कृतिस्तस्य दूरतः ॥ २७ ॥

जो कामाख्या महामाया प्रतिपादन करी गई है वह अत्यन्त महिमावान् है तथापि हे महेशानि ! जिसको ब्रह्मशाप हुआ है, उसकी निष्कृति (मुक्ति) दूर स्थित रहती है ॥ २७ ॥

तक्षकेणापि दष्टस्य प्रतीकारो हि तत्क्षणात् ।
ब्रह्मशापप्रसक्तस्य कल्पान्ते स्यात्प्रतिक्रिया ॥ २८ ॥

तक्षकके काटनेपरभी तत्काल उसका प्रतीकार होसकता है किन्तु ब्रह्मशापग्रसित व्यक्तिका कल्पान्त होनेपर प्रतीकार नहीं होता ॥२८॥

नरकान्निष्कृतिर्नास्ति तस्याभावान्न संशयः ।
एवं तद्वंशजाः सर्वे पीड्यन्तेऽहर्निशं प्रिये ॥ २९ ॥
नानाविधमहोत्पातैर्यावत्स्यात्साप्तपौरुषम् ।
तस्मात्तु ब्राह्मणं देवि नावमन्येत कुत्रचित् ॥ ३० ॥

हे देवि ! प्रलयके विना उसका छुटकारा नहीं है । हे प्रिये ! ब्रह्मशापग्रसित मनुष्यके वंशधरभी सातपुरुषा (सातपीढी) पर्यन्त अनेक उत्पातोंसे रात दिन पीडित होते हैं इसी कारण हे देवी ! कभी ब्राह्मणका अपमान न करै ॥ २९ ॥ ३० ॥

सर्वदेवमयो विप्रो ब्रह्मविष्णुशिवात्मकः ।
ब्रह्मतेजःसमुद्भूतः सदा प्राकृतिको द्विजः ॥ ३१ ॥

ब्राह्मण सर्वदेवमय और ब्रह्मा विष्णु शिवस्वरूप है । द्विजगण यद्यपि प्राकृतिक अर्थात् पंचभूतमय हैं किन्तु तोभी वह ब्रह्मतेजसे उत्पन्न हुए हैं ॥ ३१ ॥

ब्राह्मणैर्भुज्यते यत्र तत्र भुंक्ते हरिः स्वयम् ।
तत्र ब्रह्मा च रुद्रश्च खेचरा ऋषयो मुनिः ॥ ३२ ॥
पितरो देवताः सर्वे भुञ्जन्ते नात्र संशयः ।
सर्वदेवमयो विप्रस्तस्मात्तं नावमानय ॥ ३३ ॥
ब्राह्मणश्च कुमारीश्च शक्तिमग्निं श्रुतिश्च गाम् ।
नित्यामिच्छन्ति ते देवा यजितुं कर्मभूमिषु ॥ ३४ ॥

जहां ब्राह्मण गण भोजन करते हैं वहां स्वयं हरि भोजन करते हैं। और वहीं ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, खेचर, ऋषि, मुनि, पितर और देवता सभी भोजन करते हैं, इसमें सन्देह नहीं अतएव हे देवि! ब्राह्मण सर्व देवमय हैं इस कारण तुम कभी उनका अवमान न करना। हे देवि! देवता गण सदा कामना करते हैं कि, कर्मभूमीमें ब्राह्मण, कुमारी, शक्ति, अग्नि, श्रुति और गौ इन सबकी नित्य पूजा हो ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

पूजितैका कुमारी चेद्वितीयं पूजनं भवेत् ।
कुमारीपूजनफल मया वक्तुं न शक्यते ॥ ३५ ॥
कुमार्यः शक्तयश्चापि सर्वमेतच्चराचरम् ।
एका चेद्युवती देवि पूजिता स्वात्मलोकिता ।
सर्वा एव परादेव्यः पूजिताः स्युर्न संशयः ॥ ३६ ॥

यदि मनुष्य एक कुमारीकी पूजा करै तो उसको महत् फल होता है, हे देवि! कुमारीपूजनके फलका मैं वर्णन नहीं कर सकता। हे अम्बिके! कुमारी और शक्तिगण यह अखिल चराचरस्वरूप हैं, हे देवि! यदि एक युवतीकी पूजा करी जाय, तो उसीके द्वारा सब देवी पूजित होती हैं, इसमें सन्देह नहीं ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

हुतमेकगुणं वह्नौ दत्तमेकगुणं द्विजे ।
लभ्यते कोटिगुणितं विश्वासान्नात्र संशयः ।
अविश्वासे शतगुणं फलमेव सुनिश्चितम् ॥ ३७ ॥

विश्वासपूर्वक अग्निमें एक गुण होम और ब्राह्मणको एक गुण दान करने पर करोड गुण फल प्राप्त करता है, इसमें सन्देह नहीं । अविश्वाससे होम और दान करने पर केवल सौगुणा फल पाता है, यह निश्चित है ॥ ३७ ॥

गोग्रासं पावनं लोके सर्वपापनिकृन्तनम् ।
कुमार्यै चव यद्दत्त तथा शक्त्यै महेश्वरि ॥ ३८ ॥

हे महेश्वरि ! इस लोकमें गोग्रासदान परम पवित्र कर्म है, उसके द्वारा सब पाप नष्ट होजाते हैं ॥ ३८ ॥

न नश्यति कदापि तत्कल्पकोटिशतायुतैः ।
धर्मयोनिर्हि ते देवा धर्मो यज्ञादिको मतः ॥ ३९ ॥
परलोके महाबन्धुर्धर्मो ह्यत्र न संशयः ।
कर्मण्येव कृते देवि वैदिके बहुजन्मनि ।
ततश्चागमिके धर्मे धर्मेणैव प्रवर्त्तते ॥ ४० ॥

कुमारी और शक्तिको जो दिया जाता है, कल्पकोटिशतायुत (दससौहजारकरोड) वर्षमें भी वह नष्ट नहीं होता । देवताही धर्मयोनी, यज्ञादिकही कर्म और परलोकमें धर्मही महाबंधु है, इसमें सन्देह नहीं । हे देवि ! बहुत जन्म वैदिक कर्म करके फिर आगमधर्ममें प्रवृत्त होगा ॥ ३९ ॥ ४० ॥

तत्र सम्प्राप्यते मुक्तिः कर्मबन्धविनाशिनी ।
ततस्तु बहुजन्मान्ते ज्ञानमासाद्य मुच्यते ॥ ४१ ॥

उससे कर्मबन्धनविनाशिनी मुक्ति प्राप्त होती है। आगम धर्ममें प्रवृत्त रहकर बहुत जन्मोंके पीछे मुक्ति मिलेगी ॥ ४१ ॥

कर्मणा लभ्यते भक्तिर्भक्त्या ज्ञानमुपालभेत् ।
ज्ञानान्मुक्तिर्महादेवि सत्यं सत्यं मयोच्यते ॥ ४२ ॥

कर्मसे भक्ति, भक्तिसे ज्ञान, और ज्ञानसे मुक्ति प्राप्त होती है। हे महादेवि ! यह मैंने तुमसे सत्यही सत्य कहा है ॥ ४२ ॥

ज्ञानभावे समुत्पन्ने संप्राप्य ज्ञानमुत्तमम् ।
तदा योगी विमुक्तः स्यादित्याह भगवाञ्छिवः ॥४३॥

भगवान् शिवने कहा है, जब ज्ञानभाव उत्पन्न होता है, तब योगी-जन उत्तम ज्ञान प्राप्त करके मुक्त होते हैं ॥ ४३ ॥

न कर्मणः समारम्भान्नैष्फल्यं पुरुषोऽश्नुते ।
तस्मात्कर्म महामाये सर्वदा समुपाचरेत् ॥ ४४ ॥

कर्म करने पर पुरुष गण निष्फलता प्राप्त नहीं करते, अवश्य उसका फल पाते हैं इस कारण हे देवि ! सदा कर्मका आचरण करना चाहिये ॥ ४४ ॥

वैदिकं तान्त्रिकं वापि यदि भाग्येन लभ्यते ।
न वृथा गमयेत्कालं द्यूतक्रीडादिना सुधीः ॥ ४५ ॥

यदि भाग्यसे वैदिक वा तान्त्रिक कर्म करसके, तौ बुद्धिमान् मनुष्य जुए इत्यादिके द्वारा कालातिपात करके वृथा समय नष्ट न करें ॥ ४५ ॥

गमयेद्देवतापूजाजपयज्ञस्तवादिना ।
द्विविधश्चैव तत्कर्म बाह्यान्तरविभेदतः ॥ ४६ ॥

देवता पूजा, जप, यज्ञ और स्तवादिद्वारा काल क्षय करें, कर्म दो प्रकारके हैं; बाह्य और आन्तरिक ॥ ४६ ॥

बाह्यश्चानियमासक्तं मानसं न तथा पुनः ।
अशुचिर्वा शुचिर्वापि यत्र कुत्र स्थलेऽपि वा ॥ ४७ ॥
गच्छंस्तिष्ठन्स्वपन्वापि यद्वा यद्वा वरानने ।
कुर्याच्च मानसं धर्मं न दोषो मानसे क्वचित् ॥ ४८ ॥

बाह्य कर्म अनियम द्वारा नहीं किया जा सकता, किन्तु मानासिक वा आन्तरिक कर्ममें ऐसा नहीं है अपवित्र हो वा पवित्र हो, जिस किसी स्थलमें स्थिति करते हो, चलते चलते हो, अथवा जो कोई कार्य करते करते हो मानस धर्मका आचरण करे। क्योंकि, मानसमें कोई दोष नहीं है ॥ ४७ ॥ ४८ ॥

सर्वेषां कर्मणां श्रेष्ठं जपज्ञानं महेश्वरि ॥
जपयज्ञो महेशानि मत्स्वरूपो न संशयः॥ ४९ ॥

हे महेश्वरि ! जपयज्ञ सभी कर्मोंसे श्रेष्ठ है, जपयज्ञ मेरा स्वरूप है इसमें सन्देह नहीं ॥ ४९ ॥

जपयज्ञे हि तिष्ठेद्यो बाह्ये वा चान्तरोऽपि वा ।
सर्वदा परमेशानि जीवन्मुक्तो न संशयः ॥ ५० ॥

बाह्यमें हो वा अन्तरमें हो, जो मनुष्य जपयज्ञमें नियमासक्त होता है, उसको निःसन्देह जीवन्मुक्त जानना चाहिये ॥ ५० ॥

वैदिकास्तान्त्रिका ये ये धर्म्माः सन्ति महेश्वरि ।
सर्वे ते जपयज्ञस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥ ५१ ॥

हे देवि ! वैदिक हों वा तान्त्रिक हों, जो जो धर्म जगत्में विद्यमान हैं, वह सब जपयज्ञके षोडशांश नहीं होंगे ॥ ५१ ॥

ग्रहभूतपिशाचाद्या यक्षरक्षोगणाश्च ये ॥
व्याघ्राद्या जन्तवो देवि तथैव कुपितान्तराः ॥ ५२ ॥

ग्रह, भूत, पिशाच, यक्ष और रक्षोगण व्याघ्रादि कुपितान्तर हिंसक जन्तुगण ॥ ५२ ॥

डाकिन्यो गुह्यकाश्चैव गन्धर्वाश्च सरीसृपाः ।
दानवा भैरवा दुष्टा ये वै श्मशानवासिनः ॥ ५३ ॥

डाकिनीगण, गुह्यकगण, गंधर्वगण, सरीसृपगण, दानवगण, भैरवगण, और श्मशानवासी दुष्टगण ॥ ५३ ॥

केऽपि नेच्छन्ति तं देवि जापिनं भयविह्वलाः ।
न स्पृशन्ति च पापानि कदापि साधकं प्रिये ॥ ५४ ॥

सबही भयविह्वल होकर जपकारी व्यक्तिका दर्शन नहीं करसकते हे प्रिये ! सब पाप साधक व्यक्तिको कभी स्पर्श नहीं कर सकते॥५४॥

फलमेतद्वाचिकस्य जपस्य परिकीर्त्तितम् ।
तस्माच्छतगुणोपांशुः सहस्रो मानसो मतः ॥ ५५ ॥

मैं तुमसे वाचिक जपका फल कहता हूं, उपांशु जपसे उसका शत गुण और मानसिक जपसे उसका सहस्रगुण फल प्राप्त होताहै॥५५॥

मन्त्रमुच्चारयेद्वाचा वाचिको जप ईरितः ।
किञ्चित्सुश्रवणोपेत उपांशुः परिकीर्त्तितः ॥ ५६ ॥

उच्चवाक्यद्वारा मंत्रका उच्चारण करनेपर उसको वाचिक जप और किंचित् श्रवणयोग्य जपही उपांशु जप है ॥ ५६ ॥

निजकर्णगोचरो यो मानसः परिकीर्त्तितः ।
वाचिकस्तु जपो बाह्यो मानसोऽभ्यन्तरो मतः॥५७॥

और जो अपने कर्णगोचर न हो, वही मानसिकजप है, वाचिक जपही बाह्य जप और मानासिकजपको ही आभ्यन्तर जप कहते हैं५७॥

उपांशुर्मिश्र एव स्यात्त्रिविधोऽयं जपः स्मृतः ।
जपेन देवता नित्यं स्तूयमाना प्रसीदति ॥ ५८ ॥

और उपांशु जपको मिश्र जप कहते हैं, इस भाँति जप तीन प्रकारका होता है । जपद्वारा स्तूयमान देवता प्रसन्न होते हैं ॥ ५८ ॥

प्रसन्ना विपुलान्कामान्दद्यान्मुक्तिञ्च शाश्वतीम् ।
साधनञ्च जपश्चैव ध्यानं चैव वरानने ।
नाल्पेन तपसा देवि केनापि कुत्र लभ्यते ॥ ५९ ॥

और प्रसन्न होकर विपुल काम्य विषय और अन्तमें शाश्वती मुक्ति प्रदान करते हैं । हे वरानने ! साधन, जप और ध्यान अल्प तपस्यासे कहीं भी प्राप्त नहीं होता ॥ ५९ ॥

यदि भाग्येन देवेशि बहुजन्मार्जितेन च ।
प्राप्यते यत्र तच्चेत्तु जन्मनाप्येकमोक्षभाक् ॥ ६० ॥

हे देवेशि ! यदि जन्मार्जित पुण्यके बलसे वह सब प्राप्त हों तो एक जन्ममें ही मोक्ष प्राप्त होसकता है ॥ ६० ॥

ब्रह्मज्ञानञ्च यत्प्रोक्तं समाधिस्तत्प्रकीर्त्यते ।
इत्येवं कथितं रम्यं समासेन महेश्वरि ।
इतः परं महादेवि किं पुनः श्रोतुमिच्छसि ॥ ६१ ॥

जो ब्रह्मज्ञान कहा है, उसीको समाधि कहते हैं हे महादेवि ! यह मैंने तुम्हारे निकट सक्षपसे मनोहर गुप्त विषय वर्णन किया, अब इसके पीछे तुम क्या सुननेकी इच्छा करती हो सो कहो ॥ ६१ ॥

इति श्रीयोगिनीतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे देवीश्वरसम्बादे चतुर्विंशति साहस्रे भाषाटीकायात्रयोदशः पटलः ॥ १३ ॥

श्रीदेव्युवाच ।

भो देव परमानंद महायोगेश्वर प्रभो ।
शुश्रूषा यत्र मे देव कृपया कथ्यतां गुरो ॥ १ ॥
श्रुतं विप्रस्य चरितं रेतसस्ते सनातन ।
प्लवश्च यवनश्चैव सौमारश्च महेश्वर ॥ २ ॥

तेषां रेतःसमुद्भूता म्लेच्छास्ते कामपालकाः ।
कथं जाता महादेव वद मे करुणामय ॥ ३ ॥

श्रीदेवीने कहा—हे महायोगेश्वर परमानन्द देव प्रभो ! मैं जो सुनना चाहती हूं, आप कृपापूर्वक उसका वर्णन कीजिये । हे सनातन गुरो ! मैंने विप्रचरित और आपके वीर्यका तेज सुना । प्लव, यवन, सौमार गणोंके वीर्योत्पन्न म्लेच्छ गण जो कामरूपके पालक हैं, उन्होंने किस प्रकार कहाँसे जन्म ग्रहण किया ? आप कृपा करके यह सब कहिये ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥

ईश्वर उवाच ।

शाल्वपुत्राश्च बाह्लीका मृताः कौरवसंयुगे ।
नान्यो वंशधरः कश्चित्तद्वंशे तु त्रिलोचने ॥ ४ ॥

ईश्वर बोले—हे देवि ! शाल्वपुत्र बाह्लिकगण कौरवसमरमें निहत हुए हैं, हे त्रिलोचने ! उस वंशमें अन्य कोई वंशधर नहीं था ॥ ४ ॥

तदा बाह्लीकरमणी कीर्मिर्गुणवती शुभा ।
युवती सुन्दरी रम्या तपःशीला महामतिः ॥ ५ ॥
पुत्रेच्छया गता काशीं तपस्तेपे दिवानिशम् ।
स्थित्वा विश्वेश्वराग्रे तु द्वारे मे मुक्तिमण्डपे ॥ ६ ॥

उसी समय परम सुन्दरी मनोरमा सुन्दरी युवती महामति तपःशीला गुणवती बाह्लिकरमणी कल्याणिनी कीर्मि पुत्र प्राप्त होनेकी इच्छासे काशीमें आनकर विश्वेश्वरके अग्रद्वार मुक्तिमण्डपमें स्थित हो दिन रात तपस्या करने लगी ॥ ५ ॥ ६ ॥

तदा बालिसुतो बाणो महाकालो महाबलः ।
तद्द्वारपालको देवि शुशुभे तां निरीक्ष्य च ॥ ७ ॥

मदधीकारमादाय भैरवं काममोहितः ।
कपालमाली मदिरामोदितोन्मत्तवेषवान् ॥ ८ ॥

उसी समय बलिपुत्र वाण और महाबल महाकाल विश्वेश्वरके द्वारपाल थे, तिनके मध्य मेरे अधिकारमें स्थित भैरव शोभायमान कीर्मिको देखकर कामसे मोहित हुआ कपालमालाधारी मदिरासे मत्त, उन्मत्त वेशवान् ॥ ७॥८ ॥

तपस्विवेषमास्थाय निर्लज्जो रतिनायकः ।
कीर्मिर्जाता महादेवि बन्धूकामलकद्युतिः ॥ ९ ॥
भैरवो विपुलस्तत्र ततो जातो महाङ्कुशः ।
कीर्मिः सुतो महादेवि महाकालस्य रेतसः ॥ १० ॥

तपस्वी वेषधारी, निर्लज्ज रतिनायक भैरवने कीर्मिके संग प्रेम पाशमें बद्ध होकर सहवास किया। हे महादेवि! इससे कीर्मिके महाङ्कुशनामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ। बन्धूकामलक (दुपहरीके पुष्पके समान) इस पुत्रकी कान्ति देखनेसे कीर्मि अतिशय आल्हादित हुई। महाकालके वीर्यसे यह कीर्मिका पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ ९ ॥ १० ॥

वात्सल्यं तत्र दृष्ट्वाहं तत्पुत्रो भैरवस्य च ।
तयानिशं रतिं चापि महाङ्कुशमहाभुजम् ॥ ११ ॥
राज्याप्ति सह तस्यापि कीर्मिचेष्टां च शाम्भवि ।
कामरूपांतकः शाल्वो राज्यं प्राप्तो महाङ्कुशः॥ १२॥

भैरवके उस पुत्रको देखनेसे मुझको अत्यन्त वात्सल्य उत्पन्न हुआ। हे शाम्भवि! महाभुजशाली महाङ्कुश अत्यन्त यत्नसहित ललित और पालित होने लगा। कीर्मिकी तपस्यासे उसको राज्य प्राप्त हुआ। कामरूपान्तक शाल्व इस प्रकार महाङ्कुश रूपमें राज्यको प्राप्त हुआ ११-१२

कीर्मियोनिं समासाद्य कुलाचारपरायणः ।
समर्च्चयद्यथा काश्यां तथा तत्रापि सर्वदा ॥ १३ ॥

वह शाल्व कीर्मिके गर्भसे उत्पन्न होकर कुलाचारपरायण हुआ और सदाही काशीमें वास करके तुम्हारी पूजा करने लगा ॥ १३ ॥

त्वत्पूजा तत्र महती भविष्यति दिवानिशम् ।
महाङ्कुशं समुद्भूय काश्यामास्कन्दनं कुतः ॥ १४ ॥
ततः प्लवेतिनामा च जगाम मणिमण्डपम् ।
एवं ते कथितं देवि चरितं प्लवसम्मतम् ॥ १५ ॥

हे देवि ! वहां रातदिनही तुम्हारी महती पूजा होगी, इसमें सन्देह नहीं । महाङ्कुशकी उत्पत्तिके पीछे अन्य काशीमें आक्रमण और आस्कन्दादि कुछ नहीं है । फिर वह प्लवनामसे विख्यात होकर मणिमण्डपमें गया । हे देवि ! यह मैंने तुमसे प्लवचरित्र वर्णन किया ॥ १४ ॥ १५ ॥

यावनं चरितं किञ्चित्कथयामि शृणुष्व तत् ।
आसीत्त्रेतायुगे राजा बाहुर्धर्मपरायणः ।
महाबुद्धिर्महायोद्धा सूर्यवंशसमुद्भवः ॥ १६ ॥

हे देवि ! कुछेक यवनचरित्र वर्णन करता हूं सो सुनो । त्रेतायुगमें बाहुनामक महाबुद्धि महायोद्धा धर्मपरायण एक सूर्यवंशीय राजा था ॥ १६ ॥

पितृशत्रून्विनिर्जित्य सप्तद्वीपां वसुन्धराम् ।
बुभुजे परम कामं योगध्यानं तु विस्मृतम् ॥ १७ ॥

वह पिताके समस्त शत्रुओंको जीतकर सप्तद्वीपवाली पृथ्वीमें सब परम भोग्य विषय भोगने लगा । किन्तु योग ध्यानादि सब भूल गया ॥ १७ ॥

बहुकाले महामाये ततः स्वमदमोहितः ।
मत्तोधिकोऽधिको राजा नास्ति भूमण्डलेऽधुना ॥१८
निपात्य पितृशत्रून्यत्पितृश्राद्धं कृतं मया ।
एवं जातो ह्यहंकारः सर्वनाशकरो हि यत् ॥ १९ ॥

हे महामाये ! फिर बहुत कालमें बाहुराजा अपने मदसे मोहित होकर विचारने लगा कि इस समय पृथ्वीमण्डलमें मेरी अपेक्षा बल-वीर्य वैभवादिसम्पन्न राजा और कौन है ? मैंने पिताके शत्रुओंको मारकर तब पितृश्राद्ध किया है, इस प्रकार सर्वनाशकर अहंकार उसके मनमें उत्पन्न हुआ ॥ १८ ॥ १९ ॥

तस्मात्तु पापसञ्चारो जातस्तस्य महीभुजः ।
पापात्मा यो भवेद्राजा राजता न कदाचन ॥ २० ॥

इसी कारण उस महीभुज राजाको पापका सञ्चार हुआ । जो राजा पापात्मा होता है, उसका राज्य कभी नहीं रहता ॥ २० ॥

अहंकारो युद्धचर्य्या सदा नैवं व्यवस्थितम् ।
महापापानि सर्वाणि साङ्गान्येतानि निश्चितम् ॥ २१ ॥

अहंकार और युद्ध, यह सदैव निश्चित नहीं हैं यह सब वीरोंके पक्षमें निन्दनीय, विनाशके हेतु और महादोषाकर हैं ॥ २१ ॥

तस्य तेनैव भावेन राजलक्ष्मीर्विनिर्गता ।
आविर्भूतो हैहयश्च तालजंघा नृपोत्तमाः ॥ २२ ॥

इसी कारण बाहुराजकी राजलक्ष्मी शीघ्र विच्युत होगई । तत्काल तालजंघ और हैहयराजका आविर्भाव हुआ ॥ २२ ॥

मन्त्रयित्वा च राजनो लङ्घयित्वाम्बुधिं तदा ।
व्यजिताः करदानेन प्रापुरुत्तरकोशलान् ॥ २३ ॥

आदौ पराजितस्तैस्तु बाहुर्मासेन निष्कृतः ।
जितराज्यो बाहुराजः सस्त्रीको वनमाययौ ॥ २४ ॥

राजाओंने एकत्र मिलित होकर मंत्रणापूर्वक समुद्र लंघन करके बाहुराजको परास्त करनेके पीछे उत्तरकोशलका अधिकार कर लिया बाहुराज्य क्रमशून्य थे, अतएव एकही मासमें पराजित हुए। हृतराज्य बाहुराज स्त्रीसहित वनको चले गये ॥ २३ ॥ २४ ॥

ममार तद्वने बाहुः समस्तं निष्प्रभं यथा ।
तत्पुत्रः सगरो धीरो महावीर्यपराक्रमः ।
विसर्जितौ तेन भूपौ तालजङ्घोथ हैहयः ॥ २५ ॥
अवमानाद्वसिष्ठस्य तत्तयोरीदृशी गतिः ।
पुनश्च तौ च राजानौ यवनौ प्राणकातरौ ॥ २६ ॥
वसिष्ठं शरणं यातौ रक्ष रक्षेति वादिनौ ।
ततस्तान्यवनान्विप्रो वसिष्ठस्त्वभयं ददौ ॥ २७ ॥

वहां उन्होंने प्राणत्याग किया, इससे सबही निस्तेज होगये। बाहुका पुत्र सगर, धीर, महावीर्य और महापराक्रमशाली था। उस भुजबलसे तालजंघा और हैहय गणोंको राज्यसे दूर किया था। उन्होंने वसिष्ठजीका अपमान किया था, इसी कारण उनकी ऐसी दुर्दशा हुई थी। इन दोनों यवनराजने प्राणभयसे कातर होकर वसिष्ठके निकट आगमन पूर्वक रक्ष रक्ष कहकर आश्रय लिया। वसिष्ठने इन यवनोंको अभयदान दिया ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥

एतस्मिन्नन्तरे भूपः सगरः क्रोधमूर्च्छितः ।
तान्हन्तुकामो नृपतिर्वसिष्ठान्तिकमाययौ ॥ २८ ॥
तं तथाभूतमालोक्य वसिष्ठो ब्रह्मसम्भवः ।
उवाच सगरं देवि धर्मज्ञं बाहुनन्दनम् ॥ २९ ॥

उसी समयमें सगरराज क्रोधसे मूर्छित हो उनके विनाश करनेकी इच्छासे वसिष्ठके समीप उपस्थित हुआ। ब्रह्मसम्भव वसिष्ठ ऋषिने धर्मज्ञ बाहुनन्दन सगरराजाको आया हुआ देखकर कहा ॥ २८ ॥ २९ ॥

बाहुनन्दन माहिंसीरभयं दत्तवानहम् ।
तच्छ्रुत्वा स्थगितो राजा बाहुजो ह्यभवत्कृती ॥३०॥

हे वीर बाहुनन्दन! तुम इनको मतमारना मैंने इनको अभय दिया है। यह सुनकर बाहुराज कृतिवर सगरने स्थगित (आश्चर्यको प्राप्त) होकर विचार किया ॥ ३० ॥

ब्रह्मवाक्यं वृथा न स्यात्प्रतिज्ञा मेऽपि पूर्वजा ।
इदानीं किं करोम्यद्य संकटं समुपस्थितम् ॥ ३१ ॥

मैंने पहिले प्रतिज्ञा करी है कि कभी ब्रह्मवाक्यका अपमान नहीं करूंगा, अब मैं क्या करूं, मुझको विषम संकट उपस्थित है ॥३१॥

इति सञ्चिन्त्य तत्सर्वं वसिष्ठं स न्यवेदयत् ।
हन्मि तान्मानुषगणान्प्रतिज्ञा मे कृता पुरा ॥ ३२ ॥

यह सब विचारकर वशिष्ठजीसे निवेदन किया। मैंने पूर्वमें प्रतिज्ञा की है कि इन सब यवनोंको हनन करूंगा ॥ ३२ ॥

तत्र त्वद्वचनं श्रुत्वा हतोऽहं किं करोम्यतः ।
त्वद्वाक्यमन्यथा कर्तुं नाहं शक्तो मुनीश्वर ॥ ३३ ॥

अब आपका वचन सुनकर मैं हतबुद्धि हुआ हूं, क्या करूं कुछ स्थिर नहीं करसकता. हे मुनिवर! मैं आपका वचनभी अन्यथा नहीं करसकता ॥ ३३ ॥

यदोपायं नो करोषि श्रेयो मे मरणं तदा ।
एवं श्रुत्वा वसिष्ठोऽसौ सत्वरं प्रत्यभाषत ॥ ३४ ॥

यदि आप इसका उपाय न करेंगे, तो मेरा मरनाही श्रेष्ठ है। यह वचन सुनकर वशिष्ठने शीघ्र उत्तर दिया ॥ ३४ ॥

वसिष्ठ उवाच ।

मा विषादं गच्छ सखे कर्त्तव्यं यच्छृणुष्व तत् ।
तवारातीनिमान्सर्वान्मुण्डयित्वा शिरांसि तु ।
वेदाचारबहिर्भूतान्देशात्त्वं कुरु दूरतः ॥ ३५ ॥

वसिष्ठजी बोले—हे सखे! तुम विषाद मत करो । मुझसे कर्त्तव्य सुनो। आपने इन सब शत्रुओंका शिरमुण्डन और इनका वेदाचार बहिर्भूत करके देशसे दूर निकाल दो ॥ ३५ ॥

हिमाद्रेः पश्चिमे भागे देशे तु यवनो नृपः ।
इत्थं मे वचनं तिष्ठेत्प्रतिज्ञाऽपि च ते विभो ॥ ३६॥
शिरसां कृन्तनं युद्धे मुण्डनं तद्वदेव हि ।
वेदेऽपि स्थिरमेतद्धि समानं समुदाहृतम् ॥ ३७ ॥

हिमाचलके पश्चिम भागमें यवन देश है. वहां इनको निकाल दो । तो तुम्हारी प्रतिज्ञा भी मिथ्या नहीं होगी, क्योंकि शिरछेदन और शिरमुण्डन एक कार्य है. वेदमें यह दोनों कार्यही समान कहे गये हैं ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

ईश्वर उवाच ।

इत्थं तद्वचनं श्रुत्वा सगरोऽपि तथाकरोत् ।
तेऽपि वै क्षत्रियाः सर्वे हैहयास्तालजङ्घकाः ।
विडम्बिता विहीनास्ते सदा मुण्डितमस्तकाः॥३८॥

ईश्वरने कहा-वसिष्ठजीका यह वचन सुनकर सगरनेभी उनके प्रति वैसाही आचरण किया । क्षत्रिय हैहय और तालजंघगण इस प्रकार मुण्डितमस्तक विडम्बित (अपमानित) और हीन होकर ॥ ३८ ॥

सुषेणं मुनिमाश्रित्य सदाचारविवर्जिताः ।
सुषेणस्योपदेशात्ते तपस्तेपुः सदाश्रिताः ॥ ३९ ॥

सुषेण मुनिका आश्रय ग्रहणपूर्वक सदाचाररहित होकर रहे अनन्तर मुनिके उपदेशसे उनने सदा तपस्या करनी आरंभ की ॥ ३९ ॥

यमाश्रित्य महादेवि स्वेच्छाचारपरायणाः ।
तामसास्ते महादेवि तामसं भावमाश्रिताः ॥ ४० ॥

हे महादेवि ! वह स्वेच्छाचारपरायण थे. अतएव तामस भाव ग्रहण पूर्वक तामसधर्मी हुये ॥ ४० ॥

संयोगश्च वियोगश्च मन्त्राणाश्च द्विधा गतिः ।
सात्त्विके राजसे देवि संयोगः फलदायकः ।
बाह्यान्तरवियोगेन संयोगोपि ह्यनुत्तमः ।
तामसे तु वियोगः स्याद्बाह्यसिद्धिफलप्रदः ॥ ४१ ॥

समस्त मंत्रोंकी गति संयोग और वियोग भेदसे दो प्रकार है । हे देवि ! सात्विक और राजसधर्ममें संयोग फलदायक बाह्यान्तर वियोगसहित संयोगभी उत्तम है, तामसमें वियोगबाह्यभी सिद्धिप्रद होता है ॥ ४१ ॥

तामसः परलोके तु बाह्यस्तद्धर्म ईरितः ।
तेषां तेनैव भावेन प्रसादो मेऽभिजायते ॥
मया दत्तो वरस्तेभ्यः शृणु कामयितुर्वरम् ।
भुंक्ष्वेदानीमिदं राज्यं यवनाभीष्टमेव च ॥ ४२ ॥

तामस परलोकमें बाह्य धर्म कहा जाता है उनके इस तामस भावमें ही मेरी प्रसन्नता होती है, मैंने उसको वर दियाथा, सो उन कामना करनेवालेके वरको सुनो । हे यवनों ! तुम इस समय यह राज्य भोग करके अवस्थान करो ॥ ४२ ॥

काले तथेन्द्वष्टनवोन्मिते शाके कलौ युगे ।
पुण्यदेशाधिपा यूयं भविष्यथ सुनिश्चितम् ॥ ४३ ॥

और कलियुगमें इन्दु अष्ट नव शाक अर्थात् नौसौ इक्यासी(९८१) गत होनेपर तुम निःसन्देह पुण्यदेशके अधिकारी होंगे ॥ ४३ ॥

एवमेव महेशानि कामरूपाधिपः शिवे ।
यवनो मत्प्रसादेन तथान्यपुण्यभूमिषु ।
बहुभूपसमाकीर्णः कलौ भुंक्ते महीं मुदा ॥ ४४ ॥

हे महेश्वरि शिवे ! इस प्रकार यवनगण कामरूपके अधीश्वर हुए थे यवनगण मेरे प्रसादसे कलिकालमें अन्यान्य पुण्यभूमिके अधीश्वर होकर बहुतर यवनराज प्रफुल्लित चित्तसे पृथ्वीको भोगते हैं ॥ ४४ ॥

एवं ते कथितो देवि वृत्तान्तो यावनः सदा ।
इदानीं श्रूयतां युद्धे सौमारचरितं तथा ॥ ४५ ॥

हे देवि ! यह मैंने तुमसे यावनिक वृत्तान्त कहा । अब सौमारगणोंके युद्धके चरित्रकी कथा सुनो ॥ ४५ ॥

एकदाऽमरराजस्तु खाण्डवं वनमाययौ ।
विहाय देवराज्यं च कौशलाङ्ग्या सह स्वयम् ॥ ४६॥

एक दिन अमरराज इन्द्र अमरराज्य छोडकर कौशलाङ्गीके सहित खाण्डव वनमें गये ॥ ४६ ॥

गतेषु बहुकालेषु क्रीडया देवभूभुजः ।
तौर्यत्रिके सम्यगिच्छा जाता बहुविधा तथा ॥ ४७॥

देवराजने वहां बहुतकाल क्रीडा करी । तदनन्तर उनकी तौर्यत्रिकादि (गाना नाचना बजाना इत्यादि) विषयमें सम्यक् वासना उत्पन्न हुई ॥ ४७ ॥

रम्भां तिलोत्तमां काञ्चीं कुरङ्गाक्षां मनोहराम् ।
आदिदेश समानीय नृत्यं कर्तुं च रम्भया ॥ ४८ ॥

ततस्तेन वृताः सर्वा वेश्या ननृतुरन्विताः ।
इन्द्रं विधिविधानेन तोषयामासुरोजसा ॥ ४९ ॥

अनन्तर देवेन्द्रने रंभा, तिलोत्तमा, कांची, कुरङ्गाक्षी, मनोहरा, इन सब स्वर्गकी स्त्रियोंको रंभाके साथ बुलाकर नाचनेकी आज्ञा दी। देवराजसे बुलाई हुई अप्सराओंने नाचना आरंभ किया। अनेक प्रकारके विधानसे स्वर्गकी वेश्याओंने इन्द्रको संतुष्ट किया ॥ ४८ ॥ ४९ ॥

मोहिता चापि कौशाङ्गी देवराजेन सङ्गता ।
तासां नृत्यप्रगीतेन कामोद्रेकोऽभवत्तदा ॥ ५० ॥

अनन्तर कौशाङ्गी मोहित होकर देवराजसे संगत हुई, तब उनके नृत्यगीत द्वारा इन्द्रको काम उत्पन्न हुआ ॥ ५० ॥

एतस्मिन्नन्तरे देवि या स्ववेश्या मनोहरा ।
तया रतिं समकरोद्देवेन्द्रो बलसूदनः ॥ ५१ ॥

फिर सुरासुरप्रणम्य दुर्दान्त दनुजशास्ता बलघातक इन्द्रने मनोरमा नामक स्वर्गवेश्याके प्रति अनुराग प्रदर्शन किया ॥ ५१ ॥

इन्द्रं तद्विधमालोक्य मनो दध्रे तथा तु सा ।
कामवेगेन विभ्रान्ता स्खलिता नृत्यगीतयोः ॥ ५२ ॥

इनको इस प्रकार अनुरक्त देखकर उस मनोहरा स्वर्गकी वेश्यानेभी इन्द्रके प्रति मनोधारण किया। इससे कामावेशके कारण घबडा कर मनोहराका नृत्य गीत स्खलित होने लगा ॥ ५२ ॥

रतिधैर्यं तयोर्जातं तस्यास्तत्स्खलनं पुनः ॥ ५३ ॥
ततस्तस्या मनो ज्ञात्वा कौशाङ्गी क्रोधमूर्च्छिता ।
उवाच निष्ठुरां वाणीं शृणु देवि मनोहरे ॥ ५४ ॥

यह देख और उन दोनोंकी प्रीति उत्पन्न हुई जान कौशाङ्गीने क्रोध मूर्छित हो निष्ठुर वचनोंके द्वारा मनोहरासे कहा-हे मनोहरे! सुनो ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

भूत्वा वेश्या महादुष्टा मद्रतं देवमीहसे ।
अतः प्रचालितं चित्तमावयो रतिकर्माणि ॥ ५५ ॥

तू स्वर्गकी महादुष्ट वेश्या होकर मुझमें प्रीति करते हुए देवेन्द्रकी इच्छा करती है इसी कारण हमारे रतिकार्यमें विघ्न उपस्थित कराकर उसको भग्न कर दिया ॥ ५५ ॥

अतो वेश्ये याहि भुवि राजानं पतिमाप्नुहि ।
एवमुक्तं दुष्टशापं कौशाङ्गीमुखनिःसृतम् ।
श्रुत्वा च मूर्च्छिता भूत्वा कौशाङ्गीचरणेऽपतत् ॥५६॥

अतएव तू मर्त्यलोकमें जाकर नरपतिको पति प्राप्त करो । कौशाङ्गीके मुखसे निकला इस प्रकार दुष्टशाप सुनकर मनोहरा मूर्च्छित हो कौशाङ्गीके चरणोंमें गिरगई ॥ ५६ ॥

विललाप सुदुःखार्ता धृत्वा च चरणौ मुहुः ।
ततो जगाद कौशाङ्गी द्वात्रिंशद्वायनं भुवि ।
भुक्त्वा मनोहरे शापं पूर्णे स्वास्थ्यं गमिष्यसि ॥५७॥

वारम्वार चरण पकड कर विलाप करने लगी यह देखकर कौशाङ्गीको करुणा उत्पन्न हुई । उसने कहा तू बत्तीसवर्ष शाप भोगनेके पीछे फिर सुस्थता लाभ करेगी ॥ ५७ ॥

मन्दाकिन्यां त्यक्ततनुस्ततः स्वर्गं गमिष्यसि ।
कङ्कता मोहिनी सा तु धार्त्तराष्ट्रं पतिं गता ॥ ५८ ॥

फिर तू मन्दाकिनीमें मनुष्यशरीर छोडकर स्वर्गमें जायगी । उस मनोहराने मर्त्यलोकमें कंकती नामक मोहिनी कामिनी होकर धार्तराराष्ट्रको पति लाभ किया ॥ ५८ ॥

कौरवे च कुरुक्षेत्रे हते नारिशतं मृतम् ।
तूर्णञ्च कङ्कती सागाच्चन्द्रचूडागिरिं भिया ॥ ५९ ॥

अत्युच्चशिखरे तस्य सा तस्थौ भृशदुःखिता ।
प्राप्ता ऋतुं स्वर्गवेश्या द्वितीयदिवसे निशि ।
कामबाणैश्च संविद्धा मूर्च्छिता तापमागता ॥ ६० ॥

फिर कुरुक्षेत्रके समरमें कौरवोंके निहत होनेपर सौ नारियोंने प्राण त्याग किया कंकती डरकर शीघ्रतासहित चन्द्रचूडपर्वतमें भाग गई । कंकती अत्यन्त दुःखित होकर उस पर्वतके अत्यन्त ऊंचे शिखरमें वास करने लगी एक समय वही स्वर्गवेश्या ऋतुमती होकर दूसरे दिन कामबाणसे विद्ध हो अत्यन्त सन्तापित हुई ॥ ५९ ॥ ६० ॥

इन्द्रो रथसमारूढोऽयादपश्यत्तु सुन्दरीम् ।
सालंकारा कुशद्वीपात्स्मृत्वा तत्पूर्वकारणम् ॥ ६१ ॥
वेदयित्वा च तत्सर्वं तां कान्तां काममोहिताम् ।
रतिं कृत्वा गतस्तस्याः सुतोभूच्च ह्यरिन्दमः ॥ ६२ ॥

इसी समय देवराजने रथमें चढकर कुशद्वीपसे गमन करते करते गहनोंसे युक्त उस सुन्दरीको देखा । उन्होंने पूर्वकारण स्मरणपूर्वक उस काममोहिता कांताको समस्त विदित कराया । फिर आसक्त होकर उसके संग सहवास किया इसीसे गंधमादनपर्वतपे कंकतीके अरिन्दम नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ ६१ ॥ ६२ ॥

कङ्कत्याः परमेशानि पर्वते गन्धमादने ।
यतो जग्राह तामिन्द्रो द्वितीयदिवसे ऋतौ ॥ ६३ ॥
ततः सोरिन्दमश्चाभून्म्लेच्छाचारपरायणः ।
व्याधवृत्तिरतो घोरः सर्वदा प्राणिहिंसकः ॥ ६४ ॥
सर्वमांसादनो देवि किरातो घटितो यथा ।
सर्वपुण्यबहिर्भूतः सर्वपापसमाकुलः ॥ ६५ ॥

मद्यमांसमदामोदी कदाचारपरायणः ॥
ईदृशं तं सुतं दृष्ट्वा कङ्कती भृशदुःखिता ॥ ६६ ॥
तपस्तेपेऽतिगाढं च सारात्सारं परात्परम् ।
तदा तस्याः पुरः स्थित्वा देवराजो जगाद ह ॥ ६७॥

इन्द्रने ऋतुके दूसरे दिन उससे सहवास किया था । इसी कारण अरिन्दम म्लेच्छाचारपरायण व्याधवृत्तिनिरत घोरतर सब प्राणियोंका हिंसक मद्य मांस सम्भोगमें आमोदी और किरातके समान सर्वमांसभक्षी । कदाचारपरायण (निन्दितआचारयुक्त पवित्र कर्मसे रहित) और सर्वप्रकारके पापोंमें आसक्त होगया । कंकतीने पुत्रका ऐसा आचरण देख अत्यन्त दुःखित होकर घोर तप आरम्भ किया । तब देवराजने उसके सन्मुख खडे होकर कहा ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ ॥ ६६ ॥ ६७ ॥

इन्द्र उवाच ।

किन्निमित्तं तपस्तप्तं त्वया कंकति मे वद ।
तपसा तेऽतिसंतुष्टो यदीच्छसि ददामि च ॥ ६८ ॥

इन्द्रने कहा हे कंकति ! तुम किस कारण तप करती हो ! मुझसे कहो । मैं तुम्हारे तपसे अत्यन्त सन्तुष्ट हुआहूं । जो इच्छा करोगी वही दूंगा ॥ ६८ ॥

कंकत्युवाच ।

सुतस्ते ईदृशो जातः सदा पापपरायणः ॥
द्रष्टुं न शक्ता देवेश यथेच्छसि तथा कुरु ॥ ६९ ॥
देवाधिदेव देवेश सुतोयं ते सुराधिप ।
भवेत्सत्यं न सन्देहः पापचारी नराधमः ॥ ७० ॥
यतस्त्वं देवतानाथो विराधोयं सुतस्तव ।
यथेच्छसि तथा नाथ कुरु मां नय हे प्रभो ॥ ७१ ॥

किंकरीत्वं पार्श्वदेशे किङ्करीत्वे नियोजय ।
देवाधीश वरो ह्येष नान्यः कामः कदाचन ॥ ७२ ॥

कंकती बोली मेरे गर्भसे तुम्हारी जो सन्तान उत्पन्न हुई है । वह सदाही पापाचारमें निरत है हे देव ! मैं उसका पापाचार देखनेमें समर्थ नहीं हूं । आप इस विषयमें जो उत्तम हो वही कीजिये । हे देवाधिदेव ! देवेश ! तुम्हारा यह पुत्र नराधम होगा इसमें सन्देह नहीं । हे इन्द्र ! आप देवताओंके अधिनाथ हैं । तुम्हारा पुत्र ऐसा नराधम हुआ । इस विषयमें आपकी जो इच्छा हो वह कीजिये मुझको शीघ्रही जहा इच्छा हो वहां ले चलिये इस किंकरीको लेकर किंकरी कार्यमें नियुक्त कीजिये । हे देवाधिप ! यही मेरी कामना है । अन्य कामना मेरी नहीं है ॥ ६९ ॥ ७० ॥ ७१ ॥ ७२ ॥

इन्द्र उवाच ।

शृणु प्रेयसि मद्वाक्यं शापकालो गतस्तव ।
त्वरितं नेष्याम्यधुना त्वामहं सुस्थिरा भव ॥ ७३ ॥

इन्द्रने कहा–हे प्रेयसि ! सुनो तुम्हारा शापकाल बीत गया । अब तुझको शीघ्रही ले जाऊंगा । स्थिर होओ ॥ ७३ ॥

पुत्रस्य पापयोगेन वंशनाशो ध्रुवं भवेत् ।
अतः शताष्टविंशे च पुरुषे क्षयिते सति ॥ ७४ ॥
सौमारवासिनो भूत्वा वंशे मे राजपुङ्गवाः ॥ ७५ ॥
न्यायबुद्धिमहोत्साहा देवविप्रपरायणाः ॥
भविष्यन्ति न सन्देहो ब्रह्मज्ञा ब्रह्मवादिनः ।
गच्छन्ति चापि वैकुण्ठे सर्वेस्युर्विष्णुवल्लभाः ॥७६ ॥
लयमेष्यन्ति तत्रैव यावदाभूतसंप्लवम् ॥ ७७ ॥

पुत्रके पापयोगसे वंशका नाश होता है । अतएव एकसौ अट्ठाईस पुरुषके क्षय होनेपर त्वदीयगर्भज मद्वंश्यगण सौमारदेशमें वास करके राजश्रेष्ठ होंगे । वह सब पुण्यश्लोक अर्थात् ईश्वरभक्त धर्मरत सदा-चारपरायण न्यायबुद्धिसम्पन्न महोत्साहशाली ब्रह्मतत्त्वज्ञ और देव-द्विजपरायण होंगे । इसमें सन्देह नहीं । वह सभी विष्णुभक्तिपरायण होकर वैकुण्ठमें जायंगे फिर जब प्रलय होगी तब वह लयको प्राप्त होंगे ॥ ७४–७७ ॥

ईश्वर उवाच ।

ततस्तान्तु समादाय जगामेन्द्रो निजालयम् ।
तथा काले तु सौमारः कामरूपाधिपोऽभवत् ॥७८॥

ईश्वरने कहा तदनन्तर इन्द्र उस कंकतीको अपने स्थानमें ले गया यथाकालमें कंकती गर्भज सौमारगण कामरूपके अधीश्वर हुए॥७८॥

पूर्वभागे च सौमारः कुवाचः पश्चिमे तथा ।
दक्षिणे यवनस्तद्वदुत्तरे प्लव एव च ॥ ७९ ॥

पूर्वभागमें सौमार पश्चिममें कुवाच दक्षिणमें यवन और उत्तरमें प्लवगणने राज्य किया था ॥ ७९ ॥

एवमेव महादेवि ते सर्वे कामपालकाः ।
एवं ते कथितं देवि सौमारचरितं हि तत् ॥ ८० ॥

हे महादेवि ! यह सब कामरूपके पालक हुए थे हे देवि ! यह मैंने तुमसे सौमारचरित वर्णन किया ॥ ८० ॥

इतः किमिच्छसि श्रोतुं यत्त्वया न श्रुतं क्वचित् ८१॥

इसके पीछे जो कभी तुमने नहीं सुना ऐसा और क्या सुननेकी इच्छा है ? सो कहो ॥ ८१ ॥

इति श्रीयोगिनीतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे देवीश्वरसम्वादे चतुर्विंशति-साहस्रे भाषाटीकायां चतुर्दशः पटलः ॥ १४ ॥

श्रीदेव्युवाच ।

पृच्छामि त्वां रहः किंचित्कामाख्या का वदस्व मे १॥

श्रीदेवीने कहा मैं आपसे गुप्त रीतिपर पूंछती हूं हे देव ! कामाख्या किस प्रकार है ! यह मुझसे कहिये ॥ १ ॥

ईश्वर उवाच ।

या काली परमा विद्या ब्रह्मरूपा सनातनी ।
कामाख्या सैव देवेशि सर्वसिद्धिविनोदिनी ॥ २ ॥

ईश्वर बोले-हे देवेशि ! जो ब्रह्मरूपा सनातनी महाविद्या परमेश्वरी काली है वही सर्वसिद्धिविनोदिनी कामाख्या है ॥ २ ॥

श्रीदेव्युवाच ।

कथं काली ब्रह्मरूपा कामाख्याभून्महेश्वर ।
सर्वं मे कृपया नाथ वद त्वं चन्द्रशेखर ॥ ३ ॥

श्री देवी बोली-हे नाथ ! हे महेश्वर ! हे चन्द्रशेखर ! ब्रह्मरूपा काली किस प्रकार कामाख्या हुई करुणाप्रकाश करके इसका मुझसे वर्णन कीजिये ॥ ३ ॥

ईश्वर उवाच ।

यदा सृष्टिः कृता धात्रा स्वयमेव स्वयम्भुवा ।
तदाहङ्कारदोषेण पूरितोऽसौ पितामहः ॥ ४ ॥

ईश्वर बोले हे देवेशि ! स्वयम्भू ब्रह्माजीने जब सृष्टि करी तब वह पितामह अहंकारके दोषसे परिपूर्ण होगये ॥ ४ ॥

अहङ्कारः सर्वनाशकरः सर्वस्य चेश्वरि ।
तमहङ्कारमादाय स्थितो ब्रह्मा जगद्विभुः ॥ ५ ॥

हे ईश्वरि ! अहंकार सबकाही नाश करता है जगन्निधि ब्रह्मा उस अहंकारको लेकरही स्थित हुए थे ॥ ५ ॥

विस्मृतः सर्ववृत्तान्तः कालिकोक्तो हि यः पुरा ।
केवलाहंमतियुतो धाता भूतो हि सर्वदा ॥ ६ ॥
सर्वकामालयं विश्वं कस्य वा किं निमित्तकम् ।
अज्ञात्वैव महादेवि ब्रह्माहंकारमोहितः ॥ ७ ॥
तं तथाभूतमालोक्य ब्रह्माणं परमेश्वरि ।
तद्देहात्कल्पयामास तदहंकारतः शिवे॥ ८ ॥
दैत्यं परमदुर्द्धर्षं केशिनामानमुद्यतम् ।
निःसृत्य ब्रह्मणो देहाद्दैत्यः परमदारुणः ॥ ९ ॥
धावतिस्म तदा देवि ब्रह्माणं ग्रसितुं ततः ।
ततः पलायनश्चक्रे विष्णुना प्रपितामहः ॥ १० ॥

पूर्वमें महाकालीने जो कहाथा वह सब भूल गये ब्रह्माजी केवल अहंकारमेंही मत्त रहे और सर्व काम भोगालय विश्व किसका है ? इसका क्या होता है इस सबका कुछभी तत्त्व धारण नहीं किया केवल मायावश अहंकारमें पूर्ण होकरही रहे । हे शिवे ! परमेश्वरी कालीने ब्रह्माजीको अहंकारमें मग्न देखकर ब्रह्माके देहस्थित अहंकारसेही परम दुर्द्धर्ष केशिनामक एक दैत्यको उत्पन्न किया यह दैत्य ब्रह्माजीको ग्रास करनेके लिये दौडा यह देखकर ब्रह्मा विष्णुके सहित भागनेमें तत्पर हुए ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥

ततः केशी महादैत्यः पुरं चक्रे च भारते ।
केशीपुरमिति ख्यातं तत्र स्थित्वा हि दानवः ॥ ११ ॥
बुभुजे सकलं देवि भूर्भुवःस्वश्चराचरम् ।
ब्रह्माणं जहि शब्दोभूत्सदा ब्रह्माण्डमण्डले ॥ १२ ॥

तदनन्तर केशी दैत्यने एक पुर बनाया यह केशीपुरके नामसे विख्यात है । यह महादानव वहां वास करके भूर्भुवः स्वः इत्यादि

अखिल चराचर भोगने लगा । ' ब्रह्माको वध करो ' यह शब्द ब्रह्माण्डमें सदाही उठता रहा ॥ ११ ॥ १२ ॥

ततो ब्रह्मा जगद्धाता विष्णुना निरहङ्कृतिः ।
अस्तौषीज्जगतां धात्रीं कालीं विघ्नविनाशिनीम् ॥ १३ ॥

जगद्विधाता ब्रह्माजी इस समय अहंकाररहित होकर विष्णुके सहित जगन्माता विघ्नविनाशिनी कालीकी स्तुति करने लगे ॥ १३ ॥

ब्रह्मविष्णू ऊचतुः ॥

नमः परमकल्याणीं प्रणवात्मानमीश्वरीम् ।
निजबीजस्वरूपाञ्च कामबीजस्वरूपिणीम् ॥ १४ ॥
मुण्डमालावलीरम्यां लोलजिह्वां सनातनीम् ।
मायाबीजस्वरूपां च कूर्चबीजस्वरूपिणीम् ॥ १५ ॥
वन्देहं जगतां धात्रीं कालीं कमललोचनाम् ।
घोरघोषां शिवाशब्दां मुक्तकेशीं दिगम्बराम् ॥ १६ ॥
नमामि कालिकां देवीं महाविघ्नविनाशिनीम् ।
प्रणमामि सदा रुद्रां तां च त्रिभुवनेश्वरीम् ॥ १७ ॥

ब्रह्मा विष्णु कहने लगे । परम कल्याणी प्रणवात्मा ईश्वरीको नमस्कार है जो निजबीजस्वरूपा और कामबीजस्वरूपिणी हैं । उन्हीं मुण्डमालावलीद्वारा मनोहर महाकालीको नमस्कार है जो मायाबीजस्वरूपा और कूर्चबीजस्वरूपिणी हैं । उन्हीं लोलजीभवाली सनातनी जगन्माता कमललोचना कालीमाताकी वन्दना करते हैं। जो घोर शब्दवाली तथा सब गीदडी जिनकी संगिनी हैं । और जो उन्हींकी सदृश शब्द करनेवाली हैं जो खुले बालवाली और नग्न हैं उन महाविघ्नविनाशिनी कालिकामाताको नमस्कार करते हैं । जो भुवनेश्वरी हैं उन विश्वजननी महाकालीको भक्तिपूर्वक प्रणाम करते हैं ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥

ईश्वर उवाच ।

एवं स्तुता ततो देवी ब्रह्मणा विष्णुनापि च ।
सहसाकाशवाण्याह किमिच्छसि पितामह ।
भो विष्णो त्वं महाबाहो किमिच्छसि च तद्वद ॥ १८॥

ईश्वर बोले-ब्रह्मा और विष्णुके इस प्रकार महाकालीकी स्तुति करनेपर सहसा आकाशवाणी हुई । हे पितामह ! तुम क्या वांछना करते हो भो विष्णु तुमभी क्या चाहते हो ? वह कहो ॥ १८ ॥

ब्रह्मविष्णू ऊचतुः ।

जातो दैत्यवरश्चैकः केशीनामा महासुरः ।
आवयोः सकलं नीतं नित्यं तत्तेन मण्डलम् ॥ १९ ॥
हत्वेदानीं तमसुरमावां स्थापय पूर्ववत् ।
देहि दास्यं पदाम्भोजे ह्येतद्धि नौ निवेदनम् ॥ २० ॥

ब्रह्मा विष्णुने कहा केशिनामक एक दैत्यवर महाअसुरने हमारा सम्पूर्ण जगन्मण्डल हरण किया है । इस समय उस असुरको मारकर हमको पूर्वकी समान स्थापन कीजिये । हे देवि ! आपके चरणकमलोंमें हमारा यही निवेदन है ॥ १९ ॥ २० ॥

श्रीकाल्युवाच ।

शृणु ब्रह्मन्नहो वाक्यमहंकारो गतस्तव ।
इदानीं परिसन्तुष्टा जगद्यास्यति तेन्तिकम् ॥ २१ ॥
सर्वं मायामयं तत्ते विश्वं नान्यस्य पद्मज ।
अहंकारन्तु ते दृष्ट्वा विघ्नं दत्तं दुरासदम् ॥ २२ ॥
मया तुभ्यं जगद्धातस्तवाहंकारनिर्मितम् ।

केशिदैत्यस्वरूपं तद्धन्मि विघ्नं स्थिरो भव ।
मा भयं कुरु भो विष्णो स्थिरो भव महामते ॥ २३ ॥

कालीने कहा—अहो ब्रह्मन् सुनो । तुम्हारा अहंकार दूर होगया है । अब यह जानना यह जगत्भी तुम्हारे अधिकारमें होगा । यह मायामय विश्व अन्यका नहीं है । हे पद्मज ! तुम्हारा अहंकार देखकर तुम्हारे प्रति दुर्द्धर्ष विघ्नप्रदान किया था हे जगद्विधातः ! यह विघ्न तुम्हारा अहंकारही केशिदैत्यस्वरूप है । जो हो मैं उसको हनन करूंगी तुम स्थिर रहो भो महामते विष्णो ! तुम भय मत करो स्थिर होओ ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥

ईश्वर उवाच ।

एवमासाद्य आश्वास्य ब्रह्मविष्णू परात्मिका ।
हुंकारेणैव तं भस्म चकार दानवोत्तम् ।
केशिनामासुरं काली विधिमाह ततस्तु सा ॥ २४ ॥

ईश्वर बोले परात्मिका महाकालीने इस प्रकार ब्रह्मा और विष्णुको आश्वासन भरोसा देकर हुंकारसे ही उस दानवेन्द्र महाअसुरके शरीरको भस्म किया । तदनन्तर दनुजकुलविघातिनी उग्रतन्वी महाकाली प्राणियोंके उत्पन्नकर्ता पितामह ब्रह्माजीसे स्नेहमय प्रीतिमय मंगलमय उदार वचनोंके द्वारा कहने लगी ॥ २४ ॥

काल्युवाच ।

अहंकारात्पातकं त जातं ब्रह्मन्महत्तरम् ।
तत्पापस्यापनोदाय क्रियतां पर्वतोत्तमः ॥ २५ ॥
भस्मना केशिदैत्यस्य गोग्रासतृणपूरितः ।
तद्ग्रासभक्षणान्नित्यं गोस्ते पापं क्षयिष्यति ॥ २६ ॥

कालीने कहा हे ब्रह्मन् ! अहंकारके कारण तुमको महत्तर पाप उत्पन्न हुआ है । अतएव अपने उपार्जित उस पापसमूहके दूर करनेको केशिदैत्यकी भस्मद्वारा एक तृणलतापूर्ण पर्वतकी सृष्टि करो यह पर्वत बहुत गोग्रास धारण करेगा । गौगणोंके तृण लतारूप गोग्रास भक्षण करने पर तुम्हारा पाप क्षय होगा ॥ २५ ॥ २६ ॥

ईश्वर उवाच ।

एकीकृत्य च तद्भस्म केशिदैत्यशरीरजम् ।
कमण्डलुजलक्षेपाच्चकार पर्वतं विधिः ॥ २७ ॥

ईश्वर बोले–विधाताने केशिदैत्यके शरीरकी भस्म इकट्ठी करके कमण्डलुका जल छिडकनेसे पर्वतकी सृष्टि की ॥ २७ ॥

नात्युच्छ्रितं नातिनिम्नं गोग्रासबहुना वृतम् ।
तद्ग्रासभक्षणाद्गौश्च तुष्टः पुष्टो भवेद्ध्रुवम् ॥ २८ ॥

यह पर्वत बहुत ऊंचाभी नहीं और बहुत नीचाभी नहीं है वह बहुत गोग्रास धारण करता है उस भस्मजातगोग्रासद्वारा गौगण हृष्ट पुष्ट होने लगा ॥ २८ ॥

अतो गोवर्द्धनं नाम पर्वताय ददौ विधिः ।
यथा यथाश्नाति गौश्च तद्ग्रासं पर्वतोत्तमे ।
तथा तथा क्षयं याति पातकं ब्रह्मणः शिवे ॥ २९ ॥
तावत्तु निष्कृतिर्धातुर्य्यावद्गोवर्धनो गिरिः ।
ततस्तन्निष्कृतिस्तस्य ब्रह्मणः परमेश्वरि ॥ ३० ॥

इसी कारण विधाताने इस पर्वतका नाम गोवर्द्धन रक्खा हे शिवे ! परमेश्वरि ! गोगण जिस परिमाणसे ग्रास भक्षण करने लगे । ब्रह्माका भी उसी परिमाणसे पापक्षय होने लगा इस प्रकार गोवर्द्धनगिरिके द्वारा ब्रह्माने समस्तपापसे छुटकारा पाया ॥ २९ ॥ ३० ॥

एवमेवापराधस्ते प्राधान्ये यदि जायते ।
तत्फलापोहनं ह्येवं सर्वेषाञ्च त्रिलोचने ॥ ३१ ॥

हे शिवे ! यदि इस प्रकार प्रधान मनुष्यके निकट तुम्हारा कोई अपराध हो तो इस प्रकार गोग्रासद्वारा उस पापका पीडन होसकता है ॥ ३१ ॥

ततो ब्रह्मा जगद्धाता विष्णुश्च जगतां पतिः ।
पुनश्च तत्क्रमेणैव अस्तौषीत्परमेश्वरीम् ॥ ३२ ॥

तदनन्तर जगद्विधाता ब्रह्मा और जगत्पति विष्णुने फिर उसी प्रकार परमेश्वरीकी स्तुति करी ॥ ३२ ॥

ततः काली जगन्माता तावुवाच किमिच्छथः ।
ददामि वत्सौ तत्सर्वं भवन्तौ कातरौ कथम् ॥ ३३ ॥

तब जगन्माता कालीने उनसे कहा—हे वत्सो ! तुम क्या इच्छा करते हो ? कहो । मैं तुमको वह सब दूंगी । कातर क्यों होते हो ॥ ३३ ॥

ब्रह्माविष्णू ऊचतुः ।

आवयोर्जगताञ्चैव मङ्गलाय पदाम्बुजम् ।
महामुक्तिप्रदञ्चैव त्वदीयमतिनिर्मलम् ॥ ३४ ॥
अदृश्यमपि गोप्यं हि मातुराकारवर्जितम् ।
कथन्तत्पूजयिष्यावः सर्वमङ्गलदायकम् ॥ ३५ ॥
भूमौ स्थानं कल्पयस्व यजितुं तत्पदाम्बुजम् ।
सर्वदा पूजयिष्यावो महामङ्गलकारणम् ॥ ३६ ॥
आवयोश्चैव सर्वेषां महामुक्तिफलाय च ।
तदावयोर्दानवाद्याः किं करिष्यन्ति चाशुभम् ।
अवश्यं वै तरिष्यावो दुस्तरं त्वत्पदार्चनात् ॥ ३७ ॥

ब्रह्मा और विष्णुने कहा हे मातः ! हमारे और जगत्की मंगलके निमित्त तुम्हारे महामुक्तिप्रद अतिनिर्मल अदृश्य आकारहीन गोप्य और मंगलदायक अत्युच्च पदोंकी हम किस प्रकार पूजा करेंगे ? आप अपने चरणारविन्दोंके पूजनार्थ पृथ्वीमें स्थानकी कल्पना कीजिये । उसी स्थानमें हम महामंगलके कारणस्वरूप महामुक्तिफलप्रद आपके चरणकमलोंकी पूजा करेंगे । इसके द्वारा हमारे देवतोंका अखिल जीवोंका मंगल होगा । तो अशुभकारी सब दानवादि हमारा क्या करसकेंगे ? हम तुम्हारे चरणोंकी पूजा करनेके कारण दुस्तरसेभी निस्तार पावेंगे । इसमें सन्देह नहीं ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

श्रीकाल्युवाच ।

शृणु वत्स महाविष्णो वचनं परमं महत् ।
येन हुङ्कारबीजेन चकार भस्म दानवम् ॥ ३८ ॥
केशिमंत्रं महाबीजं शब्दब्रह्मस्वरूपकम् ।
महातेजोमयं विद्धि तद्बीजं परमं पदम् ॥ ३९ ॥

कालीने कहा हे वत्स महाविष्णो ! मेरे परम महत् वचन सुनो जिस हुंकार बीजसे दानवको भस्म किया है । केशिमंत्र महाबीजभी शब्द ब्रह्मस्वरूप है । वह बीज महातेजोमय और परम पद है ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

केशिपुरे च तद्बीजं केशिं हत्वा निवेशितम् ।
आपातालं क्रोशमात्रं बीजस्य तेजसा व्रतम् ॥ ४० ॥

केशिको हनन करके केशिपुरमें वह बीज स्थापित किया है । और वह क्रोशमात्र पातालपर्यन्त तेजसे ढक रहा है ॥ ४० ॥

अतो हि पूज्यं तत्स्थानं महातेजोमयं ध्रुवम् ।
तत्स्थानं त्वं समागम्य मां पूजय यथेप्सितम् ॥ ४१ ॥

इस कारण वह स्थान पूज्य और निःसन्देह महातेजोमय है तुम उसी स्थानमें जाकर यथेच्छरूपसे मेरी पूजा करो ॥ ४१ ॥

अतिसंगुप्तभावेन ईप्सितं प्राप्यते फलम् ।
देवदानवगन्धर्वैरन्यैरपि महामते ॥ ४२ ॥

वहां अत्यन्त गुप्तभावसे पूजा करनेपर अभिलाषित फल प्राप्त होता है । हे महामते ! देव दानव गन्धर्व और अन्यान्य सभीको पूजा करने पर वही फल प्राप्त होता है । इसमें सन्देह नहीं ॥ ४२ ॥

यथा न ज्ञायते कैश्चित्तथार्चां त्वं कुरुष्व मे ।
सर्वापद्भ्यः परित्राणं करिष्यामि च ते सदा ॥ ४३ ॥

जिससे दूसरा मनुष्य न जान सके, उसी प्रकारसे मेरी पूजा करो ऐसा करनेपर मैं तुम्हारी सब आपदाओंसे सदा रक्षा करूंगी ॥ ४३ ॥

क्रीडास्थानमिदं विष्णोरुक्तं तुभ्यमिदं सदा ॥
इच्छाशक्तिस्तु या दत्ता विष्णवे च मया पुरा ॥ ४४ ॥
महालक्ष्मीस्वरूपेण सेवते ब्रह्मसंस्थिता ।
सैव वृन्दास्वरूपेण पुरेऽत्र संभविष्यति ॥ ४५ ॥

यह स्थान विष्णुका क्रीडास्थान है, यह मैंने तुमसे निश्चित कहा । मैंने पूर्वमें विष्णुको इच्छाशक्ति प्रदान की है, वह ब्रह्मसंस्थिता शक्ति ही महालक्ष्मीरूपसे विष्णुकी सेवा करेगी । वही वृन्दास्वरूपसे इस पुरमें वास करेगी ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

वृन्दाया वासतस्तद्धि पुरं वृन्दावनाभिधम् ।
तत्पुरे चापि भविता तथा त्वत्क्रीडनं ध्रुवम् ॥ ४६ ॥
भूत्वा वृन्दा तरुर्लक्ष्मीरत्र स्थास्यति सर्वदा ।
दैत्यविघ्नी हि भविता सर्वदैत्यनिषूदनम् ॥ ४७ ॥
करिष्ये शृणु वत्सैतद्वचनं मे शुभोदयम् ।
केशिदैत्यवधार्थाय यत्र मे पूजनं कृतम् ॥ ४८ ॥

भो ब्रह्मन् ! तुम मेरे शुभकर वचन सुनो । वृन्दाके केशिपुरमें अवस्थित होने पर उसका नाम वृन्दावन होगा । केशिपुरमें वृन्दाके संग

तुम्हारा विवाह होगा। लक्ष्मी वृन्दा तरुरूपसे इस स्थानमें निरन्तर बास करेंगी। यद्यपि वहां दैत्योंका विघ्न होगा, किन्तु मैं उन सब दैत्योंका वध करूंगी। केशि दैत्यके वधार्थ तुम जिस स्थानमें मेरी पूजा करोगे ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥

युवां वै पश्यतन्तत्र जातं मे योनिमण्डलम् ।
मम तेजःसमुद्भूतं विद्धि तद्योनिमण्डलम् ॥ ४९ ॥
सर्वेषामुद्भवस्थानं योनिरेवं न संशयः ।
जानीहि प्रकृतिं देवयोनिमेतान्तु मामकीम् ॥ ५० ॥

तुम देखो, उसी स्थानमें मेरा योनिमण्डल उत्पन्न हुआ है । यह योनिमण्डल मेरे तेजसे उत्पन्न है और इसको सबका उद्भवस्थान जानना जो मेरी प्रकृति है, वही योनिमण्डल है ॥ ४९ ॥ ५० ॥

संपूज्य योनिं देवेश सृष्टिं कुरु यथार्थतः ।
कस्मादपि भयं न स्यात्तव क्वापि पितामह ॥ ५१ ॥

हे देवेश ! इस योनिमण्डलकी पूजा करके तुम सृष्टि करो। हे पितामह ! तुमको कहींभी नहीं है ॥ ५१ ॥

अधिष्ठानं ममापि स्यात्तत्र पीठे न संशयः ।
जानीहि तदधिष्ठात्रीरूपं मेऽतिसुशोभनम् ॥ ५२ ॥
नित्यं पूजय तद्रूपं कामाख्यायोनिमण्डले ।
योनिमण्डलमासाद्य कामाख्यां यस्तु पूजयेत् ॥ ५३ ॥
सर्वसिद्धीश्वरो भूत्वा परत्रेह च मोदते ।
न भयं तस्य कुत्रापि कस्मादपि प्रजायते ॥ ५४ ॥

उसी पीठमें मेरा अधिष्ठान है, इसमें सन्देह नहीं, उस अधिष्ठानस्वरूप मेरे सुशोभनरूप योनिमण्डलमें नित्य पूजा करो । योनिमण्डलमें जाकर जो मनुष्य कामाख्याकी पूजा करता है, वह सर्वसिद्धीश्वर होकर इस

लोक और परलोकमें आनन्दलाभ करता है उसको कहींभी किसीसे भय नहीं होता ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

तवान्येषां हितार्थाय स्थापितं योनिमण्डलम् ।
पृथिव्यां भारते वर्षे कामरूपं महाफलम् ॥ ५५ ॥

तुम्हारे और अन्य सबके कल्याणके निमित्त यह योनिमण्डल स्थापित हुआ है, यह महास्थान कामरूपनामक भारत वर्षमें अवस्थित है ॥ ५५ ॥

नवयोनिसमाकीर्णं महामुक्तिफलप्रदम् ।
नवयोन्यात्मके ब्रह्मन्कामरूपे मनोहरम् ॥ ५६ ॥
कामाख्यातेजसा देवि दीप्यते योनिमण्डलम् ।
किन्त्विदानीं भवत्पापं न पश्यामि कथञ्चन ॥ ५७ ॥

यह महालय नवयोनि समाकीर्ण और महाफलदायक है । हे ब्रह्मन्! नवयोन्यात्मक कामरूपमें कामाख्या तेजसे यह मनोहर योनिमण्डल दीप्ति पाता है, किन्तु इस समय तुम्हारा पाप कुछभी नहीं देखती हूं ॥ ५६ ॥ ५७ ॥

अहङ्कारात्समुत्पन्नं त्रिविधं पातकं तव ।
कायिकं वाचिकं चैव मानसञ्च तथा पुनः ॥ ५८ ॥

अहंकारसे तुम्हारा कायिक वाचिक और मानसिक यह तीन प्रकारका पाप उत्पन्न हुआ है ॥ ५८ ॥

तत्पापाद्योनिपीठं मे न पश्यसि कदाचन ।
तत्पापध्यानधाराभिरन्धीभूतो दिवानिशम् ॥ ५९ ॥

उसी पापके कारण तुम मेरा योनिपीठ नहीं देख सकते हो और उसी पापकी ध्यानधारामें दिनरात अन्धीभूत हो रहे हो ॥ ५९ ॥

तत्र वाचनिकं पापं ध्रुवं नश्यति दर्शनात् ।
गोवर्धनस्य परयोरुपायं तच्छृणुष्व मे ॥ ६० ॥

तहां गोवर्द्धनके दर्शनसेही वाचानिक पाप नष्ट होता है अब अन्य दो पापोंके शमन होनेका उपाय कहती हूं सुनो ॥ ६० ॥

नक्षत्रलोकान्नक्षत्रमेकं तत्र निपात्य च ।
श्रेष्ठन्तज्ज्योतिषा देव दृष्ट्वा पीठं तपः कुरु ॥ ६१ ॥

नक्षत्रलोकसे ध्यानयोगमें एक नक्षत्र निपातित करके योनिपीठको श्रेष्ठज्योतिसंपन्न देखकर वहां तप करो ॥ ६१ ॥

यावद्द्रक्ष्यासि ज्योतिर्नो मिलितं योनितेजसि ।
तावत्कुरु तपो घोरं तदन्ते पातकद्वयम् ॥ ६२ ॥
प्रशाम्याति न सन्देहो वसतिं कुरु सत्वरम् ।
तस्मिंस्तपोवशात्तत्तु केनापि न हि वीक्ष्यते ॥ ६३ ॥

जबतक योनितेजमें वह ज्योति मिलीहुई दिखाई न दे तबतक घोर तपस्या करो तदनन्तर वह दोनों पाप नष्ट होंगे इसमें सन्देह नहीं इस कारण शीघ्र वहां जाकर वास करो । वहां तपोबलसे वह कोई नहीं देख सकेगा ॥ ६२ ॥ ६३ ॥

अपराधाच्छ्रेयसस्तु भवेद्वै गतिरीदृशी ।
नक्षत्रस्थापनात्तत्र पृथग्जातिषु वारितः ॥ ६४ ॥
स्थानन्तद्गम्यते वत्स सर्वलोके निरन्तरम् ।
इत्युक्त्वा विररामासौ गगनस्था परात्मिका ॥ ६५ ॥

अपराधके पीछे श्रेयोलाभका उपाय इस प्रकार जाने । वहां नक्षत्र स्थापन अन्यान्य जातिमें निषिद्ध है, हे वत्स ! अन्य सब स्थानों-मेंही अन्य सब लोग जा सकते हैं, परात्मिका गगनास्थिता काली यह सब कहकर विरत हुई ॥ ६४ ॥ ६५ ॥

कालीं परमकल्याणीं तां नत्वा विधिकेशवौ ।
विस्मयाविष्टमनसौ राज्यं तच्चक्रतुस्ततः ॥ ६६ ॥

अनन्तर केशव और विधाता परमकल्याणी महाकालीको नमस्कार करके आश्चर्ययुक्तचित्तसे दोनों विश्वराज्यमें राजत्व करने लगे॥६६॥

इत्येवं कथितं गुह्यं यत्पृष्टं गिरिसम्भवे ।
प्राचीनमतिगोप्यं हि वृत्तान्तं कुलनायिके ॥ ६७ ॥

हे गिरिवरात्मजे, कुलनायिके ! तुम्हारे पूछनेके अनुसार यह मैंने तुमसे पुरातन अतिगोप्य गुह्य वृत्तान्त कहा ॥ ६७ ॥

इति श्रीयोगिनीतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे देवीश्वरसंवादे चतुर्विंशतिसाहस्रे भाषाटीकायां पञ्चदशः पटलः ॥ १५ ॥

श्रीदेव्युवाच ।

श्रुतो हि पूर्ववृत्तान्तः सर्वेषामप्यगोचरः ।
इदानीं श्रोतुमिच्छामि कालीरूपाभवत्कथम् ॥ १ ॥

श्रीदेवीजी बोलीं—हे त्रिलोचन ! सबकेही अगोचर जो प्राचीन वृत्तान्त था, वह तो मैंने सुना अब कालीरूपा किस प्रकार हुई यह सुननेकी इच्छा करती हूं ॥ १ ॥

ईश्वर उवाच ।

शृणु देवि परं गुह्यं ब्रह्मादीनामगोचरम् ।
सारात्साररतरं देवि भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥ २ ॥

ईश्वर बोले—हे देवि ! ब्रह्मादिकोंकेभी अगोचर सारसेभी सार भोगमोक्षदायक परम और गुह्य विषय कहता हूं, सुनो ॥ २ ॥

एकदा विष्णुब्रह्माणौ विरोधं चक्रतुर्मिथः ।
ईश्वरोऽहमीश्वरोऽहमुक्तवन्तौ जलार्णवे ॥ ३ ॥

एक समय जलार्णवमें ब्रह्मा और विष्णुने "मैं ईश्वर । मैं ईश्वर" यह कहकर आपसमें विरोध आरंभ किया ॥ ३ ॥

तयोः शान्त्यै महेशानि प्रादुर्भूतं जलार्णवे ।
अप्रमेयं महालिङ्गं मदीयं पावनं परम् ॥ ४ ॥
ज्ञानाज्ञानमयं दिव्यं दुर्निरीक्ष्यं भयङ्करम् ।
तन्मध्येऽहं रुद्ररूपो बभ्राम वृषवाहनः ॥ ५ ॥
दृष्ट्वा तु तौ तदाश्चर्यं भयकम्पितविग्रहौ ।
स्तुत्वा च विविधैः स्तोत्रैरूचतुर्मां पुनश्च तौ ॥ ६ ॥

हे महेश्वरि ! उनका झगडा मिटानेके लिये मेरा अप्रमेय ज्ञानाज्ञानमय दिव्य दुर्निरीक्ष्य भयंकर परमपावन महालिंग जलार्णवसे उत्थित हुआ । मैं रुद्र रूप और वृषवाहन होकर उसमें भ्रमण करने लगा यह देखकर वह दोनों भयसे कांपने लगे और अनेक स्तोत्रोंके द्वारा मेरी स्तुति करके फिर मुझसे कहने लगे ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥

ब्रह्मविष्णू ऊचतुः ।

वद कस्त्वं भीमरूप उत्थितोऽसि जलार्णवे ॥ ७ ॥

ब्रह्मा विष्णुने कहा–हे भीमरूप ! जलार्णवसे उत्थित हुए तुम कौन हो ? कहो ॥ ७ ॥

रुद्ररूप उवाच ।

परस्परं विरुद्ध्यन्तौ युवां दृष्ट्वा जलार्णवे ।
उत्थितोऽहं च भवतोरीश्वरत्वं परीक्षितुम् ॥ ८ ॥

रुद्ररूपीने कहा–तुम्हारा परस्पर विवाद देखकर तुम्हारे ईश्वरत्वकी परीक्षा करनेके लिये मैं इस स्थानमें आविर्भूत हुआ हूं ॥ ८ ॥

इत्युदीरितमाकर्ण्य स्थगितौ ब्रह्मकेशवौ ।
निगूढं ध्यानतो ज्ञात्वा सन्तुष्टो माधवोऽभवत् ॥ ९ ॥

ब्रह्मा और केशव यह बात सुनकर मौन हुए तदनन्तर माधव ध्यानयोगसे निगूढ तत्त्व जानकर परम संतोषको प्राप्त हुए ॥ ९ ॥

उद्विग्नचेतसा ब्रह्मा ध्यात्वा स ज्ञानमाप्तवान् ।
केवलं रुद्ररूपं मां ज्ञात्वासौ कमलासनः ॥ १० ॥
विचिकित्सापरो भूत्वा विष्णुमाह तदा विधिः ॥११॥

ब्रह्माजी उद्विग्नचित्तसे ध्यान करके कुछ ज्ञानयुक्त हुए और मुझको भलीभांति नहीं जान सके केवल रुद्ररूपको जानकर संदिग्ध हुए किन्तु यथार्थ तत्त्व न जानकर विष्णुसे कहने लगे ॥ १० ॥ ११ ॥

ब्रह्मोवाच ।

भो विष्णो मत्कपालाद्यो जातो रुद्रोप्यसत्तमः ॥१२॥

ब्रह्माजी बोले–भो विष्णो ! मेरे कपालसे जो असत्तम रुद्र उत्पन्न हुए हैं ॥ १२ ॥

ईश्वर उवाच ।

एवमुक्त्वा चोपहासं कृत्वा चापि विगर्हणम् ।
चकार बहुधा देवि विघ्नं दत्तं सुदारुणम् ॥ १३ ॥
मया तस्मै ब्रह्मणे तद्विगर्हितावनिर्मितम् ।
तद्विघ्नमसुरो भूत्वा मध्याह्ने च यथा रविः ॥ १४ ॥
जातस्त्रिपुरनाम्नासौ दानवो देहतो मम ।
सर्वेषां सकलं नीतमिंद्रादीनां महेश्वरि ।
तेन दैत्येन देवेशि ततो जिष्णोर्हृतं जगत् ॥ १५ ॥

ईश्वर बोले ! इस प्रकार ब्रह्माजी उपहास और निन्दा करने लगे हे देवि तब मैंने दारुण विघ्न प्रदान किया । वह विघ्न मध्याह्नसूर्यकी समान महासुररूपमें आविर्भूत हुआ । इस दानवका नाम त्रिपुर है । उसने मेरे देहसे उत्पन्न होकर इन्द्रका इन्द्रत्व और अधिक क्या कहूं, सभीका सब अधिकार हरण कर लिया ॥ १३–१५ ॥

गरुडं च विना लक्ष्मीमन्यत्सर्वं हृतं बलात् ।
हृतं तेनैव दैत्येन ब्रह्मणः कमलासनम् ॥ १६ ॥
ततः पलायिता देवा ब्रह्मविष्णुपुरोगमाः ।
हिमालयं समासाद्य विष्णुराह तदा विधिम् ॥ १७ ॥

उस दैत्यने विष्णुका गरुड और लक्ष्मीके अतिरिक्त सम्पूर्ण जगत् बलपूर्वक हरण किया । जब उस दैत्यने ब्रह्माजीका कमलासन हरण किया, तब ब्रह्मा विष्णु इन्द्रादि सब देवता भागकर मेरे यहां (हिमालयमें) उपस्थित हुए और माधवने मेरे सामने ब्रह्माजीसे कहा ॥ १६ ॥ १७ ॥

विष्णुरुवाच ।

शिवनिन्दा कृता धातस्त्वया पूर्वं जलार्णवे ॥
तेनैव चापराधेन वयं सर्वे प्रपीडिताः ॥ १८ ॥

विष्णुने कहा–हे विधाता ! तुमने पहिले जलार्णवमें शिवकी निन्दा की है, उसी अपराधसे हम सब पीड़ित हुए हैं ॥ १८॥

ततस्तु परमेशानं स्तोष्याम्यत्र गिरौ पुनः ।
सर्वं स मङ्गलं कुर्य्याद्धृयो मे रोचते हृदि ॥ १९ ॥

तो आओ, हम इस कैलासाचलमें उनका संतोषसाधन करें, हमारे हृदयमें भलीभांति बोध होता है कि वही हामरे सर्व प्रकार मंगल करनेवाले होंगे ॥ १९ ॥

समाश्रित्य तपस्तेपुर्ब्रह्मविष्णुपुरोगमाः ।
हिमालयं तदा देवाः प्रसादो मे भवेत्तदा ॥ २० ॥

तब ब्रह्मा और विष्णु इत्यादि सब देवता हिमालयका आश्रय कर तपस्या करने लगे । अनन्तर हिमाचलमें उन्होंने मेरा प्रसाद लाभ किया अर्थात् मैं उनके प्रति प्रसन्न हुआ ॥ २० ॥

पृथिवीं च रथं कृत्वा चक्रे चन्द्रदिवाकरौ ।
ब्रह्माणं सारथिं कृत्वा वेदान्रज्जूंस्तथैव च ॥ २१ ॥
देवान् कृत्वा रथाङ्गानि अश्वांश्चैव तथा पुनः ।
धनुः कृत्वा सुमेरुं च ज्यां च कृत्वा तु वासुकिम् ॥ २२
विश्वं च सकलं कृत्वा रथस्थं यच्चराचरम् ।
बाणं विष्णुं विधायैव त्रिपुरो भस्मसात्कृतः ॥ २३ ॥

हे देवि ! तदनन्तर मैंने पृथ्वीको रथ, चन्द्र सूर्यको चक्र (पहिये), ब्रह्माको सारथी, सब वेदोंको रज्जू, देवताओंको अन्यान्य रथांग और अश्व, सुमेरुको शरासन (धनुष), वासुकीको गुण (डोरा), चराचर सम्पूर्ण विश्वको रथस्थ और विष्णुको बाण करके चराचर और देव-दैत्यादिकोंके सहित त्रिपुरासुरको भस्म किया ॥ २१–२३ ॥

चराचरेण सहितं देवदैत्यादिभिः सह ।
मया तत्र महेशानि पुनः सृष्टं जगत्ततः ॥ २४ ॥

हे महेशानि ! तदनन्तर मैंने फिर वहां चराचर देवदैत्यादिकोंके सहित जगत्की सृष्टि करी ॥ २४ ॥

यत्र भस्म कृतं देवि जगदेत च्चराचरम् ।
महच्छ्मशानंतद्विद्धि सर्वेषां लयकारणम् ॥ २५ ॥

हे देवि ! जिस स्थानमें यह चराचर भस्मीभूत किया उस स्थानको सबके लयका कारण महाश्मशान जानना चाहिये ॥ २५ ॥

मृतानां सर्वदेवानां तेजस्तत्र व्यवस्थितम् ।
पंचकोशात्मकं भूत्वा तेजसा जगतां तथा ॥ २६ ॥
निर्माय मायया देहं त्रैपुरं तस्य वक्षसि ॥ २७ ॥

वहां समस्त मरेहुए देवताओंका तेज निहित है उस स्थानके ऊपर भागमें जगत्का तेज और मायाद्वारा पंचकोशात्मक त्रैपुर देह निम्मार्ण करके ॥ २६ ॥ २७ ॥

तत्र मृत्युस्थले चाहं तुष्टाव परमेश्वरीम् ।
तत्तेजसि महाकालीं परां चैतन्यरूपिणीम् ॥ २८ ॥
ततस्तेजसि सा काली प्रादुर्भूता परा कला ।
महाद्वीपप्रमाणंतु तेजः कालीति कीर्तितम् ॥ २९ ॥

वहां मृत्युस्थलमें मैं परमा चैतन्यरूपिणी परमेश्वरी महाकालीकी स्तुति करने लगा परमा कला महाकालीका वह तेज महाद्वीपप्रमाण है वह 'काली' इस नामसे कही जाती है ॥ २८ ॥ २९ ॥

मुखमात्रं समादृष्टं महाकाल्यास्तु तेजसि ।
अतो गिरिमुखं नाम मुनिभिः परिगीयते ॥ ३० ॥

उस तेजमें महाकालीका मुख मात्र दीखता है इसी कारण मुनियोंने इस स्थानका नाम 'गिरिमुख' कहा है ॥ ३० ॥

तद्दृष्ट्वा परमेशानि आनन्दो जायते ध्रुवम् ।
आनन्दकाननं तस्माद्गीयते वेदवादिभिः ॥ ३१ ॥

हे परमेशानि ! उसको देखनेसे दर्शकके मनमें निश्चयही अतुल आनन्द उत्पन्न होता है, इसी निमित्त ब्रह्मवादी उसको 'आनन्द-कानन' कहते हैं ॥ ३१ ॥

कालीमयं हि तत्तेजः सकलं संबभूव ह ।
यथा तु सागरे गच्छञ्छीकरः सागरो भवेत् ॥ ३२ ॥
तथा सूर्यादितेजो हि कालीतेजो बभूव ह ॥ ३३ ॥
तथा नानाजलं देवि गङ्गायां पतितं यदि ।
गङ्गैव जायते सर्वं तथा तेजः सुरेश्वरि ॥ ३४ ॥

वह सभी तेज कालीमय है । जिस प्रकार जलकी बूंदेभी समुद्रमें गिरकर सागररूपमें परिणत होती हैं, इसी प्रकार सूर्यादिका तेज भी कालीतेज हुआ है जैसे अन्यान्य अनेक जल गंगामें गिरकर गंगाही

होजाते हैं ऐसेही हे सुरेश्वरि ! अन्य सब तेजभी कालीमय होते हैं ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ॥३४ ॥

सर्वं काल्यभवत्पूर्णं नास्ति भेदो महेश्वरि ।
सर्वं तदमृतं देवि जानीहि सुरसुन्दरि ॥ ३५ ॥

कालीही पूर्ण तेजःस्वरूप है । हे सुरसुन्दरि ! उनका भेद दिखाई नहीं देता । हे महेश्वरि ! उस सबकोही अमृत जानना चाहिये ॥ ३५ ॥

तामहं चानिशं देवि शिरसा धारयाम्यहम् ।
ततो हि शङ्करत्वं मे निश्चितं सत्यमेव हि ॥ ३६ ॥

हे देवि ! मैं उसको सदाही शिरमें धारण कररहा हूं, इसी कारण मेरा शंकरत्व सत्य सत्यही निश्चित हुआ है ॥ ३६ ॥

तां कालीं शिरसा धार्य पंचक्रोशिमयीं सदा ।
अहर्निसं पूजयामि परमानन्दबृंहितः ॥ ३७ ॥

उस पञ्चक्रोशमयी कालीको शिरमें धारणपूर्वक परमानन्दसे वर्द्धित होकर मैं दिन रात उनकी पूजा करता हूं ॥ ३७ ॥

अतो विश्वेश्वरत्वं मे सदैवात्र न संशयः ।
ब्रह्मविष्ण्वादिकानाञ्च ईश्वरो यः सुरेश्वरि ॥ ३८ ॥

इसी कारण मैं विश्वेश्वर हुआ हूं इसमें सन्देह नहीं । हे सुरेश्वरि ! वह विश्वेश्वरही ब्रह्मा विष्णु आदिकके ईश्वर हैं ॥ ३८ ॥

विश्वेश्वरः स एव स्यान्नापरः परमेश्वरि ।
केवलानन्दवान्भूत्वा पूजयामि परं सदा ।
तत्र तस्याः कृपा जाता वाग्भवा याशरीरिणी ॥ ३९ ॥

अपर कोई ईश्वर नहीं है । हे परमेश्वरि ! मैं केवलानन्दमय होकर सदा उन महाकालीकी पूजा करता हूं उन्होंने वहां मेरे प्रति अशरीरिणी वाणी द्वारा कृपा प्रकाश करी ॥ ३९ ॥

श्रीकाल्युवाच ।

भो देव परमानन्द ममानन्दः कृतस्त्वया ।
अतः काश्यां मृतानां त्वमानन्दं देहि सर्वदा ॥ ४० ॥

श्रीकालीने कहा–भोपरमानन्ददायक देव ! तुमने मेरा आनन्द वर्द्धन किया है, इस कारण तुम काशीमें मरे मनुष्योंको सदाही आनन्द प्रदान करोगे ॥ ४० ॥

ईश्वर उवाच ।

इति श्रुत्वा वचस्तस्या मग्नोहममृतार्णवे ।
ददामि परमं ब्रह्म मुमूर्षोः कर्णगोचरे ॥ ४१ ॥
वाराणस्यां सदा देवि स्थित्वा ध्यानपरः शिवे ।
जले स्थले चान्तरिक्षे वाराणस्यां मृताश्च ये ॥ ४२ ॥

ईश्वर बोले–हे शिवे ! महाकालीका यह वचन सुनकर मैं अमृतार्णवमें निमग्न हुआ । हे देवि ! मैं वाराणसी (काशी) में सदाही ध्यानपरायण हो वास करता हुआ मुमूर्षुगणोंके कर्णगोचरमें परम ब्रह्मज्ञान प्रदान करता हूं । जो मनुष्य वाराणसीमें जलमें स्थलमें वा अन्तरिक्ष (आकाश) में प्राण त्याग करता है ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

ददामि परमं ब्रह्म तेषां हि कर्णगोचरे ।
हित्वा हि सकलं कर्म सुकृतं दुष्कृतं हि सः ।
भवेच्च ब्रह्मनिर्वाणं ममोपदेशतः क्षणात् ॥ ४३ ॥

मैं उसके कर्णगोचरमें परब्रह्म प्रदान करता हूं वह मनुष्य समस्त पुण्य और पाप कर्म परित्याग करके मेरे उपदेशसे तत्काल ब्रह्म निर्वाण लाभ करता है ॥ ४३ ॥

तत्सर्वं सुकृतं कर्म दुष्कृतं वा महेश्वरि ।
भवेद्भस्म महाकाल्याः प्रसादाज्ज्ञानयोगतः ॥ ४४ ॥

हे महेश्वरि ! वह सब पुण्य और पापकर्म महाकालीप्रसादलब्ध ज्ञानाग्निसे भस्म होजाते हैं ॥ ४४ ॥

काशीलग्नं हि यत्किञ्चित्काशी भवति तत्क्षणात् ।
काशीस्पर्शनमात्रात्तु पापराशिर्विनश्यति ॥ ४५ ॥

जो कुछ काशीमें लग्न होता है, वह काशीस्वरूप होता है. काशीके स्पर्शमात्रसेही पापसमूह नष्ट होजाते हैं ॥ ४५ ॥

शूली कर्म दहेत्कालीतेजः स्पर्शात्क्षणात्तथा ।
तूलराशिं दहत्यग्निः किञ्चित्कालाद्यथा शिवे ॥ ४६ ॥

कालीके तेजस्पर्श करनेके कारण शूली महादेव क्षणमात्रमेंही कर्म दहन करते हैं हे शिवे ! जैसे अग्नि स्पर्शमात्रसेही रुईके ढेरको जला देती है ॥ ४६ ॥

तथा दहेत्कर्मराशिं काशी जन्मैकतो नृणाम् ।
काशीस्थानं पुण्यचयं किं वाहं कथयामि ते ॥ ४७ ॥

इसी प्रकार काशी मनुष्यके एक जन्ममेंही सब जन्मोंकी कर्मराशि दग्ध करती है काशीस्थान पुण्यराशिसम्पन्न है, हे देवि ! पुण्यराशि काशीकी कथा मैं तुमसे और क्या कहूं ॥ ४७ ॥

अपि चेत्त्वत्समा नारी मत्समः पुरुषोऽस्ति चेत् ।
तदा काशीफलं किञ्चिद्देवि वक्तुं क्षमो भवेत् ॥ ४८ ॥

यदि तुम्हारी समान नारी और मेरे समान पुरुष हो, तो काशीका कुछ थोडासा फल वर्णन करनेमें समर्थ हो सकता है ॥ ४८ ॥

अण्डजा उष्मजाश्चैव उद्भिज्जाश्च जरायुजाः ।
ते सर्वे मुक्तिमायान्ति काश्यां चेद्भाग्यतो मृताः ॥ ४९ ॥

अण्डज, उष्मज, उद्भिज्ज और जरायुज, यह चारों प्रकारके जीव यदि भाग्यसे काशीमें मरें, तो सभी मुक्तिको प्राप्त होते हैं ॥ ४९ ॥

इयं वाराणसी देवि महातेजोमयी शुभा ।
युगभेदाज्जनैरेव दृश्यते हि चतुर्विधा ॥ ५० ॥
कृते रत्नमयी काशी त्रेतायां स्वर्णजा स्मृता ।
द्वापरे सा शिलारूपा कलौ भूमिमयी शुभा ॥ ५१ ॥

हे देवि ! यह वाराणसी महातेजोमयी और कल्याण दायिनी है । सत्य युगमें रत्नमयी, त्रेतामें स्वर्णमयी, द्वापरमें शिलामयी और कलियुगमें मृण्मयी युगभेदसे यह काशी चतुर्विध दिखाई देती है ॥ ५०॥५१॥

नातः परतरं क्षेत्रं त्रिषु लोकेषु विद्यते ।
सत्यं सत्यं महादेवि शपथेन वदामि ते ॥ ५२ ॥

हे महादेवि ! काशीकी अपेक्षा श्रेष्ठतम क्षेत्र तीनों लोकमें दूसरा नहीं है, यह मैं तुमसे सत्यही सत्य शपथ करके कहता हूं ॥ ५२ ॥

संसारवर्त्मनो देवि मुक्तिमिच्छति यः पुनः ।
पाषाणसदृशो भूत्वा तिष्ठेत्काश्यां नियन्त्रितः ॥५३॥

जो मनुष्य संसारमार्गमें स्थित होकर मुक्ति पानेकी कामना करता है, वह पत्थरकी समान होकर मनसंयमपूर्वक काशीमें वास करै ॥ ५३ ॥

स एव पण्डितो ज्ञानी स एव कुलपावनः ।
प्राणान्तेऽपि महादेवि काशीं न निस्त्यजेद्बुधः ॥५४॥

हे महादेवि ! जो मनुष्य प्राणान्त होने परभी काशीको नहीं छोडता, वही मनुष्य पण्डित, ज्ञानी कुलपावन और बोधवान् है इसमें सन्देह नहीं ॥ ५४ ॥

स एव परमो मूर्खः स एव कुलनाशकः ।
वृथैव मूर्खलोकोयं काशीं प्राप्य त्यजेत्तु यः ॥५५॥

जो मनुष्य काशीको प्राप्त होकरके फिर छोड देता है उसकी समान परम मूर्ख और कुलनाशक दूसरा नहीं है, मूर्खमनुष्यही काशीको प्राप्त होकरके फिर छोड देता है ॥ ५५ ॥

बहुभिर्जन्मभिः पुण्यैर्यदि काशीं लभेत्पुनः ।
तदा नैव त्यजेत्काशीं प्राणान्तेऽपि कदाचन ॥ ५६ ॥

बहुत जन्मोंके पुण्यफलसे यदि काशी प्राप्त हो, तो फिर प्राणान्त होनेपरभी उसको कभी न छोडे ॥ ५६ ॥

अनायासेन संसारसागरं यस्तितीर्षति ।
स गच्छेदपि यत्नेन मम वाराणसीं पुरीम् ॥ ५७ ॥

जो बुद्धिमान् मनुष्य सहजमें संसार सागरसे पार होनेकी कामना करै, वह यत्नपूर्वक मेरीवाराणसी पुरीमें जायँ ॥ ५७ ॥

अन्नं दद्यादन्नपूर्णा ज्ञानं दद्यात्सरस्वती ।
प्राणान्ते मुक्तिदाताहं काश्यां स्थित्वा सदैव हि॥५८॥

वहां अन्नपूर्णा अन्न दान करती हैं, सरस्वती ज्ञान देती हैं और मैं सदा स्थिति करके प्राणन्तकालमें मुक्तिप्रदान करता हूं ॥ ५८ ॥

एवं ते कथितं देवि यत्पृष्टं गिरिजे मयि ।
परमं पावनं मोक्षं किमितः श्रोतुमिच्छसि ॥ ५९ ॥

हे गिरिजे देवि ! तुमने जो मुझसे पूँछा था वह परमपावन मोक्षका विषय मैंने तुमसे कहा अब और क्या सुननेकी इच्छा है ॥ ५९ ॥

इति श्रीयोगिनीतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे देवीश्वरसम्वादे चतुर्विंशतिसाहस्रे भाषाटीकायां षोडशः पटलः ॥ १६ ॥

श्रीदेव्युवाच ।

गुरुस्त्वं सर्वलोकानां परमेश पुरातन ।
जगदूर्ध्वकलाधीश वद कोलानिपातनम् ॥ १ ॥

श्रीदेवी बोली—हे पुरातन परमेश ! आप सर्वलोकोंके गुरु हैं । हे जगत्के ऊर्ध्वकलाधीश्वर ! अब कोलानिपातन वर्णन कीजिये ॥ १॥

ईश्वर उवाच ।

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि कोलासुरनिपातनम् ।
महाकालीप्रसङ्गेन वृत्तान्तमिदमद्भुतम् ॥ २ ॥

ईश्वर बोले—हे देवि ! कोलासुरनिपातन कहता हूं. सुनो । महाकालीके प्रसंगमें यह वृत्तान्त परम अद्भुत है ॥ २ ॥

पापं जातं ब्रह्मशापाद्विष्णोरतुलतेजसः ।
पीडितस्तेन पापेन तपश्चक्रे स सर्ववित् ॥ ३ ॥

ब्रह्मशापके बलसे अतुलतेजस्वी विष्णुका पाप उत्पन्न हुआ वह सर्वज्ञ देव उस पापसे पीडित होकर तपस्या करने लगे ॥ ३ ॥

हिमालयान्तिके गत्वा पापस्यास्य क्षयात्मिकाम् ।
अष्टाक्षरीं महाविद्यां महाकाल्याः सदा जपन् ॥ ४ ॥

वह हिमालयके समीप जाकर उस पापका क्षय करनेवाली महाकालीकी अष्टाक्षरी महाविद्याका सदा जप करने लगे ॥ ४ ॥

दशवर्षसहस्रान्ते सन्तुष्टाभून्महेश्वरी ।
तस्याः सन्तोषमात्रेण विष्णोर्हृदयपङ्कजात् ।
कोलानामासुरो भूत्वा निर्गतः सहसा हि तत् ॥ ५ ॥

हे महेश्वरि ! दशहजार वर्ष पीछे महाकाली सन्तुष्ट हुई । उनके सन्तोषमात्रसेही विष्णुके हृदयकमलसे कोलानामक महाअसुर सहसा निकला ॥ ५ ॥

तेन दैत्येन बलिना सर्वं नीतं दुरात्मना ।
इन्द्रादिसकलान्देवान्विनिर्जित्य महासुरः ।
हृतवान्वैष्णवं धाम ब्रह्मणः कमलासनम् ॥ ६ ॥

उस दुरात्मा बलवान् दैत्यने इन्द्रादिक देवताओंको पराजित करके अखिल मण्डल विष्णु वैकुण्ठ और ब्रह्माका कमलासन इत्यादि सबही जीत लिया ॥ ६ ॥

ततो विष्णवादयो देवाः कालीं गत्वा सनातनीम् ।
तुष्टुवुर्भक्तियोगेन रक्ष रक्षेति वादिनः ॥ ७ ॥

अनन्तर विष्णु इत्यादि देवता सनातनी कालीके निकट जाकर "रक्ष रक्ष" इत्यादिवचनोंसे भक्तिपूर्वक उनकी स्तुति करने लगे ॥७॥

श्रीकाल्युवाच ।

इदानीं रे वत्स विष्णो हन्मि कोलान्सबान्धवान् ।
कोलानगरमास्थाय कुमारीरूपमास्थिता ॥ ८ ॥

श्रीकालीने कहा—रे वत्स विष्णु ! अब मैं कुमारीरूप धारण करके कोलानगरीमें जाय उस असुरकुल वर्वर कोलासुरको सबान्धव हनन करूंगी ॥ ८ ॥

ईश्वर उवाच ।

एवं श्रुत्वा तु तद्वाणीं ब्रह्मविष्णवादयः सुराः ।
आनन्दजलधौ मग्नाः शिखिवन्ननृतुर्घनात् ॥ ९ ॥

ईश्वर बोले—ब्रह्मा विष्णु इत्यादि देवता महाकालीके इस प्रकार वचन सुन आनन्दसागरमें निमग्न हो घनगर्जना श्रवण कर मोरकी समान नाचने लगे ॥ ९ ॥

ततः काली करालास्या द्विजकन्यास्वरूपतः ।
गत्वा कोलापुरं देवी कोलासुरसमीपतः ।
तमयाचत तद्भक्ष्यं कुमारी दैत्यपुङ्गवम् ॥ १० ॥

तदनन्तर करालवदना महाकालीने विप्रकुमारीका रूप धारण करके कोलापुरमें कोलासुरके समीप जाय उस दैत्यराजसे किंचित् भक्ष्य द्रव्य मांगा ॥ १० ॥

काल्युवाच ।

मातृतातविहीनाहं सहायपरिवर्जिता ।
क्षुधिताहं महाराज भोज्यं मह्यं प्रदीयताम् ॥ ११ ॥

कालीने कहा—मैं माता पिता हीन और सहायहीन हूं, हे महाराज ! मुझे कुछ भोज्य द्रव्य प्रदान कीजिये ॥ ११ ॥

ईश्वर उवाच ।

ततः कोलासुरो देवि मायया परिमोहितः ।
दयया तां करे धृत्वा विवेशान्तःपुरे स्वयम् ॥ १२ ॥

ईश्वर बोले—हे देवि ! तदनन्तर कोलासुर मायासे मोहित हो कृपापूर्वक उस कुमारीका हाथ पकडकर स्वयं उसको रनवासमें लेगया ॥ १२ ॥

उवाच भोज्यं दास्यामि तुभ्यं तत्ते समीप्सितम् ।
अत्रोपविश बाले त्वमासने मणिरञ्जिते ॥ १३ ॥

और कहा—जो इच्छा है, मैं वही भोजन तुम्हें दूंगा । हे बालिके ! तुम इस मणिरंजित आसनपर बैठो ॥ १३ ॥

इत्युक्त्वासौ ददौ भोज्यं नानाविधमनेकशः ।
भुक्त्वा सा सकलं देवि पुनर्देहीति वादिनी ॥ १४ ॥
पुनर्ददौ बहुतरं तच्चापि बुभुजे स्वयम् ।
नाहं तृप्ता वदन्तीं तां तदोवाच महासुरः ॥ १५ ॥

यह कहकर उस दैत्यने बहुतवार अनेक प्रकारके भोज्य द्रव्य उसको दिये । बालिकाने उस सबको भक्षण करके कहा—इनसे मेरी तृप्ति नहीं ई और भोजन दो । दैत्यराजने फिर बहुत भोजन दिया, उस सबको भी भक्षण करके कहा—इनसेभी मेरी तृप्ती नहीं हुई उसको यह वचन सुनकर महाअसुरने कहा ॥ १४ ॥ १५ ॥

यथा तृप्तिर्भवेद्बाले तावद्धि कुरु तत्तथा ।
इत्युदीरितमाकर्ण्य काली बालस्वरूपिणी ॥ १६ ॥

हे बाल ! जिससे तुम्हारी तृप्ति हो, तुम वही करो । बालस्वरूपिणी कालीने कोलासुरके यह वचन सुनकर ॥ १६ ॥

कोषं हयं हस्तिनश्च रथं सैन्यं सबान्धवम् ।
क्षणेन बभुजे काली कोलं चापि महाबलम् ॥ १७ ॥

उसका कोष, घोडे, हाथी, रथ, सेना, बांधव, इन सबको भक्षण कर महाअसुर कोलासुरको भक्षण कर लिया ॥ १७ ॥

कालरुद्रो यथा काले क्षणाल्लोकत्रयं यथा ।
तथा कोलापुरं शून्यं कृतं काल्या क्षणाच्छिवे ॥ १८ ॥

हे शिवे ! जैसे कालरुद्र क्षणभरमें तीनों लोकोंको महाप्रलयमें संहार करते हैं ऐसेही महाकालीने क्षणमात्रमें कोलापुरको सूना कर दिया ॥ १८ ॥

अथासुरास्तथा नाष्टान्दृष्ट्वा विष्णुमुखाः सुराः ।
निरन्तरं पुष्पवृष्टिं चक्रुस्ते ननृतुः परम् ॥ १९ ॥
जगुः सुललितं गीतं देवगन्धर्वकिन्नराः ।
विद्याधरी देवपत्नी किन्नरीभिः समन्ततः ॥ २० ॥

तदनन्तर विष्णु इत्यादि देवताओंने सब शत्रुओंको मरा देखकर फूलोंकी वर्षा करी । देव, गंधर्व, किन्नरगण और विद्याधरी किन्नरी तथा देवताओंकी स्त्रियें हर्षमें भरकर नृत्य करने लगीं ॥ १९ ॥ २० ॥

पूजिता तैः कुमारी सा कुसुमैर्नन्दनोद्भवैः ।
सर्वलोकैः पूजिता च कुमारी सा दिने दिने ॥ २१ ॥

फिर सबने मिलकर नन्दनवनोत्पन्न कुसुम चन्दनके भारसे उस कुमारीकी पूजा करी । इसके पीछे सब लोक अपने घरमें नित्य कुमारीकी पूजा करने लगे ॥ २१ ॥

ततः सान्तर्हिता देवि कुमारी ब्रह्मविग्रहा ।
एवं हि ते मया प्रोक्तं कोलासुरनिषूदनम् ॥ २२ ॥

इसके उपरान्त वह ब्रह्मरूपिणी कुमारी अन्तर्धान होगई । हे देवि ! यह मैंने तुमसे कोलासुरके मरनेका वर्णन किया ॥ २२ ॥

ब्रह्मशापो दुराधर्षो भ्रमतोऽपि न तच्चरेत् ।
वाग्वज्रश्च ब्राह्मणानां सदा जानीहि कामिनि ॥ २३ ॥

हे कामिनि ! ब्रह्मशाप दुर्द्धर्ष है, भूलकरभी ब्रह्मशापका कार्य न करै, ब्राह्मणके शापका वचन सदा वज्रस्वरूप जानना चाहिये ॥ २३ ॥

अतोऽविद्यः सविद्यो वा विप्रः पूज्यः सदा भवेत् ॥
सन्तुष्टे ब्राह्मणे देवि तुष्टा देवा वयं सदा ॥ २४ ॥

इस कारण ब्राह्मणके विद्वान् वा अविद्वान् होनेपरभी वह, देवतुल्य पूज्य है । ब्राह्मणके सन्तुष्ट होनेपर हम सब देवता सदा सन्तुष्ट रहते हैं ॥ २४ ॥

वितुष्टे ब्राह्मणे देवि वितुष्टा वयमेव हि ॥ २५ ॥

हे देवि ! ब्राह्मणके असन्तुष्ट रहनेपर हमभी असन्तुष्ट रहते हैं २५॥

यद्यकार्यशतं देवि ब्राह्मणः समुपाचरेत् ।
आत्मनो हितकामेन तं तथापि न चोत्सृजेत् ॥ २६॥
नापमानश्च कर्त्तव्यं सर्वदा सुरपुङ्गवे ।
ब्राह्मणः सर्वदेवात्मा मोक्षतेजःसमो हि सः ॥ २७ ॥

ब्राह्मण यद्यपि सौ सौ अकार्य करै, किन्तु तोभी अपने हितकी कामनासे उसका त्याग वा उसका अपमान करना उचित नहीं है. हे सुरवरे ! ब्राह्मणको सर्वदेवमय और मोक्षतेजके समान जाने२६॥२७

अप्रसूतिश्च सा काली कुमारीरूपधारिणी ।
ततः प्रभृति देवेशि कुमारी पूज्यते सुरैः ॥ २८ ॥

वह काली अप्रसूति कुमारीरूपधारिणी हुई थी इसी कारण तबसे देवताओंने कुमारीपूजा आरंभ करी ॥ २८ ॥

ब्रह्मविष्णुमहेशाद्यैः कुमारी पूज्यते सदा ।
अन्ये सव प्रपूज्यन्ते ब्रह्माण्डतलगोचराः ॥ २९ ॥

और तदनन्तर ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वरादि ब्रह्माण्डतलनिवासी समस्त लोकही कुमारीकी पूजा करने लगे ॥ २९ ॥

कुमारीपूजनफलं वक्तुं नार्हामि सुन्दरि ।
जिह्वाकोटिसहस्रैस्तु वक्त्रकोटिशतैरपि ॥ ३० ॥

हे सुन्दरि ! मैं करोड सहस्र जीभ और मुखोंसेभी कुमारीपूजाका फल वर्णन करनेमें असमर्थ हूं ॥ ३० ॥

तस्माच्च पूजयेद्बालां सर्वजातिसमुद्भवाम् ।
जातिभेदो न कर्तव्यः कुमारीपूजने शिवे ॥ ३१ ॥

हे प्यारि ! इसी कारण सर्वजातीय कुमारीगणोंकी पूजा करनी चाहिये । हे शिव ! कुमारीपूजामें जातिभेद नहीं है ॥ ३१ ॥

जातिभेदान्महेशानि नरकान्न निवर्तते ।
विचिकित्सापरो मन्त्री ध्रुवञ्च पातकी भवेत् ॥ ३२ ॥

इसमें जातिभेदका विचार करनेपर नरकमें गिरकर फिर नहीं लौट सकता । मन्त्रवान् मनुष्य संदिग्ध होकर कर्म करनेसे पातकी होता है, इसमें सन्देह नहीं ॥ ३२॥

देवीबुद्ध्या महाभक्त्या तस्मात्तां परिपूजयेत् ।
सर्वविद्यास्वरूपा हि कुमारी नात्र संशयः ॥ ३३ ॥

अतएव महाभक्ति धारण करके देवीबुद्धिसे कुमारीकी पूजा करनी चाहिये । कुमारी सर्वविद्यास्वरूप है, इसमें सन्देह नहीं ॥ ३३ ॥

एका हि पूजिता बाला सर्वं हि पूजितं भवेत् ।
यदि भाग्यवशाद्देवि वेश्याकुलसमुद्भवाम् ॥ ३४ ॥
कुमारीं लभते कान्ते सर्वस्वेनापि साधकः ॥
यत्नतः पूजयेत्तां तु स्वर्णरौप्यादिभिर्मुदा ॥ ३५ ॥

एक कुमारीकी पूजा करनेसे सब देवी देवताओंकी पूजा होजाती है । हे देवि ! यदि भाग्यसे वेश्याकुलोत्पन्न कुमारी मिल जाय, तो साधक प्रसन्न हो उसको स्वर्ण चांदी आदि सर्वस्व प्रदानपूर्वक यत्न सहित पूजा करै ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

तदा तस्य महासिद्धिर्जायते नात्र संशयः ।
महासिद्धिर्भवेदस्य स एव श्री सदाशिवः ॥ ३६ ॥

इस प्रकार करनेसे साधकको महासिद्धि होती है और वह श्री सदाशिवकी समान होता है इसमें सन्देह नहीं ॥ ३६ ॥

लक्षणं तस्य वक्ष्यामि तच्छृणुष्व प्रियंवदे ।
वपुस्तस्य महेशानि काञ्चनं परिजायते ।
सर्वसिद्धियुतो भूत्वा क्रीडते भैरवो यथा ॥ ३७ ॥

कुमारीसाधकके लक्षण कहता हूं, हे प्रियंवदे ! वह तुम सुनो उसका देह काञ्चनकी समान कान्तियुक्त होता है और वह मनुष्य सब प्रकारकी सिद्धीसे युक्त होकर भैरवकी समान विहार करता है ॥ ३७ ॥

स्वर्गे मर्त्ये च पाताले गतिस्तस्य सुनिश्चितम् ।
हठात्तु जायते सर्वं यद्यन्मनसि वर्तते ॥ ३८ ॥

वह स्वर्ग, मर्त्य और पाताल सर्वत्रही जा सकता है, जिस समय जो मनमें हो, तब वैसाही रूप धारण कर सकता है ॥ ३८ ॥

कायव्यूहं समासाद्य सर्वत्र व्यापको भवेत् ।
अव्याहतश्च सर्वत्र पुरन्दरसमः शिवे ॥ ३९ ॥

काया विस्तारको प्राप्त होकर तत्काल सर्वत्र व्यापक होनेकी सामर्थ्य होता है इन्द्रकी समान उसकी आज्ञा सर्वत्रही अटल होती है॥ ३९॥

देवदानवगन्धर्वनागकिन्नरयोषितः ।
विद्याधरी राजनारी सेवंते तं दिवानिशम् ॥ ४० ॥

देव, दानव, गन्धर्व, नाग, किन्नरोंकी स्त्रियें, विद्याधरी और राजनारी, यह सब दिन रात उसकी सेवा करते हैं ॥ ४० ॥

अन्ते च प्राप्यते तेन परं निर्वाणमुत्तमम् ।
कुमारीपूजने काले साधकः शिवतां व्रजेत् ॥ ४१ ॥

और वह साधक अन्तमें परमनिर्वाणको प्राप्त होता है कुमारीपूजाकालमें साधक शिवत्व लाभ करता है ॥ ४१ ॥

कुमारी पूज्यते यत्र स देशः क्षितिपावनः ॥
महापुण्यतमो भूयात्समन्तात्क्रोशपंचकम् ॥ ४२ ॥

जिस स्थानमें कुमारीकी पूजा होती है, वह स्थान पृथ्वीमें पवित्र है, वह स्थान चारों ओर पांच कोशसहित पुण्यमय है ॥ ४२ ॥

कुमारीपूजनं यत्र कुर्याच्च परमेश्वरि ।
स्फुरत्येव महाज्योतिः प्रत्यक्षं भारते भुवि ॥ ४३ ॥

इस भारतमण्डलमें कुमारीकी पूजा करने पर इस कुमारीके देहसे प्रत्यक्षरूपमें प्रभा प्रकाशित होती है ॥ ४३ ॥

विशम्भरो नाम राजा चैत्रवंशसमुद्भवः ।
अपूजयत्कुमारीं तां वेश्याकुलसमुद्भवाम् ।
कांचीनाम्नीं कृष्णवर्णां सर्वलक्षणपूरिताम् ॥ ४४ ॥

विशम्भर नामक चैत्रवंशीय राजाने वेश्याकुलोत्पन्न एक कुमारीकी पूजा करी थी, वह कुमारी कांची नाम्नी सर्व सुलक्षण सम्पन्न और कृष्णवर्ण थी ॥ ४४ ॥

पूजाकाले महादेवि कांची जाता स्फुरत्प्रभा ।
यत्प्रभापटलाच्छन्नो राजा मोक्षमवाप्तवान् ॥ ४५ ॥

हे महादेवि ! पूजाकालमें इस कुमारीके कृष्णवर्ण देहसे प्रभामण्डल प्रकाशित होने लगा राजा उस महाप्रभा मण्डलसे आच्छन्न होकर मोक्षको प्राप्त हुए ॥ ४५ ॥

सम्यक्प्रपूरिता नासीत्कांची ज्योतिर्मयी प्रभा ।
भूत्वा नित्या हि तत्स्थाने सदा गृह्णाति पूजनम् ४६॥

यह कुमारी कांची प्रभा पूर्ण नहीं थी, किन्तु वह तबसे ज्योतिर्मयी होकर उसी स्थानमें पूजा ग्रहण करने लगी ॥ ४६ ॥

कांचीनाम्नी पुरी जाता तत्स्थानंतु महाफलम् ।
मोक्षदा सा पुरी ज्ञेया पंचक्रोशमयी शुभा ॥ ४७ ॥

उसी स्थानमें एक कांची नामक महाफलदायिनी पुरी हुई । चारों ओर पंचक्रोश सहित वह पुरी कल्याण और मोक्षकी देनेवाली है ॥ ४७ ॥

गृहव्यापारमन्यच्च तत्र यद्यत्कृतं भवेत् ।
तत्सर्वं पूजनं तस्यां चित्रमेतन्नगात्मजे ॥ ४८ ॥

हे पर्वतनन्दिनी ! जिस स्थानमें गृहकर्मादि जो जो किया जाता है, उसीसे उसकी पूजा होती है, हे देवि ! यह अति विचित्र है॥ ४८ ॥

अतः कांची पुरी देवि वाराणस्या समा शुभा ।
एवं तु पूजिता बाला काम्पिल्येन महात्मना ॥४९॥

हे महेशानि ! इसी कारण कांची पुरीको वाराणसीकी समान कल्याण दायिनी जाने । पूर्वमें महात्मा काम्पिल्यने इसी प्रकार कुमारीकी पूजा करी थी ॥ ४९ ॥

काम्पिल्ये नगरे पूर्वं समुद्भूता वरानने ।
अद्यापि दृश्यते लोके शिलारूपेण तिष्ठति ॥ ५० ॥

हे वरानने ! पहिले काम्पिल्य नामक नगरमें कुमारी देवीकी पूजा हुई । अबभी वह कुमारी शिलारूपसे वहां वास करती दिखाई देती है ॥ ५० ॥

सर्वपुण्यतमो वासः सर्वतीर्थसमाकुलः ।
सर्वयज्ञयुतो देवि वेष्टितश्च महर्षिभिः ॥ ५१ ॥
सर्वाश्चर्यसमाक्रान्तः काम्पिल्ये च पुरे वरे ।
ये वसन्ति महादेवि काम्पिल्ये नगरे शुभे ॥ ५२ ॥
इह भुक्त्वा वरान्भोगान्बहुतुष्टिप्रदायकान् ।
सर्वसम्पत्समाकीर्णा ह्यन्ते देव्याः प्रसादतः ।
उल्लंघ्य विष्णुलोकं वै देव्याः स्थानं समाप्नुयुः ॥५३॥

वह स्थान परम पुण्यतम वसतिस्थान है, वह सर्व यज्ञयुक्त सर्व तीर्थसमाकुल, ऋषिगणसेवित और सर्वाश्चर्यमय है, हे देवि ! जो मनुष्य काम्पिल्य नगरमें वास करता है, वह देवीके प्रसादसे इस लोकमें सर्व प्रकारके तुष्टिप्रद भोग उपभोग कर और सर्व सम्पत्ति युक्त होता है और परलोकमें ब्रह्मलोक उल्लंघन करके देवीके स्थानको प्राप्त होता है ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ५३ ॥

यदि कामी भवेत्कोऽपि वैकुंठं परमं व्रजेत् ।
मल्लोकं वा महेशानि गच्छेन्मे मणिमन्दिरम् ॥५४ ॥

यदि कोई मनुष्य कामी हो, तो वह वैकुण्ठपुरमें जाता है अथवा मेरे लोकके मणिमन्दिरमें वास करता है ॥ ५४ ॥

एवं तेद्य मया प्रोक्तं कुमारीचरितं शिवे ।
किञ्चिदेव महामाये पुनः किं परिकथ्यते ॥ ५९ ॥

हे शिवे ! यह मैंने इस समय तुमसे किंचित् कुमारीचरितका वर्णन किया । हे महामाये ! अब क्या कहूं सो कहो ॥ ५९ ॥

इति श्रीयोगिनीतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे देवीश्वरसम्बादे चतुर्विंशति साहस्रे भाषाटीकायां सप्तदशः पटलः ॥ १७ ॥

श्रीदेव्युवाच ।

श्रुतं कुमारीचरितं प्राक्तनन्देववाञ्छितम् ।
इदानीं श्रोतुमिच्छामि कहोलचरितं परम् ॥ १ ॥

श्रीदेवीने कहा—हे देव ! देवतावांच्छित पुरातन कुमारीचरित सुना अब परमोत्कृष्ट कहोलचारित्र सुननेकी इच्छा करती हूं ॥ १ ॥

आज्ञापय महादेव कृपया परमं हि तत् ।
हितं हि सर्वलोकानां योगिनां हृदयार्थदम् ॥ २ ॥

हे महादेव ! आप कृपापूर्वक वह सब लोकहितकर योगियोंका हृदयार्थप्रद साधुचरित वर्णन कीजिये ॥ २ ॥

इश्वर उवाच ।

वेदवेदान्तवेदांगसर्वशास्त्रस्वरूपभाक् ।
सर्वयागेश्वरस्तीर्थपूतः सर्वाघवर्जितः ॥ ३ ॥

इश्वर बोले—वेद वेदान्त और वेदाङ्गका तत्त्व जाननेवाले एवं सर्वशास्त्रार्थतत्त्वग्राही सर्वयज्ञकारी सर्वतीर्थसम्पूत (अर्थात् पवित्र) सब पापोंसे रहित ॥ ३ ॥

सर्वविद्यासर्वमन्त्रकृतसिद्धिर्ऋषीश्वरः ।
सर्ववर्य्यो मुनिश्रेष्ठः परिबभ्राम मेदिनीम् ॥ ४ ॥

सर्व विद्या और मन्त्रद्वारा कृतसिद्धि सबमें श्रेष्ठ ऋषिश्रेष्ठ कहोल ऋषीश्वर पृथ्वीमें भ्रमण करने लगे ॥ ४ ॥

चिन्तामवाप महतीमतीवोद्विग्नमानसः ।
सहस्रसूर्यसंकाशः स एवासीत्पुरा शिवे ॥ ५ ॥

उसी समय उनको एक बडी चिन्ता प्राप्त हुई उससे वह अत्यन्त उद्विग्नमन हुये पहले वह सहस्रसूर्यकी समान प्रभायुक्त थे ॥ ५ ॥

चिन्तया परया सोऽभूत्प्रदीप इव चापरः ।
तदाकाशसमुद्भूता श्रुता वाणी महर्षिणा ॥ ६ ॥

इस समय महती चिन्तासे दीपकके शिखाकी समान क्षीण होगये फिर महर्षिने एक आकाशवाणी सुनी ॥ ६ ॥

कहोल याहि पूर्वस्मिञ्छंकरं देवशङ्करम् ।
स गुरुः सर्वसत्त्वानां सकलं ते करिष्यति ॥ ७ ॥
श्रुत्वा तां गागनीं वाणीं परमानन्दसंप्लुतः ॥
गत्वोवाच कहोलो मे वृत्तान्तं सकलं हि तत् ॥ ८ ॥

"हे कहोल ! तुम पूर्व दिशामें कल्याणकारी शंकर देवके निकट जाओ वह सब जीवोंके गुरु हैं । वही तुम्हारी चिन्ता दूर करके समस्त कार्य सम्पादन करेंगे यह आकाशवाणी सुनकर उन्होंने आनन्दके जलसे भीज पूर्वदिशामें गमन कर मुझसे सब वृत्तान्त कहा ॥७॥८॥

ततस्तस्मै मया दत्ता विद्या काली पराकला ।
चन्द्राक्षरी सर्वज्ञानभावनी चिन्मयी शुभा ॥ ९ ॥
दत्तश्च परमाचारः श्रीमदागमसम्मतः ।
कथितश्च मया तस्मै कहोल पुत्र तच्छृणु ॥ १० ॥

अनन्तर मैंने उनको परमा कला कालीविद्या अर्पण करी । यह विद्या चन्द्राक्षरी और सर्वज्ञानदायिनी चिन्मयी और कल्याणदायक है।

और उनको श्रीमदागमसम्मत परम सदाचारभी देकर कहा । हे वत्स कहोल ! सुनो ॥ ९ ॥ १० ॥

अनेनाचारयोगेन गत्वा कालीं दिगम्बराम् ।
भावयित्वा पूजयेत सर्वाज्ञानविनाशिनीम् ॥ ११ ॥

इस आचार योगसे काशीमें दिगम्बरी कालीके निकट जाकर उन सर्व अज्ञानविनाशिनीकी पूजा करो ॥ ११ ॥

ततस्ते संशया नष्टा भवेयुर्भुवनेश्वरे ।
इत्याज्ञप्तः कहोलः स ऋषिर्वेदविशारदः ।
काशीं गत्वायजत्कालीं पश्चाचारयुतो मुदा ॥ १२ ॥

इससे भुवनेश्वरके समीप तुम्हारा सब संशय नष्ट होगा । उन वेदविशारद ऋषि कहोलने मेरी इस प्रकार आज्ञा पाय काशीमें जाय पश्चाचारसे संपन्न होकर कालीकी पूजा करी ॥ १२ ॥

ततस्ते संशया विघ्नाः पलायाञ्चक्रिरेऽन्वहम् ।
ऋषेस्तस्य कहोलस्य वेदमूर्तेर्महामतेः ॥ १३ ॥

इससे महामति वेदमूर्ति कहोलऋषिके सब संशय विघ्न दिन दिन पलायन करने लगे ॥ १३ ॥

ततस्तस्मिन्कृपा जाता महाकाल्या ऋषौ शुभा ।
तथा च कृपया युक्तः कहोलऋषिसत्तमः ॥ १४ ॥

तदनन्तर उन ऋषि पर महाकालीकी कृपा हुई कालीकी कृपासे ऋषिश्रेष्ठ कहोल ॥ १४ ॥

आत्मानं कालिकारूपं मेने ब्रह्म सनातनम् ।
ज्ञानमायाविनिर्धूतमद्वैतं परमं शिवे ॥ १५ ॥

आत्मस्वरूपको परम ब्रह्म सनातन मायारहित ज्ञाननिर्धूत अद्वैत परमकालीरूपको प्राप्त हुए ॥ १५ ॥

सर्वमायाविनिर्मुक्तो जातः स ऋषिरुत्तमः ।
सर्वं ब्रह्ममयं चासीज्जगदेतच्चराचरम् ॥ १६ ॥

फिर वह सर्व मायासे छूट और संशयरहित हो इस अखिल चराचर जगत्को ब्रह्ममय देखने लगे ॥ १६ ॥

आत्मदेहादिकं किञ्चिज्जानाति न च कर्हिचित् ॥
तेनैव ब्रह्मज्ञानेन देहकर्म्मादिकं खलु ।
भस्मीभूतं महेशानि ऋषेस्तस्य महात्मनः ॥ १७ ॥

वह आत्मदेहादि कुछभी नहीं जानसके ब्रह्मज्ञानद्वारा उन महात्मा ऋषिके देह कर्मादि सभी भस्म होगये ॥ १७ ॥

ब्रह्मभूतः कहोलर्षिर्महाकाल्याः प्रसादतः ।
अत्याचारेषु सर्वेषु रतः स्यात्स्फुरते हि सः ॥ १८ ॥
एवमेव महाकाली कहोलर्षिसुमानिता ।
चकार लीनं तमृषिं स्वीयदेहे तु कारणे ॥ १९ ॥

महाकालीके प्रसादसे वह कहोल ऋषि ब्रह्मस्वरूप हुए फिर वह सब प्रकार अत्याचारमें रत तथा अत्याचारकी स्फूर्ति (अर्थात् उसका प्रकाश) पाने लगे। इस प्रकार महाकालीने कहोलऋषिके द्वारा पूजित होकर उन महर्षिको अपने कारण देहमें लीन कर लिया ॥१८॥१९॥

यं यं भावमुपाश्रित्य यजेत्कालीं हि साधकः ।
प्राप्नुयादचिरात्तं हि महाकाल्याः प्रसादतः ॥ २० ॥

जो साधक जो जो भाव अवलम्बन करके कालीकी आराधना करता है। वह महाकालीके प्रसादसे तत्काल उनको प्राप्त होता है ॥ २० ॥

श्रीदेव्युवाच ।

श्रुतं कहोलचरितं पूर्वं विस्मयकारकम् ।
देवासुरमुनीन्द्राणामृषीणां भावितात्मनाम् ॥ २१ ॥

इदानीं श्रोतुमिच्छामि गङ्गां त्रैलोक्यपावनीम् ।
कां विद्यां प्राप्य सा जाता तद्वदस्व मयि प्रभो॥२२॥

श्रीदेवीजीने कहा–हे प्रभो ! मैंने देव, असुर, मुनि और ऋषियों-कोभी विस्मयकारक पुरातन कहोलचरित्र सुना । अब तीनों लोकको पवित्र करनेवाली गंगाका विषय सुननेकी इच्छा हुई है । और उन्होंने किस विद्याको प्राप्त होकर जन्म ग्रहण किया । यह मुझसे विस्तारसहित वर्णन कीजिये ॥ २१ ॥ २२ ॥

ईश्वर उवाच ।

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि यन्मां त्वं परिपृच्छसि ।
श्रवणात्सर्वपापानि नाशमायान्ति नान्यथा ॥ २३ ॥

ईश्वरने कहा–हे देवि ! जो तुमने पूछा वह सुनो इसके सुननेसे सब पाप नष्ट होजाते हैं इसमें सन्देह नहीं ॥ २३ ॥

मन्त्रमादौ प्रवक्ष्यामि त्रैलोक्यपावनाभिधम् ।
महादेव्या महाकाल्या महादेवेन भाषितम् ॥ २४ ॥

पहिले देवभाषित महादेवी महाकालीका त्रैलोक्यपावननामक मंत्र कहता हूं ॥ २४ ॥

निजबीजं समुद्धृत्य सम्बोधनपदद्वयम् ।
पुनश्च निजबीजं हि विद्यां चापि यशस्करीम् ॥२५॥

निज बीज कहकरके सम्बोधन पदद्वय उद्धारपूर्वक फिर निजबीज उद्धार करनेके पीछे यशस्करी परा विद्या उच्चारण करै (?) ॥ २५ ॥

एतां विद्यां समाराध्य गङ्गा त्रैलोक्यपावनी ।
जटातटे ममास्थायाजपद्विद्यामहर्न्निशम् ॥ २६ ॥

त्रैलोक्यपावनी गंगाने इस विद्याकी आराधाना करके मेरे जटातटमें अवस्थानपूर्वक दिन रात इस विद्याका जप किया ॥ २६ ॥

तेन सा पावनी गङ्गा मोक्षदा सर्वदेहिनाम् ।
सिद्धमन्त्रप्रभावेन कालीतेजोपबृंहिता ॥ २७ ॥

उसी मंत्रके प्रभावसे पावनी गंगा सब देहधारियोंको मोक्षदायिनी हुई सिद्धि मन्त्रके प्रभावसे कालीतेजमें संवर्द्धित होकर ॥ २७ ॥

अतः सा पावनी भूता मोक्षदा च सदाशिवे ।
अतो हि सर्वतीर्थेषु सा विद्या सर्वपूजिता ॥ २८ ॥

और मुक्तिप्रदा हुई हैं, वह सदा पावनी है हे शिवे! इसी कारण वह विद्या सर्वतीर्थोंमें सदा पूजित है ॥ २८ ॥

माहात्म्यं किमु वक्ष्यामि गङ्गायाश्च सुरेश्वरि ।
यन्नामस्मरणादेव पापिनो मुक्तिभागिनः ॥ २९ ॥

हे सुरेश्वरि! गंगाका माहात्म्य क्या वर्णन करूं जिनके नामको स्मरण करतेही पापी मुक्तिलाभ करते हैं ॥ २९ ॥

गङ्गागङ्गेति यो ब्रूयात्पापिनामपि पातकी ।
सर्वांश्च पातकान्हित्वा स गच्छेद्वैष्णवीं पुरीम् ॥ ३० ॥

पापियोंमें पातकी और अतिपातकी होकरभी जो मनुष्य गंगा गंगा कहता है उसके सब पाप नष्ट होजाते हैं । और वह विष्णुपुरीमें जाता है ॥ ३० ॥

यानि कानि च पापानि प्रोक्तानि च महेश्वरि ।
प्रायश्चित्तविहीनानि प्रायश्चित्तपराण्यपि ॥ ३१ ॥
तानि सर्वाणि नश्यन्ति गङ्गाजलनिषेकतः ।
नगर्य्या वा पुरादम्बु यत्तद्गङ्गां प्रसर्पति ॥ ३२ ॥

हे महेश्वरि! जिस पापका प्रायश्चित्त है, वा जिसका प्रायश्चित्त नहीं है, एस समस्त पाप ही गंगास्नानसे नष्ट होते हैं, नगरी पुरी वा अन्यान्य स्थानोंसे वहताहुआ जल गंगामें गिरने पर ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

सर्वं गङ्गा भवत्येव मन्त्रमाहात्म्यतः शिवे ॥ ३३ ॥

मंत्रमाहात्म्यसे वह सब गंगाही होजाता है ॥ ३३ ॥

यत्र देशेवसद्गङ्गा स देशः पुण्यभाजनः ॥ ३४ ॥

जिस देशमें गंगा देवी बहती है, वह देश पुण्यभाजन है ॥३४॥

पुण्यक्षेत्रं समुद्दिष्टं पवित्रं योजनद्वयम् ।
तत्र यत्क्रियते कर्म गङ्गायां तन्न संशयः ॥ ३५ ॥
गङ्गायां यत्कृतं देवि तदक्षयफलं भवेत् ।
साङ्गं वापि विहीनं वा कथितं शम्भुवल्लभे ॥ ३६ ॥
तत्रस्थाः प्राणिनः सर्वे देवलोकविनिःसृताः ।
भुक्त्वा च विविधान्भोगान्कृत्वा च सुकृतं सदा ।
अनायासेन यास्यन्ति स्थानं परमदुर्लभम् ॥ ३७ ॥

गंगाकी दो योजन दूर तक भूमि पवित्र पुण्यक्षेत्र कहकर निर्दिष्ट है। वहां कोई कार्य करनेपर गंगामेंही वह कार्य किया जाता है इसमें सन्देह नहीं गंगामें सांग वा हीनरूपसे जो कुछ किया जाता है वह अक्षयफलदायक होता है। हे शंभुवल्लभे ! गंगास्थित सब प्राणीला देवलोकसे निकल कर गंगावासी हुए हैं। गंगावासी विविध भोगोंको भोगते हुए सदा सुकृतिसाधनपूर्वक सहजमेंही शोकादिशून्य परम दुर्लभ स्थानमें जाते हैं ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

यत्र लोका न शोचन्ति देवर्षिगणसंस्तुते ।
गङ्गायां त्यजति प्राणान्यस्तु पुण्यस्वभावतः ॥३८॥
ज्ञानतो मोक्षमाप्नोति वैकुण्ठं तदभावतः ।
स्वर्लोकाद्या महेशानि गंगयाघविवर्जिताः ॥ ३९ ॥

हे देवर्षिगणसंस्तुते देवि ! जिस गंगातटमें जाकर मनुष्य सोच नहीं करते उस गंगातट पर जो मनुष्य ज्ञानपूर्वक प्राणत्याग करता है वह मोक्षको प्राप्त होता है और अज्ञानसे मरनेपर वैकुंठ प्राप्त होता

है । हे महेश्वरि ! स्वर्गादि समस्त लोक गंगाद्वारा पापहीन होकर पवित्र स्थान हुए हैं ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

गङ्गामुद्दिश्य यो गच्छन्पथि प्राणान्विमुञ्चति ।
विष्णुलोकं बहुगुणं पापी चेत्सोऽपि गच्छति ॥ ४० ॥

गंगाके उद्देश्यसे गमन करके मार्गमें प्राण त्याग करनेपर यदि वह पापीभी हो तोभी बहुगुण विष्णुलोकको प्राप्त होता है ॥ ४० ॥

तत्तीरे यस्त्यजेत्प्राणान्न्यायतोऽन्यायतोऽपि वा ।
सोऽपि स्वर्गमवाप्नोति सर्वसद्भावसंयुतम् ॥ ४१ ॥

जो मनुष्य न्यायसे वा अन्यायसे गंगाके तटपर प्राणत्याग करताहै तो वह सर्वफलयुक्त स्वर्गलाभ करता है ॥ ४१ ॥

यावदस्थीनि गंगायां स्थीयन्ते हि मृतस्य च ।
तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ॥ ४२ ॥

जबतक गंगामें मृतककी अस्थि पडी रहती हैं । तबतक सहस्रों वर्षपर्यन्त वह मनुष्य स्वर्गलोकमें पूजाको प्राप्त होता है ॥ ४२ ॥

गंगाजलसमायोगान्म्रियते यत्र कुत्रचित् ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोके महीयते ॥ ४३ ॥

जो कोई मनुष्य जिस किसी स्थानमें यदि गंगाजलके संयोगसे प्राण त्याग करै तो वह सब पापोंसे छूटकर विष्णुलोकमें पूजित होता है॥४३॥

गङ्गातीरे चतुर्हस्ते पिण्डं दद्यात्समाहितः ।
पितॄणां निष्कृतिं कृत्वा विष्णुलोके वसेन्नरः ॥ ४४ ॥

गंगातटमें गंगाप्रवाहके चार हस्त दूर सावधानचित्तसे पितरोंको पिण्ड देनेपर पितरोंका छुटकारा होता है । और पिण्ड देनेवाला मनुष्य विष्णुलोकमें वास करता है ॥ ४४ ॥

गङ्गायां तर्पणं देवि पुण्यवान्यः समाचरेत् ।
महातृप्तिर्भवेत्सत्यं पितॄणाञ्च शताब्दिका ॥ ४५ ॥

जो पुण्यवान् मनुष्य गंगामें पितृतर्पण करता है उसके पितर सौ वर्षतक महातृप्त रहते हैं इसमें सन्देह नहीं ॥ ४५ ॥

ऋषीणां देवतानाञ्च तथैव समुदाहृतम् ।
दिवा वा यदि वा रात्रौ सन्ध्यायां वा महानिशि ॥४६॥
स्नानं दानं तपो होमं तर्पणं पूजनं शिवे ।
सर्वं कुर्य्यात्तु गङ्गायां कालभेदं न चाचरेत् ॥ ४७ ॥

ऋषि और देवताओंकीभी इतनीही तृप्ति होती है । हे देवि ! दिन वा रात्रि सन्ध्याकाल वा महानिशा इन सब समय गंगामें स्नान दान तप होम तर्पण पूजा इत्यादि सब कार्य करै । इसमें कालभेदका विचार नहीं करना चाहिये ॥ ४६ ॥ ४७ ॥

कालभेदं समाचर्य यदि कर्म त्यजेच्छिवे ।
ततस्तु स्थावरो भूयादरण्ये तदनन्तरम् ॥ ४८ ॥
दावाग्नीनां शिखाभिर्वा नष्टो ह्यन्येन हेतुना ।
तदन्ते परमेशानि चाण्डालो नित्यदुःखितः ॥ ४९ ॥

हे शिवे ! यदि कालभेद समाचरणपूर्वक अर्थात् गंगाके तटपर रात्रि आदि कर्म्मकालके विरुद्धकालमें जानेसे उस कालको कर्म्मका अयोग्य समझकर गंगामें कर्म्म त्याग करै । तो वह स्थावर होकर वनमें जन्म ग्रहण करता है । तदनन्तर दावाग्निशिखा और अनेक प्रकारके कारणोंसे नष्ट होता है । हे परमेश्वरि ! उसके उपरान्त वह मनुष्य नित्य दुःखी चाण्डाल होकर जन्म लेता है ॥ ४८ ॥ ४९ ॥

सप्तजन्मसु जायेत तदन्ते रजको भवेत् ।
जन्मत्रयं महेशानि तदन्ते शूद्रयोनिषु ॥ ५० ॥
दशजन्म महेशानि ततो वैश्यत्वमाप्नुयात् ।
ब्राह्मणत्वं ततः प्राप्य लभेत्पुण्यगतिं ततः ॥ ५१ ॥

सात जन्मतक चाण्डाल होकर फिर तीन जन्म धोबी होता है। इसके पीछे शूद्रयोनिमें दश जन्म बिताकर चार जन्म पर्यन्त वैश्य होता है। फिर तीन जन्म क्षत्रिय और फिर ब्राह्मणत्वको प्राप्त होकर पुण्यगति प्राप्त करसकता है ॥ ५० ॥ ५१ ॥

गङ्गायां हरते यो हि यत्किञ्चित्परमेश्वरि ।
तस्य मोहान्धतमसो रौरवान्नास्ति निष्कृतिः ॥५२॥
आभूतसंप्लवं यावत्कथितं ते सुरेश्वरि ।
गंगातीरे च गंगायां प्रतिगृह्णाति यो नरः ।
श्वपचो जायते नित्य दशजन्मानि कामिनि ॥ ५३ ॥

हे परमेश्वरि ! हे सुरेश्वरि ! यदि कोई मनुष्य गंगापर किञ्चित् मात्रभी द्रव्य हरण करै तो वह प्रलयकालपर्यन्त मोहान्धतमस रौरव नरकमें गिरता है। किसी प्रकार छुटकारा नहीं पाता हे कुलकामिनि ! जो मनुष्य गंगाके तटपर वा गंगामें प्रतिग्रह करता है अर्थात् दान लेता है वह चाण्डालयोनिमें जन्म लेकर दश जन्म बिताता है॥५२॥५३॥

ततो दारिद्र्यदोषेण परिभ्रमति मेदिनीम् ।
सप्त जन्म महादेवि तदन्ते निष्कृतिं व्रजेत् ॥ ५४ ॥

फिर दारिद्र्यदोषसे पीडित होकर सात जन्म पृथ्वीमण्डलमें भ्रमण करता है। फिर छुटकारा मिलता है ॥ ५४ ॥

एवन्ते कथितं तस्या मन्त्रमाहात्म्यमुत्तमम् ।
कालिकाया महेशानि गङ्गामाहात्म्यकारणात्॥५५॥

हे महेशानि ! यह मैंने तुमसे गंगामाहात्म्यके कारण कालिकाका उत्तम मंत्र माहात्म्य कहा ॥ ५५ ॥

इति श्रीयोगिनीतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे देवीश्वरसम्वादे चतुर्विंशतिसाहस्रे भाषाटीकायामष्टादशः पटलः ॥ १८ ॥

श्रीदेव्युवाच ।

भो देव परमानन्द करुणावारिवारिधे ।
अपारे घोरसंसारे पतितानां महार्णवे ।
त्वामृते कः समुद्धर्तानन्ते ब्रह्माण्डमण्डले ॥ १ ॥

श्रीदेवीने कहा—हे परमानन्द देव ! हे करुणासिन्धो ! अपार और घोरतर संसार सागरमें पडेहुए मनुष्योंका उद्धार करनेवाले आपके अतिरिक्त ब्रह्माण्डमण्डलमें और कौन है ॥ १ ॥

गुरुस्त्वं सर्वसत्त्वानां ब्रह्मादीनां यतो ध्रुवम् ।
पृच्छामि त्वामतो नाथ कृपया परया वद ॥ २ ॥

आपही ब्रह्मादि सब जीवोंके गुरु हैं हे नाथ ! इसी कारण आपसे पूछती हूं कृपाप्रकाशपूर्वक कहिये ॥ २ ॥

श्रुतं सर्वं जगन्नाथ त्वन्मुखाम्भोजनिर्गतम् ।
इदानीं श्रोतुमिच्छामि यन्मे मनसि चागतम् ॥ ३ ॥

हे जगन्नाथ ! आपके मुखकमलसे निकलाहुआ सब विषय सुना अप अपना मनोगत विषय सुननेकी इच्छा करती हूं ॥ ३ ॥

कां विद्यां समुपाश्रित्य करालो भैरवः स्वयम् ।
क्रोधवक्त्रो भैरवोऽभूत्सर्वसत्त्वभयप्रदः ॥ ४ ॥

कराल भैरव कौनसी विद्याको अवलम्बन करके सर्व जीवोंको भयप्रद क्रोधवक्त्र भैरव हुए ॥ ४॥

विद्रवन्ति भयार्ता वै यस्माद्देवासुरादयः ।
त्यक्त्वा स्वां स्वां श्रियं सत्त्वं पलायन्त इतस्ततः॥५॥

जिनको देखते ही भयसे कातर हो देव और असुर इत्यादि समस्तही अपना अपना ऐश्वर्य सत्त्व छोडकर इधर उधर भागते हैं ॥५॥

तां विद्यां श्रोतुमिच्छामि वद नाथ दिगम्बर ॥ ६ ॥

हे नाथ दिगम्बर ! मैं उसी विद्याके सुननेकी इच्छा करती हूं आप वर्णन कीजिये ॥ ६ ॥

ईश्वर उवाच ।

अतिगुह्या महाविद्या गुह्याद्गुह्यतरा हि सा ।
ब्रह्मविष्णुशिवादीनां सर्वस्वं जीवनावधि ॥ ७ ॥
कथितुं नैव शक्नोमि तां विद्यां परमेश्वरि ।
कथ्यते नाममात्रं हि ज्ञायतां कुलभैरवि ॥ ८ ॥

ईश्वर बोले—हे परमेश्वरी ! वह महाविद्या गुह्यसेभी गुह्य अतिगुह्य है । वह ब्रह्मा, विष्णु, महादेवादिकाभी जीवनसर्वस्व है । अतएव मैं उस विद्याके कहनेमें समर्थ नहीं हूं हे कुलभैरवि ! नाममात्र कहता हूं तुम जानलो ॥ ७ ॥ ८ ॥

या च वै परमेशानि सुन्दरी वरदायिनी ।
विद्याराज्ञी घोरकाली अनिरुद्धसरस्वती ॥ ९ ॥
गृहीत्वा तां महाविद्यामादिनाथः स भैरवः ।
महाकालश्रीभैरवात्सद्गुरोः श्रीमुखाच्छिवे ॥ १० ॥
प्राप्तिमात्रान्मनोर्यस्य करालो भैरवः शिवे ।
अकरोत्पूतमात्मानं सर्वस्मादधिकं स्वयम् ।
सर्वसंसारनिर्मुक्तो ब्रह्मादिसुरवन्दितः ॥ ११ ॥

हे परमेशानि ! आदिनाथ वह भैरव महाकालभैरवादि सद्गुरुके श्रीमुखसे सुन्दरी वरप्रदा घोरकाली अनिरुद्धसरस्वती नामक श्रेष्ठ विद्याको प्राप्त हुए । करालभैरव उस विद्याकी प्राप्तिमात्रसेही अपनी आत्माको पवित्र करके स्वयं ब्रह्मादिदेवताओंसे वन्दित और सब संसारसे मुक्त होकर सबसे श्रेष्ठ हुए ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥

सतूदयाचले पूर्वं तपस्तेपेऽतिदुष्करम् ।
भूत्वोर्द्ध्वचरणो देवि वर्षाणां नियुतद्वयम् ॥ १२ ॥

हिमाचले चैकलक्षं लक्षं वै मन्दराचले ।
कनकाद्याश्रमे लक्षमुड्डीयाने द्विलक्षकम् ॥ १३ ॥
पञ्चविंशतिलक्षं च तथा जालन्धरे शिवे ।
पुण्यशैले तथा लक्षं पञ्चविंशतिमानतः ॥ १४ ॥
पञ्चविंशतिलक्षं च कामाख्यायोनिमण्डले ।
एवं तेपे तपो घोरं कोटिवर्षं सुदुष्करम् ॥ १५ ॥
कष्टेन महता देवि करालो भैरवः स्वयम् ।
तथापि तं प्रति प्रीता नाभूत्काली कपालिनी ॥१६॥

वह पूर्व दिशा उदयाचलमें जाकर दुष्कर तपस्या करने लगे उन्होंने ऊर्ध्वपद अर्थात् ऊपरको पैर करके दो नियुत वर्ष तप किया था हिमाचलमें एक लक्ष मन्दराचलमें लक्ष कनकाचलमें लक्षवर्ष और उड्डीयानमें दो लक्ष जालन्धरमें पचीस लक्ष पुण्यशैलमें पचीस लक्ष कामाख्या योनिमण्डलमें पचीस लक्ष इस प्रकार कराल भैरवने करोड वर्षतक महाकष्टसे अत्यन्त कठिन तपस्या करी थी । किन्तु तोभी काली उनके प्रति प्रसन्न नहीं हुई ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥

ततः स भैरवो देवि गुरोरन्तिकमन्वगात् ।
निवेदयामास तथा वृत्तान्तं तपसः शिवे ॥ १७ ॥

हे शिवे ! इसके पीछे करालभैरवने गुरुके निकट जाकर तपस्याका सब वृत्तान्त निवेदन किया ॥ १७ ॥

श्रुत्वा श्रीमानादिनाथो महाकालो महेश्वरः ।
मन्नाथः परमेशानि भावनावशतां गतः ॥ १८ ॥

हे देवि ! यह सुनकर मदीयनाथ श्रीमदादीनाथ महेश्वर महाकाल चिन्ता करने लगे ॥ १८ ॥

विना च परमाचारं न हि सिद्धिर्भवेत्किल ।
कथं त्वां परमाचारं कथयामि समासतः ॥ १९ ॥

जिस परमाचारके बिना वह सिद्धि होनेवाली नहीं है । मैं किस प्रकार उस परमाचारका वर्णन करूं ? ॥ १९ ॥

स एव परमाचारः कालीहृदयसंगतः ।
गुह्यातिगुह्यगुह्यश्च ब्रह्मादीनामगोचरः ॥ २० ॥

वह महाकालीके हृदयगत रहता है । वह गुह्यातिगुह्यगुह्य ब्रह्मादिकोंकेभी अगोचर है ॥ २० ॥

परमुक्तिप्रदः साक्षात्सर्वसिद्धिवरप्रदः ।
कालीप्रत्यक्षबीजोऽयं मम सर्वस्वमेव च ॥ २१ ॥

और सर्व सिद्धिवरप्रद तथा साक्षात् मुक्तिप्रद है । यह कालीका प्रत्यक्ष बीजभी मेरा सर्वस्व है ॥ २१ ॥

केवलं कथितं सर्वं शिवेन सदृशो भवेत् ।
श्रुत्वा शान्तो महायोगी गोपितस्तेन यत्नतः ॥२२॥

यह केवल कथित होनेपरही उसके सुननेसे शिवतुल्य और सत्त्वशान्त महायोगी होता है । इसी कारण यत्नपूर्वक गुप्त रहता है ॥२२॥

आचारार्थं स्वीयपादं कालरुद्रे समर्पितम् ।
मम सर्वस्वकं चेदं निरुद्वेगोप्यनेन वै ।
संगोप्यानेन परमं तथाचारं सदाचरेत् ॥ २३ ॥

आचारके निमित्त इसका पादांश कालरुद्रमें समर्पण किया गया है । यह मेरा सर्वस्व है । इसको प्राप्त होकरही मैं निरुद्वेग और स्वस्थचित्त हुआ हूं अत्यन्त गुप्तरीतिसे यत्नपूर्वक इस आचारका अनुष्ठान करना चाहिये ॥ २३ ॥

सदाचारस्य सम्प्राप्त्या तत्त्वज्ञानं महामतिः ।
सर्वेषामधिपो भूयाद्विश्ववन्द्यः सदाशिवः ।
अजरामरतां प्राप्तो महाशान्तः परेश्वरः ॥ २४ ॥

सदाचाररतं नित्यं शान्तं दृष्ट्वाप्यहं पुनः ।
पदं मदीयं गुरुतां दत्त्वा तस्मै समासतः ॥ २५ ॥
अहं तु तस्य देहे वै मुदा तिष्ठामि सर्वदा ।
सर्वेषान्तु सहस्रारे तिष्ठामि कमले परे ॥ २६ ॥

सदाचारका निगूढ तत्त्वज्ञान प्राप्त होनेपर वह मनुष्य सबका अधीश्वर महामति विश्ववन्द्य तथा सदाशिव महाशान्त और परमेश्वर होकर अजर अमरता प्राप्त करता है । तिस आचारमें निरत नित्य शान्त मनुष्यको देखकर मैं अपना पद और गुरुत्व प्रदान करता हूं । मैं उसके देहमें सदाही आनन्दसहित वास करता हूं । मैं सबके सहस्रार कमलमें स्थित रहता हूं ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥

शिवत्वं प्राप्य तिष्ठामि तापकं सर्वदा ह्यहम् ।
शिवः शिवोऽहं तु शिवो न भेदः कुत्रचित्सदा॥ २७॥

मैं वहां शिवत्वमय होकर सदाही वास करता हूं मैं शिव । मैं शिव । मैं शिव । मेरा कहींभी किसी समय भेद नहीं है ॥ २७ ॥

ब्रह्मविष्णुशिवादीनां गुरुर्यत्र ततः शिवः ॥
सोऽपि शान्तो महायोगी आचारक्षम एव सः ॥ २८॥
नान्यः कश्चित्क्षमः क्वापि सदाचारे कदाचन ।
शिवस्य कृपया चैव केवलं साधकः क्षमः ॥ २९ ॥
क्षमा सा गिरिजा देवी नान्यः कश्चित्कदाचन ।
उग्रभावो भीमकर्मा करालो भैरवः सदा ॥ ३० ॥
तमेव परमाचारं कथं गोप्तुं क्षमो ह्यहम् ।
यथा मे कालिकाराध्या तथाचारोऽयमेव हि ॥ ३१॥

जहां ब्रह्मा विष्णु महेश्वरादिके गुरु हैं । वहीं शिव हैं । इस प्रकार विचारशील वह मनुष्यही शान्त महायोगी और वही आचारमें समर्थ है

अन्य कोई मनुष्य उस आचारमें समर्थ नहीं है । साधकमनुष्य शिवकी कृपाके बलसे ही उसमें समर्थ होता है । और वह गिरिसुता देवी समर्थ होती है । अन्य कोई नहीं यह भयंकर कर्मकारी करालभैरव सदाही उग्रस्वभाव है । तो उस परमाचारके छिपानेमें कैसे समर्थ हूं ? कालिका जिस प्रकार मेरी आराधनीय है । यह आचारभी उसी प्रकार है ॥ २८–३१ ॥

विद्याराज्ञीं समाराध्यां दातुं योग्यः कदाप्यहम् ।
योग्यो न परमाचारं दातुं कालीहृदःप्रियम् ॥ ३२ ॥
इति सम्भाव्यादिनाथः करालं भैरवं प्रति ।
आज्ञापयामास पुत्र प्रति गच्छ त्रिलोचनम् ॥ ३३ ॥

आराध्या विद्या राज्ञीके प्रदान करनेमें मैं कदाचित् योग्य हूं । किन्तु कालीका हृदयगत आचार प्रदान करनेमें कभी योग्य नहीं हूं । श्रीमान् आदिनाथने इस प्रकार विचार कर करालभैरवको आज्ञा दी । हे पुत्र ! तुम त्रिलोचनके समीप जाओ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

देवी शिवं समारुह्य तत्रासीत्करुणामयी ।
याता मातुः कालिकायास्ततोऽसौ भैरवः स्वयम् ॥ ३४

वहां करुणामयी काली शिवोपरि आरोहण करके स्थित हैं तदनन्तर भैरव माताके निकट गये ॥ ३४ ॥

त्यक्त्वा तपस्तु सकलं भावयन्नन्तरात्मना ।
यद्यज्जप्तं तपो ह्येवं सर्वं जातं वृथा हि तत् ॥ ३५ ॥
ममाभाग्यवशात्सा हि गुर्वाज्ञा विफला भवेत् ।
अतः शरीरं त्यक्ष्यामि न वक्ष्यामि कदाचन ॥ ३६ ॥

तपस्या छोडकर अन्तरात्माके सहित जो जो जप किया वह समस्तही तपकी समान विफल हुआ । भैरवने मनमें विचारा मेरे दुर्भाग्यके वश गुरुकी आज्ञाभी विफल हुई इस कारण मैं इस शरीरको त्याग दूंगा अब कभी इस देहका भार वहन नहीं करूंगा ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

प्रतिज्ञामीदृशीं कृत्वा देहं संत्यक्तुमुद्यतः ।
तदाकाशसमुद्भूता वाणी जाता मनोहरा ॥ ३७ ॥

इस प्रकार प्रतिज्ञा करके वह शरीर त्यागनेमें उद्यत हुए उसी समय मनोहर आकाशवाणी हुई ॥ ३७ ॥

शृणु त्वं हि महाभाग महात्मन्भैरव स्वयम् ।
तामाज्ञां कथयामि त्वां श्रुत्वा कर्णेऽवतंसय ॥ ३८ ॥

हे महात्मा करालभैरव ! इस आज्ञाको सुनो । और सुनकर धारण करो ॥ ३८ ॥

गुर्वाज्ञा विफला या तु तव वै भैरवोत्तम ।
नाचारेण तपस्तप्तं त्वयात्मज्ञानतः सदा ॥ ३९ ॥

तुम्हारे गुरुकी आज्ञा विफल होनेका कारण यह है कि तुमने विना आचार केवल आत्मज्ञानानुसारही सदा तप किया है ॥ ३९ ॥

कथं तुभ्यं तु सिद्धिश्च दर्शनं वा ददाम्यहम् ।
पुनर्याहि महाकालभैरवं भवनाशनम् ॥ ४० ॥
आदिनाथं तव गुरुं वृत्तान्तं कथयेदृशम् ।
तदावश्यं महाचारं तुभ्यं वै स प्रदास्यति ॥ ४१ ॥

मैं तुमको किस प्रकार दर्शन दूं । सुतरां तुमको सिद्धि नहीं हुई । तुम फिर उन आदिनाथ भवनाशन महाकालभैरव गुरुके निकट जाओ और यह सब वृत्तान्त कहो । वह तुमको अवश्यही महाचार प्रदान करेंगे ॥ ४० ॥ ४१ ॥

तेनैवाचारतो देव ममाराधनमाचर ॥
अचिरात्तत्प्रदास्यामि यद्यन्मनसि वर्त्तते ॥ ४२ ॥

हे सुव्रत ! तुम उसी आचरणसे मेरी आराधना करो तो तुम्हारे मनमें जो जो वर्त्तमान है वह सब प्रदान करूंगी ॥ ४२ ॥

कालीतारामहामंत्रं हितं मन्त्रञ्च वै ध्रुवम् ।
कुलाचारं विना यो हि जपेद्वै नारकी भवेत् ॥ ४३ ॥

कुलाचारके विना जो मनुष्य कालीताराका महामंत्र जपता है । वह निःसन्देह नारकी होता है ॥ ४३ ॥

कथं सिद्धिर्भवेत्तस्य मुक्तिस्तिष्ठति दूरतः ॥ ४४ ॥

उसको किस प्रकार सिद्धि हो उसको मुक्ति दूर स्थित रहती है॥४४॥

एवमाज्ञां महाकाल्या लब्ध्वासौ भैरवोत्तमः ।
पुनर्गत्वा च श्रीनाथ आदिनाथं महाप्रभुम् ॥ ४५ ॥
महाकालं महादेवं शून्यरूपं जगद्गुरुम् ।
निवेदयामास तदा यद्यद्वाक्यं समीरितम् ॥ ४६ ॥

वह भैरवोत्तम महाकालीकी इस प्रकार आज्ञा पाकर पुनर्गमनपूर्वक महादेवीने जो जो वचन कहेथे वह सब वचन श्रीनाथ महाप्रभु महाकाल महादेव शून्यरूप जगद्गुरु आदिनाथसे निवेदन किये ॥ ४५ ॥४६॥

मातुः कृपा महाकाल्याः करालो भैरवाधुना ।
इति मत्वानन्दितः स गुरुर्वै शून्यरूपभाक् ॥ ४७ ॥

कराल भैरवके प्रति महाकाली माताकी कृपा हुई है । यह विचार कर शून्यरूपी जगद्गुरुको आनन्द उदय हुआ ॥ ४७ ॥

तदा नियमपूर्वं हि करालो भैरवोऽवदत् ॥ ४८ ॥
कुलाचारं परं गुप्तं कालीतन्त्रोदितं हि यत् ।
महाकालो जगन्नाथोऽभिषिक्तं तच्चकार ह ॥४९॥
शाक्ताभिषेकविधिना पूर्णाभिषेकतस्तथा ॥
ददौ नाम करालाय क्रोधवक्रेति विश्रुतम् ॥ ५० ॥

तब नियमपूर्वक कालीतन्त्रोदित परम गुप्त कुलाचार कहा । महाकाल जगन्नाथने शाक्ताभिषेक और पूर्णाभिषेक विधिद्वारा उसके

अभिषेक किया और करालवक्त्रभैरवको क्रोधवक्त्रभैरव यह नाम प्रदान किया ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ५० ॥

दिव्यभावं श्रावयित्वा वीरभावं ततः परम् ।
मदिरां मत्स्यमुद्रां च पात्रं कारणपूरितम् ॥
ददौ तस्मै महाकालः शून्यरूपी गुरुः स्वयम् ॥५१॥

उन शून्यरूपी स्वयं गुरु महाकालने उसको दिव्यभाव और वीरभाव प्रदान करनेके पीछे मदिरा मत्स्य और मुद्रा सहित कारणपूरित पात्रका उपदेश दिया ॥ ५१ ॥

तदानीं शुशुभे सर्वं जगदेतच्चराचरम् ।
क्रोधवक्त्रोऽपि नत्वा श्रीमहाकालीपदाम्बुजम् ॥ ५२ ॥

तब चराचर जगत् शोभा पाने लगा क्रोधवक्त्र भैरवने श्रीमहाकाली-के चरणकमलोंमें नमस्कारपूर्वक ॥ ५२ ॥

महाकालस्तदा देवि स्मृत्वा श्रीगुरुपादुकाम् ।
गुर्वाज्ञया भावयुक्तः परं स्वीकृत्य कारणम् ॥ ५३ ॥

हे देवि ! महाकालनेभी गुरुपादुकाको स्मरण करके गुरुकी आज्ञासे भावयुक्त होकर कारण स्वीकार किया ॥ ५३ ॥

स बुद्धिमांश्च तेजस्वी परमानन्दपूरितः ।
आनन्दजलधौ देवि निमग्नः क्रोधभूपतिः ॥ ५४ ॥
शक्तिपादौ महेशानि भूयो नत्वा गुरोः पदम् ।
अस्तौषीत्परया भक्त्या संसारे सागरे स्थितः ॥५५ ॥

फिर बुद्धिमान् तेजस्वी क्रोधवक्त्रभैरव आनन्दसागरमें निमग्न हो शक्तिपदमें वारम्वार प्रणाम करनेके पीछे गुरुके चरणोंकी वन्दना करके संसारमें अवस्थानपूर्वक परमभक्तिसहित गुरुकी स्तुति करने लगे ॥ ५४ ॥ ५५ ॥

क्रोधवक्त्रभैरव उवाच ।

नमामि नाथं सुरकल्पवृक्षं गुरुं चिदानन्दमहावतारम् ।
नित्यं हि विज्ञानमनन्तरूपंपरात्परं ब्रह्मशिवस्वरूपम्५६

क्रोधवक्त्र भैरवने कहा–जो चिदानन्दके महावतार सुरकल्पवृक्ष श्रीनाथगुरु विज्ञानस्वरूप आनन्दमय नित्य शिव ब्रह्मस्वरूप परात्पर ॥ ५६ ॥

जगन्निवासं जगदादिमूलमज्ञातमेकं परमात्मसङ्गम् ।
तेजोमयं निष्कलतत्त्वभावं क्रियाविहीनं परमं निरञ्जनम्५७

जगदादिमूल जगन्निवास अज्ञात एक, परमात्माके संग तेजोमय निष्कल तत्त्वभाव क्रियाविहीन परमनिरंजन ॥ ५७ ॥

प्रपञ्चहीनं परिपूर्णभावमाद्यन्तहीनं प्रकृतेः परस्तात् ।
अरूपरूपं स्फुटमेव सत्यं कृपावतारं खलु शून्यरूपम्५८
अनादिसंसारविनाशबीजं परं पवित्रं परगोचरं गुरुम् ।
शिवाभिधं केवलनाममन्त्रात्प्रकाशभावं प्रणमामि नित्यम् ॥ ५९ ॥

प्रपञ्चहीन परिपूर्णभाव अनाद्यन्त प्रकृतिसे परे अरूपरूप सत्यस्वरूप कृपावतार शून्यरूप ॥ ५८ ॥ अनादि संसार विनाश बीज है। और जो अत्यंत पवित्र और इंद्रियोंसे अग्राह्य हैं उन परम पवित्र गुरुको प्रणाम करताहूं । जो शिवमय केवल नाममंत्रमेंही जिनका प्रकाशभाव है उन गुरुको नमस्कार करता हूं ॥ ५९ ॥

अणोरणीयान्महतो महीयान्पश्यन्ति त्वामादिविदश्च सर्वे । यज्ज्ञानजं लोचनमेव सत्यं स च प्रविष्टस्त्वयि नाथ सत्यम् ॥ ६० ॥

हे नाथ ! हे गुरो ! आदिविद्वरणीयगण जिनको अणुसेभी अणीयान् और महत्‌से भी महान् दर्शन करते हैं । तथा जिनक ज्ञानज लोचनही सत्य हैं वही आपमें प्रविष्ट हैं ॥ ६० ॥

असारसंसारसमुद्रनावं वन्देऽहमाद्यं पुरुषं पुराणम् ।
त्वमेव कालीपरमार्थबीजं नमाम्यहं त्वच्चरणारविन्दम् ॥ ६१ ॥

वही असार संसारसमुद्रसे तारनेवाले हैं उन आद्य पुरातन पुरुषको मैं नमस्कार करता हूं । और तुमही परमार्थसे महाकाली बीजस्वरूप हो आपके चरणकमलोंमें मेरा नमस्कार है ॥ ६१ ॥

स्तोत्रेणानेन यो भक्त्या त्वां स्तोष्यति च साधकः ।
प्रातर्मध्याह्नसायाह्ने तस्य मुक्तिप्रदा भव ॥ ६२ ॥

जो साधकोत्तम प्रातः मध्याह्न और सांयकालमें इस स्तोत्रद्वारा भक्तिसहित तुम्हारी स्तुति करै । उसको मुक्तिप्रदान करो ॥ ६२ ॥

महाकालभैरव उवाच ।

स्तोत्रेणानेन सन्तुष्टः सदाहं तव पुत्रक ।
गच्छ शीघ्रं योनिपीठं देवीशिखरमाश्रितः ॥ ६३ ॥
भज कालीं कुलाचारभाववेश्यापरायणः ।
अचिराद्वाञ्छिता सिद्धिर्भविता ते न संशयः ॥६४ ॥

महाकालभैरवने कहा हे पुत्र! तुम्हारे इस स्तोत्रसे मैं सन्तुष्ट हुआ । तुम शीघ्र योनिपीठमें जाय देवीशिखरमें आश्रय करके कुलाचारभाव वेश्यापरायण हो कालीका भजन करो । तो बहुत शीघ्र सिद्धिलाभ करसकोगे । इसमें सन्देह नहीं ॥ ६३ ॥ ६४ ॥

वेश्यामध्यगतं वीरं कदा पश्यामि साधकम् ।
एवं वदति सा काली तस्माद्वेश्यापरो भव ॥ ६५ ॥
मन्त्राचारे हि सर्वत्र न हि दोषः कदाचन ।
तस्माद् भ्रान्तिं परित्यज्य कुलधर्मं समाश्रय ॥ ६६॥

मंत्राचारमें सर्वत्रही वेश्या दोषजनक नहीं होती । अतएव भ्रान्ति त्यागके कुलधर्मका आश्रय करो ॥ ६५ ॥ ६६ ॥

भ्रान्तिस्तत्र न कर्त्तव्या सिद्धिहानिर्यतो भवेत् ।
विशुद्धचित्तो भूयाच्चेत्सिद्धिः स्यान्निकटस्थिता ॥ ६७ ॥

साधनविषयमें भ्रान्ति सिद्धिकी हानि करती है । अतएव भ्रान्ति त्याग दे । विशुद्धचित्त हो तो सिद्धि निकटही वर्त्तमान है ॥ ६७ ॥

ईश्वर उवाच ।

ततो नत्वा महाकालीं गुरुं बहुविधं मुदा ।
योनिपीठं समासाद्य देवीशिखरमाश्रितः ॥ ६८ ॥
उर्व्वशीमेनकारम्भापञ्चचूडातिलोत्तमाः ।
पञ्चवेश्यारतो भूत्वा कुलाचारपरायणः ।
भावशुद्धां महाविद्यां जजाप क्रोधभूपतिः ॥ ६९ ॥
विद्याराज्ञीं घोरकालीमनिरुद्धसरस्वतीम् ।
अष्टोत्तरशतेनैव तस्य प्रत्यक्षतामयुः ॥ ७० ॥

ईश्वर बोले—तदनन्तर भैरव महाकाली और गुरुको बहुत वार नमस्कार करके योनिपीठ आश्रयपूर्वक उर्व्वशी, मेनका, रम्भा, पंचचूडा और तिलोत्तमा इन पांच वेश्यामें निरत होकर कुलाचारपरायण हुए अनन्तर क्रोधभैरव विद्याराज्ञी घोरकाली और अनिरुद्ध सरस्वती भावशुद्ध महाविद्याका मन्त्र जपने लगे । अष्टोत्तरशतवार जप द्वारा उनकी प्रत्यक्षता लाभ करी ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ ७० ॥

काली करालवदना तेजोरूपा सनातनी ।
तेजसा परिसंच्छाद्य ब्रह्माण्डमण्डलं सदा ॥ ७१ ॥

करालवदना तेजरूपा सनातनी काली तेजसे ब्रह्माण्डमण्डलको आच्छन्न कर रही हैं ॥ ७१ ॥

तद्दृष्ट्वा सुमहत्तेजो भैरवो भयविह्वलः ।
अनुपायो मूर्च्छितः सन्नपतत्पर्वताद्भुवि ॥ ७२ ॥

वह महत्तेज देखकर भैरव भयविह्वल मूर्च्छित और अनुपाय होकर पर्वतसे पृथ्वीमें गिरगये ॥ ७२ ॥

ततः काली जगन्माता कृपासागरसञ्चया ।
आश्वास्योवाच तं क्रोधं वाचामृतसमानया ॥ ७३ ॥

तदनन्तर कृपासागरसञ्चया जगन्माता काली वचनामृतद्वारा अभिषिक्त करके उस क्रोधभूपतिको समझाने लगी ॥ ७३ ॥

श्रीईश्वर उवाच ।

समुत्थाय ततो देवीं भैरवः पुलकान्वितः ।
अस्तौषीत्परया भक्त्या नानाविधिविधानतः ।
मुहुर्मुहुर्ननामासौ ततः कालीमुवाच ह ॥ ७४ ॥

श्रीईश्वर बोले- तदनन्तर भैरवने पुलिकत होकर गात्रोत्थानपूर्वक परमभक्तिसहित अनेक विधिविधानसे कालिकाकी स्तुति करी । और फिर वारम्वार प्रणाम करके महाकालीसे कहा ॥ ७४ ॥

क्रोधवक्त्र उवाच ।

परं ब्रह्म परं धाम परमात्मा सनातनी ।
ममाऽभीष्टं प्रयच्छ त्वं सर्वदा मे मनोन्मयि ॥ ७५ ॥

क्रोधवक्त्रने कहा-हे मनोन्मयी काली ! आप परब्रह्म परम धाम परमात्मा और सनातनी हैं आप मेरी वांछित अभिलाषा प्रदान कीजिये ॥ ७५ ॥

श्रीकाल्युवाच ।

ब्रह्मविष्ण्वादिकानाञ्च ब्रह्माण्डान्तरवासिनाम् ।
नित्यं नियामकस्त्वं हि भव भैरवसत्तम ॥ ७६ ॥

श्रीकालीने कहा-हे भैरवसत्तम ! तुम ब्रह्मा विष्णु इत्यादिके और ब्रह्माण्डान्तरवासीके सब ही नित्य निग्राहक हो अर्थात् सबके पूज्य होओ ॥ ७६ ॥

कुलाचारेण यः कोऽपि मामर्चयति पुत्रक ।
स मे पुत्रत्वमागच्छेत्सत्यं सत्यं न संशयः ॥ ७७ ॥
गृह्णातु वक्रं दास्यामि ब्रह्माण्डभयदं भवान् ।
वक्रं हि कालरूपं तत्सर्वनिग्राहकं परम् ॥ ७८ ॥

जा कुलाचारसे मेरी पूजा करै वह सत्य सत्यही मेरा पुत्र होता है । मैं तुमको ब्रह्माण्डमण्डलका भयप्रद वक्त्रप्रदान करती हूं ॥ ७७॥ तुम्हारा यह वक्त्र कालरूप और सबकाही निग्राहक (अर्थात् भयकारी) होगा ॥ ७८ ॥

ईश्वर उवाच ।

तस्मै वक्रं हि सा दत्त्वा क्षणं शान्तिमगाच्छिवा ।
महाकाली भैरवोऽपि वज्रपाणिर्बभूव सः ॥७९ ॥

ईश्वरने कहा-हे शिवे ! भैरवको वक्त्रप्रदान करके महाकाली क्षण कालके निमित्त शान्तिको प्राप्त हुई । वह भैरवभी वज्रपाणि हुए॥७९॥

करालभैरवं रूपं क्रोधवक्रो ह्यवाप सः ।
वज्रपाणिर्महाकालीप्रसादादीश्वराभिधः ॥ ८० ॥

वह करालभैरवरूप क्रोधवक्त्र हुए। महाकालीके प्रसादसे यह वज्रपाणी भैरव ईश्वर नामसे कथित हुए हैं ॥ ८० ॥

इतिश्रीयोगिनीतन्त्रपूर्वार्द्धं कथितं मया ।
गोपनीयं सदा भद्रे योनिं परनरे यथा ॥ ८१ ॥

यह मैंने श्रीयोगीनीतन्त्रके पूर्वार्द्धका परमविषय वर्णन किया । हे भद्रे ! इसको पराये मनुष्यसे योनिकी समान सदा गुप्त रक्खे॥ ८१ ॥

इति श्रीयोगिनीतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे देवीश्वरसंवादे चतुर्विंशतिसाहस्रे मुरादाबाद निवासि कन्हैयालाल मिश्रकृत भाषाटीकायां एकोनविंशतितमः पटलः ॥ १९ ॥

योगिनीतंत्रका पूर्वखण्ड समाप्त ।

श्रीगणेशाय नमः।

उत्तरखण्डम्।

ॐ नमः कामाख्यायै।

प्रधानसाधारविकल्पसत्ता स्वभावभावाद्भुवनत्रयस्य। सा विद्यया व्यक्तिकरीह मायाज्योतिःपरा पातु जगन्ति नित्यम् ॥ १ ॥

जिन्होंने प्रकृति और आधारके सहित विकल्प सत्ताके स्वभाव भाव और विद्यासे तीनों जगत्को व्यक्त किया है। वह मायामयी परमज्योति सदाही जगत्की रक्षा करै ॥ १॥

श्रीकाल्युवाच।

उड्डीयानादिकं पीठं श्रुतं मे प्राणवल्लभ।
इदानीं श्रोतुमिच्छामि कामरूपस्य निर्णयम् ॥ २ ॥

श्रीदेवीने कहा—हे प्राणवल्लभ! उड्डीयानादि पीठका विषय मैंने सुना अब कामरूपका निर्णय सुननेकी इच्छा करती हूं ॥ २ ॥

यदुक्तं तत्तथा नाथ घोरपापविनाशकम्।
कामाख्यसंज्ञकं पीठं प्रख्यातं हि कलौ युगे ॥ ३ ॥
कलिसर्पस्य दंष्ट्राणां विचित्राणां विभेदकम्।
भेषजं परमं देव किं मे तत्कथ्यतां विभो ॥ ४ ॥

हे नाथ! जिसके कीर्त्तनसे घोरपाप नष्ट होते हैं। वह कामाख्या नामक पीठ कलियुगमें पुण्यमय कहकर विख्यात है। हे देव! तो कलिसर्पकी विचित्र दाढोंकी विभेदक औषधि क्या है? वह मुझसे कहिये ॥ ३ ॥ ४ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

उड्डीयानस्य देवेशि प्रादुर्भावः कृते युगे ॥

पूर्णशैलस्य संभूतिस्त्रेतायुगमुखेऽभवत् ॥ ५ ॥

द्वापरे जालशैलस्य कामाख्यस्य कलौ युगे ।

घोरस्य कलिपापस्य विनाशाय महेश्वरि ॥ ६ ॥

प्रतिवर्षं पीठयुग्ममुपपीठं तथा च ते ।

त्रयं त्रयं महाक्षेत्रं पुण्यारण्यं त्रयं त्रयम् ॥७॥

श्रीभगवान् बोले-हे देवेशि ! सत्ययुगमें उड्डीयान त्रेता युगके मुखमें पूर्णशैल द्वापरमें जालशैल और कलियुगमें कामाख्या प्रादुर्भूत होती हैं । हे महेश्वरि ! घोरतर कलियुगके पापोंका नाश करनेके लिये प्रतिवर्ष तुम्हारा दो दो पीठ और उपपीठ तीन तीन महाक्षेत्र और तीन तीन पुण्यक्षेत्र विद्यमान हैं ॥ ५-८ ॥

प्रतिपीठे महादेवः प्रतिपीठे चतुर्भुजः ।

प्रतिपीठे स्थिता गंगा पार्वती प्रतिपीठके ॥ ८ ॥

प्रतिपीठमें महादेव प्रतिपीठमें चतुर्भुज प्रतिपीठमें गंगा स्थित और प्रति पीठमें पार्वती विद्यमान है ॥ ८ ॥

प्रतिपीठे प्रतिक्षेत्रं प्रत्यरण्ये तथैव च ।

कलौ गृहात्सुदूरं च तीर्थबुद्धिः प्रजायते ॥ ९ ॥

प्रतिपीठमें प्रतिक्षेत्र और प्रति पुण्यारण्यही तीर्थ है कलियुगमें घरसे दूरदेशमें तीर्थबुद्धि होती है ॥ ९ ॥

किन्तु तीर्थानि वै सन्ति सर्वाणि स्वस्वभावतः ।

प्रतिपीठे पृथक्धर्म आचारश्च पृथक् पृथक् ॥ १० ॥

किन्तु सर्वतीर्थभावना सिद्धही कहे गये हैं । प्रतिपीठमेंही धर्म और आचार पृथक् हैं ॥ १० ॥

देशे देशे कुलाचारा मन्तव्याश्चैव हेतुभिः ।
पृथक्पूजा पृथङ्मन्त्रो मर्त्ये वै तीर्थपीठकम् ॥ ११ ॥

देशके भेदसे कुलाचार हेतुद्वारा भिन्न भिन्न हैं । मर्त्यलोकमें तीर्थ पीठपूजा और मंत्र पृथक्पृथक् हैं ॥ ११ ॥

भद्रपीठं दाक्षिणात्ये मध्यदेशस्य पार्वति ।
जालन्धरन्तु पाश्चात्यं पूर्णपीठन्तु पूर्वतः ॥ १२ ॥

हे देवि ! मध्यदेशके दाक्षिणात्यमें भद्रपीठ, पश्चिममें जालन्धर, पूर्वमें पूर्णपीठ ॥ १२ ॥

ऐशान्यां पूर्वभागे च कामरूपं विभावय ।
जालन्धरन्तु वायव्ये कोला पुरे तथोत्तरे ॥ १३ ॥
ईशाने चैव वेहारं महेन्द्रं कियदुत्तरे ।
श्रीहट्टं चापि पूर्वे च ह्युपपीठान्यथो शृणु ॥ १४ ॥

ईशान कोणके पूर्वभागमें कामरूप जानना चाहिये, वायुकोणमें जालन्धर, उत्तरमें कोल्हापुर, ईशानमें विहार, कुछ दूर उत्तरमें महेन्द्र और पूर्वमें श्रीहट्ट है. अब सब उपपीठ सुनो ॥ १३ ॥ १४ ॥

नौकायानेन देवेशि अष्टषष्टिस्तु योजनम् ।
विस्तारमोड्रपीठस्य आयामस्त्रिगुणो भवेत् ॥ १५ ॥

हे देवेशि ! नौकायानद्वारा अडसठयोजन विस्तारयुक्त ओड्रपीठ है । इसका आयाम विस्तारसे त्रिगुण है अर्थात् अधिक है ॥ १५ ॥

शकटाकारकं पीठं चतुष्कोणं सुपीठकम् ।
चतुर्द्वारसमायुक्तं वायुबिम्बेन चिह्नितम् ॥ १६ ॥

शकटाकारपीठ पीठयुक्त और चतुष्कोण चतुर्द्वारयुक्त वायुबिम्बद्वारा चिह्नित ॥ १६ ॥

तीर्थकोटिद्वययुतं सिन्धुभद्रकपीठकम् ।
यत्र सोमेश्वरं लिङ्गमादिपीठं तथा परम् ॥ १७ ॥

इसी स्थानमें दो करोड तीर्थयुक्त सिन्धुभद्रक पीठ आदिपीठ सोमेश्वर लिंग ॥ १७ ॥

कामधेनुश्च यत्रैव यत्र चक्रेश्वरो हरः ।
क्षेत्रं विरजसंज्ञश्च एकाम्रं तदनन्तरम् ॥ १८ ॥

कामधेनु और चक्रेश्वर हर अवस्थित है तदनन्तर विरज क्षेत्र फिर एकाम्र ॥ १८ ॥

भास्करस्य महाक्षेत्रं यत्र मातंगशंकरः ।
कुशस्थली महापुण्या दण्डकश्च वनं तथा ॥ १९ ॥

भास्करका महाक्षेत्र और जहां मातङ्ग शङ्कर हैं । तदनन्तर महापवित्र कुशस्थली और दण्डक वन ॥ १९ ॥

सुमन्तश्च तथारण्यं शिवयूपश्च पूर्वतः ।
पश्चिमे धेनुकारण्यं उत्तरे तु गयाशिरः ॥ २० ॥

सुमन्तारण्य और पूर्व दिशामें शिवयूप पश्चिममें धेनुकारण्य उत्तरमें गयाशिर ॥ २० ॥

दक्षिणे चन्द्रभागा च ओड्रपीठं वरानने ।
त्रिंशद्योजनविस्तीर्णमायामे शतयोजनम् ॥ २१ ॥

दक्षिणमें चन्द्रभागा और ओड्रपीठ है यह विस्तारमें त्रिंशत् (तीस) योजन और दीर्घमें सौ योजन है ॥ २१ ॥

अत्र कामेश्वरी देवी योनिमुद्रास्वरूपिणी ॥ २२ ॥
भूगोलपीठके तत्र गोलोकेश्वर एव च ।
धर्मपीठं महापीठं यत्र कामेश्वरो हरः ॥ २३ ॥

इसी स्थानमें योनिमुद्रास्वरूपिणी कामेश्वरी देवी अवस्थित है । वहां भूगोलपीठकमें गोलोकेश्वर विद्यमान हैं । फिर धर्मपीठ और महापीठ हैं । इस स्थानमें कामेश्वर हर स्थित है ॥ २२ ॥ २३ ॥

अविमुक्तं महाक्षेत्रं हंसप्रपतनं तथा ।
ब्रह्मयूपस्तु यत्रैव यत्र श्वेतवटः स्थितः ॥ २४ ॥

तदनन्तर अविमुक्त नामक महाक्षेत्र और हंसप्रपतन है । वहां ब्रह्मयूप और श्वेतवट विद्यमान है ॥ २४ ॥

कुरुक्षेत्रं तु तत्रैव यत्र मायास्वना नदी ।
अयोध्यारण्यकं पुण्यं धर्मारण्यं तथा परम् ॥ २५ ॥

इसी स्थानमें कुरुक्षेत्र और मायास्वना नदी है । तदनन्तर पुण्यमय अयोध्यारण्यक धर्मारण्य ॥ २५ ॥

कचात्मकं महारण्यं यत्र पातालशङ्करः ।
गण्डकी च नदी पूर्वे विष्णुयूपश्च पश्चिमे ॥ २६ ॥
दक्षिणे वृषभं लिङ्गमुत्तरे कदलीवनम् ।
एतन्मध्यतमं पीठं चापाकारं मनोरमे ॥ २७ ॥

और कचात्मक महारण्य है इस स्थानमें पातालशंकर स्थित हैं अनन्तर पूर्वमें गण्डकी नदी और पश्चिममें विष्णुयूप दक्षिणमें वृषभ लिंग और उत्तरमें कदलीवन है । हे मनोरमे ! यही चापाकार मध्यपीठ है ॥ २६ ॥ २७ ॥

जानाम्यहं तथा पद्मं रक्तवर्णं विभासते ।
एकादशशतायामं योजनानां तथा नव ॥ २८ ॥
अशीत्यष्टौ च प्रस्तारे त्रिकोणं पीठमुत्तमम् ।
प्रवरं पीठकं तत्र पीठश्चाशोकमेव च ।
सीताख्यश्च महाक्षेत्रमगस्त्याश्रमं तथा ॥ २९ ॥

इस स्थानमें पद्म रक्तवर्ण प्रकाशित होता है । तदनन्तर दैर्घ्य अर्थात् लम्बाईमें ग्यारह सौ नौ योजन और विस्तारमें अट्ठासी योजन त्रिकोण नामक उत्तम पीठ है वहां प्रवरपीठ और अशोकपीठ विद्यमान है । हे प्रिये ! तदनन्तर सीताका महाक्षेत्र और अगस्त्याश्रम है ॥ २८ ॥ २९ ॥

हरस्य परमं क्षेत्रं क्षेत्रत्रयमिदं प्रिये ।
माधवारण्यकं क्षेत्रं हरस्यारण्यकं तथा ॥ ३० ॥
अरण्यञ्चैव भर्गस्येत्येवमारण्यकत्रयम् ॥ ३१ ॥

और हरका महाक्षेत्र यह तीन क्षेत्र विद्यमान हैं फिर माधवारण्यक क्षेत्र और हरारण्यक एवं भर्गारण्य यह तीन आरण्य विद्यमान हैं ॥ ३० ॥ ३१ ॥

उत्तरे ब्रह्मक्षेत्रञ्च दक्षिणे सागरोदधिः ।
पूर्वे चोदयकूटञ्च पश्चाच्छ्रीपर्वतं प्रिये ॥ ३२ ॥

उत्तरमें ब्रह्मक्षेत्र, दक्षिणमें सागर, पूर्वमें उदयकूट और पश्चिममें श्रीपर्वत है ॥ ३२ ॥

एतन्मध्यतमं पीठं पुण्याख्यं नाम नामतः ।
पदात्पादान्तरं यावन्मध्ये हस्तद्वयान्तरम् ॥ ३३ ॥
शिवरात्रौ च गमनं सौरमासेन भासकम् ।
कामरूपं विजानीयात्षट्कोणं च प्रगर्भकम् ॥ ३४ ॥

इन सबके मध्यगत पीठ पुण्य नामसे कही गई है. वहाँ शिवरात्रिमें सौर माससे मासकी गणनाके अनुसार मध्यभागमें दो हाथके अन्तरसे और एकपादसे पादान्तरके अन्तरमें गमन करनेसे प्राप्त होता है । कामरूप षट्कोण और प्रकृष्ट गर्भक है ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

तत्पुण्यं तत्समं वेत्थ नवव्यूहं त्रिमण्डलम् ।
पर्वतैर्दशभिर्युक्तं वेदिमध्यं प्रकीर्त्तितम् ॥ ३५ ॥

वह कामरूप समान और पुण्यजनक तथा परिमाणमें नौ व्यूह और तीन मण्डल है । उसकी वेदिका मध्य दशपर्वतयुक्त कहा गया है ३५॥

मध्यपीठं महापीठं यत्र कामेश्वरो भवेत् ।
तत्र पीठे हि देवेशि याति चम्पावती नदी ॥ ३६ ॥

वहां मध्यपीठ महापीठ है । उस पीठमें कामेश्वर विद्यमान है । हे देवि ! उसी स्थानमें चम्पावती नदी बहती है ॥ ३६ ॥

कन्याश्रमं महाक्षेत्रं यत्र रुद्रपदद्वयम् ।
एकाश्रमं परं क्षेत्रं यत्र नागाख्यशङ्करः ॥ ३७ ॥

फिर महाक्षेत्र कन्याश्रम है । वहां रुद्रके दो पद विद्यमान हैं । उसी स्थानमें एकाश्रमक्षेत्र है । वहां नागाख्य शंकर विद्यमान हैं ॥ ३७ ॥

मानसं क्षेत्रकञ्चैव यत्र विश्वेश्वरो हरः ।
नाटकारण्यकञ्चैव चम्पकारण्यकंतथा ॥ ३८ ॥

और वही मानस क्षेत्र है । उस क्षेत्रमें विश्वेश्वर हर विद्यमान हैं । इसके पीछे नाटकारण्य और चम्पकारण्यक हैं ॥ ३८ ॥

पिच्छिला वा दक्षिणतो गौतमस्य महाफला ।
पूर्वे स्वर्णनदीं यावत्करतोया च पश्चिमे॥ ३९ ॥
दक्षिणे मन्दशैलश्च ह्युत्तरे विहगाचलः ।
प्रस्तारे योजनार्द्धं चायामे पञ्च च योजनम् ॥ ४० ॥
अयुतत्रयञ्च त्रिस्रोतस्तथा पञ्चोद्भवं दश ।
अष्टकोणञ्च सोमारं यत्र दिक्करवासिनी ॥ ४१ ॥
नित्यं वसति सा देवी ज्ञानाद्ध्यानेन मुक्तिदा ।
तत्र देव्याः प्रसादेन स्थितिं गच्छन्ति नान्यथा॥४२॥

दक्षिणदिशामें गौतमकी महाफला पिच्छिला नदी है । पूर्वमें स्वर्णनदी । पश्चिममें करतोया । दक्षिणमें मन्दशैल और उत्तरमें विहगाचल

है । जो कि विस्तारमें आधा योजन और दैर्घ्यमें पञ्च योजन है । तीन अयुत त्रिस्रोत और दश अयुत पञ्चोद्भव है । इसके पीछे अष्ट कोण है । वहां दिक्करवासिनी देवी वास करती है । वहां ज्ञानपूर्वक ध्यान करनेपर मुक्ति प्राप्त होती है । उस स्थानके निवासी देवीके प्रसादसे सुखसहित वास करते हैं इसमें सन्देह नहीं ॥३९॥४०॥४१॥४२॥

अथोत्तरं नवं पीठं सौमारावधि कथ्यते ।
वसत्यत्र तु प्रत्यक्षं सदा दिक्करवासिनी ॥ ४३ ॥

अब निरन्तर जिस स्थानमें दिक्करवासिनी वास करती है वह सौमारसे आरम्भ करके नवपीठ कही जाती है ॥ ४३ ॥

दिक्करस्य च वायव्ये नीलपीठं सुदुर्लभम् ।
यत्र कामेश्वरी देवी योनिमुद्रास्वरूपिणी ॥ ४४ ॥

दिक्करके वायुकोणमें अत्यन्त दुर्लभ नीलपीठ है वहां योनिमुद्रास्वरूपिणी कामेश्वरी देवी है ॥ ४४ ॥

पारिजातं महाक्षेत्रं यत्रादित्यस्तु शङ्करः ।
कौषेयस्य पुरं क्षेत्रं तथा चामरकण्टकम् ॥ ४५ ॥

और पारिजात महाक्षेत्र तथा आदित्यशंकर विराजमान हैं इसके पीछे कौषेयका पुर और क्षेत्र तथा अमरकण्टक है ॥ ४५ ॥

अरण्यमाश्विनञ्चैव गौतमारण्यकं शिवम् ।
अरण्यं शिवनाथस्य शृणु पीठादितः प्रिये ॥ ४६ ॥

आश्विनारण्य और मंगलप्रद गौतमारण्य है फिर शिवनाथका अरण्य है । हे प्रिये ! वह पीठ आदिसे सुनो ॥ ४६ ॥

पूर्वे सौरशिलारण्यं पश्चिमे स्वर्णदी शुभा ।
दक्षिणे ब्रह्मयूपस्तु उत्तरे मानसं सरः ॥ ४७ ॥

पूर्वमें सौरशिलारण्य । पश्चिममें शुभदायक स्वर्णदी । दक्षिणमें ब्रह्मयूप और उत्तरमें मानससरोवर है ॥ ४७ ॥

एतन्मध्यगतं पीठं भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ।
सौमाराख्यं महापीठं षट्कोणन्तु त्रिमण्डलम् ॥४८॥

यह सबका मध्यगत स्थान भोग मोक्ष दायक है सौमाराख्य महापीठ षट्कोण और त्रिमण्डल है ॥ ४८ ॥

सहस्रयोजनायामं हयताम्रञ्च पञ्चमम् ।
प्रस्तारे तु व्यामहीनं कोलापीठं प्रकीर्त्तितम् ॥४९॥

हय ताम्राख्य पंचम पीठ सहस्र योजन व्यायाम युक्त है कोलापीठ व्यायाम हीन कहीगई है ॥ ४९ ॥

सौमाराख्यं महापीठं शिवतल्पञ्च पीठकम् ।
वक्रशैवेश्वरं लिङ्गं यत्र वै कमला शिला ॥ ५० ॥

तदनन्तर सौमाराख्य महापीठ और शिवतल्प पीठ है फिर वक्र शैवेश्वर लिंग है वहां कमला और शिला स्थित है ॥ ५० ॥

केदारक्षेत्रं प्रथमं यत्र केदारशङ्करः ।
यत्र पिण्डकरं क्षेत्रमरुणो यत्र तिष्ठति ॥ ५१ ॥

अनन्तर केदार क्षेत्र प्रथम है वहां केदारशंकर शिव हैं उसीके समीप पिण्डकरक्षेत्र है वहां अरुण अवस्थित है ॥ ५१ ॥

दुर्गारण्यं सोमारण्यं भद्रारण्यं तथैव च ।
अशीतियोजनं क्षेत्रं षट्त्रिंशद्योजनायतम् ।
चौहाराख्यं महाक्षेत्रं यत्र गत्वा न शोचति ॥ ५२ ॥

तदनन्तर दुर्गारण्य सोमारण्य और भद्रारण्य है । इसके पीछे अस्सी योजनतक व्याप्त और तरसठ योजन व्यायामयुक्त चौहाराख्य महाक्षेत्र है वहां जानेसे शोच नहीं करना पडता ॥ ५२ ॥

ब्रह्मक्षेत्रं कलाक्षेत्रं रघुक्षेत्रं तथैव च ।
नन्दनं पारिजातञ्च शिवारण्यं तथा परम् ॥ ५३ ॥